* श्री *

एम. ए. बना के

क्यों

मेरी मिट्टी खराब की ?

अनुवादक—

छन्नूलाल द्विवेदी

यह आधुनिक शिक्षा किसी विध प्राप्त भी कुछ कर सको-
तो लाभ क्या, बस क्लर्क बन कर पेट अपना भर सको !
लिखते रहो जो सिर झुका सुन अफसरों की गालियाँ
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियाँ घरवालियाँ !
'मैथिलीशरण गुप्त'

प्रकाशक—

पुस्तक—भवन

बनारस

प्रथम बार] १९२३ [मूल्य २)

सम्पादक—

गया प्रसाद शुक्ल।

मुद्रक—

दुर्गाप्रसाद ख

लहरी प्रेस

काशी।

समर्पण

डिग्री के पीछे मर मिटनेवाले एम० ए० दास
और बी० ए० चन्द यूनीवर्सिटी से
निकले हुए रथी महारथियों की
सेवा में उनकी आज्ञा बिना
ही यह पुस्तक सादर
समर्पण करता हूं।

छन्नूलाल द्विवेदी—

॥ श्रीगणेशायनम ॥

एम.ए.बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की?

प्रथम प्रकरण

प्रार्थना-पत्रों के उत्तर

लाहौर गवर्नमेन्ट कालेज के छात्रालय के एक कमरे से एक व्यक्ति पाँच-सात चिट्ठियाँ लिये हुए आया, और एक पुरानी टूटी मेज के आगे पड़ी हुई वैसी ही एक कुर्सी पर बैठ गया। एक एक कर के उसने छ चिट्ठियाँ खोलीं, जिनमें उसके भेजे हुए पत्रों के प्रत्युत्तर इस प्रकार लिखे थे —

१—(भेजे हुए पत्र के पीछे ही लिख भेजा था) "आप की प्रार्थना स्वीकृत नहीं है।"

२—"इस विभाग में कोई स्थान खाली नहीं है।"

३—"एक वर्ष पर्यन्त उम्मेदवार रह कर हमारे कार्यालय का काम सीखिये, तब कुछ आशा दी जा सकती है।"

४—" आपका नाम और पता उम्मेदवारों में लिख लिया गया है।"

५—"हमारे कार्यालय में पर्याप्त हिन्दू हैं, अन्य जाति वालो को अवसर दिया जायगा।"

६—"प्रार्थी को स्वयं आकर मिलना चाहिए।"

छ छः कार्यालयों के निराशापूर्ण उत्तरो में केवल अन्तिम ही कुछ आँसू पोछता था। प्रार्थी माणिकचन्द, एम० ए० ने अन्तिम उत्तर अपने जेब के हवाले किया। दूसरे दिन वह पूर्ण आशा वहाँ से उपस्थित हुआ। पुलिस-सुपरिन्टेण्डेन्ट ने चेहरा देखते ही कहा —

"आप को किस बेवकूफ ने पुलिस की नौकरी का साहस करने की अनुमति दी? महाशय, जाइये,- किसी पाठशाला में लड़के पढ़ाइये।"

अपना सा मुह ले कर बेचारा माणिकचन्द अपने स्थान पर लौट आया। पर उसको शान्ति कहाँ! वह अपना नसीब ठोकता कि, इतनी विद्या पढी, डिग्रियाँ प्राप्त कीं, सब व्यर्थ है। वह अपने माँ बाप की निर्धनावस्था का स्मरण करता हुआ कालेज से बाहर निकला—इस विचार से कि घूमने फिरने से मन को कुछ शान्ति मिलेगी। घूमने फिरने वह लाहौर के सार्वजनिक पुस्तकालय में आ पहुचा। वहाँ उसने एक अंग्रेजी समाचार पत्र में निम्नलिखित सूचना पढ़ी'—'

आवश्यकता है—

"मेरे व्यापारी कार्यालय में एक मुनीम की आवश्यकता है। प्रार्थी सुशिक्षित होना चाहिए। प्रार्थना पत्र भेजने का पता—

"पद्लजी, जनरल मर्चन्ट, लाहौर।"

माणिकचन्द ने उसी दम घर आकर प्रार्थनापत्र लिख भेजा। तीसरे दिन सवेरे की डाक से उत्तर आया कि "स्वयं आ कर

मिलो।" तीसरे पहर माणिकचन्द अच्छे कपडे पहिन पदल जी के कार्यालय में गया।

पारसियो ने व्यापार में कितनी उन्नति की है, यह किसी से छिपा नही है। पदल जी एक बडे व्यापारी थे। उनकी दूकान देखते ही मनुष्य दंग हो जाते थे। दूकान क्या थी मानों उसने एक छोटा सा वन ही घेर लिया था। वह नाना प्रकार की वस्तुओं से ऐसी सुसज्जित थी कि देखनेवाला देखते ही मोहित हो जाता। सब वस्तुएँ ऐसी सुन्दरता से उचित स्थान पर सजाई गई थीं कि एक साधारण दर्शक को भी विचारना पडता कि यह लें कि वह। और पाँच की वस्तु लेने वाला पचीस खर्च कर आता। इसके पत्र विभाग में चिट्ठियो के ढेर लगे थे। पदल जी अधेड वय का था। उसका कद मध्यम और रंग गेहुआ था। आँख पर सोने की कमानो का चश्मा लगाए था। पुरानी चाल की पोशाक पहिने अपने वरामदे में एक आराम कुर्सी पर वैठा था। उसके आगे काच की तरह चमकती हुई एक तिपाई पडी थी जिस पर दोचार लेमनेड की बोतलें और दो एक गिलास रखे थे। समीप में एक मखमल की गद्दीवाली कुर्सी पर उसकी प्यारी पुत्री बैठी थी। उसका नाम जरबानू था। सामने प्राय एक दर्जन कुर्सियाँ पडी थीं। जरवानू पदल जी की एकलौती पुत्री थी। उसके रूप और गुण की चर्चा आवश्यकतानुसार आगे की जायगी। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जर एक बहुत भली निरभिमान, दयालु और दानी बाला थी। उसने बम्बई में अच्छा विद्याभ्यास किया था। वह चित्रकला में भी निपुण थी। उसका अधिक समय इसी कार्य में व्यतीत होता था। इधर कुछ दिनों से वह एक गुप्त "पीड़ा" से पीडित थी। उसके पिता को, जो अपनी पुत्री के लिये

सदा सुख की चिन्ता करता रहता था, इसकी कुछ भी खबर न थी।

थोडी देर तक बाप बेटी में यप शप होती रही। इतने में एक एक कर के उम्मेदवार आए और कुर्सी पर बैठे। वे इस प्रकार थेः—

पहला अलीगढ़ कालेज का बी० ए० फेल मुसलमान था। उसका शरीर भरा हुआ और कसरती था। हाथ पैर लठ्ठ जैसे थे। मुह पर युवावस्था का तेज था। कालर, नेकटाई लगाये था, नाक पर रेशमी पतले डोरे से बधा हुआ चश्मा था। माथे पर काले फुन्ने वाली तुर्की टोपी थी। उसका पटलून किसी बडी दूकान के कारीगर के हाथ का सिला हुआ मालूम पडता था। उसका अचकन एक बारीक काश्मीरे का बना था। जेबे से बाहर लटकता हुआ उसका रूमाल अतर से तरथा। चाँदी के चेन में घडी लगी थी। गिटपिट गिटपट अंग्रेजी बोलता और शिष्टाचारयुक्त मालूम होता था। क्रीकेट, टेनिस, फुटबाल और घुड॰सवारी में वह ऐसा निपुण प्रतीत होता था मानो वह अलीगढ कालेज में सभी को एक कोने में बैठा चुका है। वह आचार व्यवहार और बातचीत में दक्ष, और स्फूर्ति वाला था।

दूसरा ऐंग्लो वैदिक कालेज से बी० ए० पास वणिक (वैश्य) जाति का था। हिसाब किताब में फुर्तीबाज था। पैर में साधारण पजाबी जूता हरा मोजा शरीर पर रेशादार पट्टू का कोट था, जिसको अँग्रेजी कोट की नकल न कह कर फजीहत कहना उचित है, मैला पैजामा, ऐसे दरजी द्वारा सिला हुआ था जिसने, मालूम पडता है, अपने जीवन भर सिवाय तम्बूरे की खोली के और कुछ भी नहीं सीया है। जेब में रूमाल न था पर हाँ गले में एक तौलिया बँधी थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती थीं। आँखो में

गढे पड़े थे। शरीर का रङ्ग एक दम जर्द था। मिल्टन और शेक्सपीयर कंठाग्र थे। बात करे तो मालूम होता था कि किसी पुस्तक का पाठ करता है। शिष्टाचरण में बिलकुल अनभिज्ञ था, प्रत्येक विचार धर्म के रंग में रंगा था। हिन्दू धर्म पर मर मिटने वाला था। हजारों श्लोकों से मस्तिष्क भण्डार खचाखच भरा था। हिन्दुओं को छोड़ यह संसार के सब लोगों को मूर्ख समझता था। उसका दिमाग कुछ फिरा हुआ मालूम पड़ता था।

तीसरे ने किसी ईसाई कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी। माता नीच वर्ण की हिन्दू थी और पिता मुसलमान, पर ईसाई हो गया था। जिसको उसने मुक्ति का मार्ग बता अपनी स्त्री बना लिया था। यह तो तीन का मेलो (वर्णशङ्कर) अंग्रेजी बहुत अच्छी बोलता था, मानो वह उसकी मातृभाषा ही हो। रीति रिवाज, व्यवहार, और चाल ढाल में वह अलीगढ वाले की टक्कर मारता था। पोशाक सादी, और सस्ती, पर साफ और सुथरी थी। माता पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी होने के कारण एफ० ए० तक ही पढ़ कर छोड़ दिया था।

चौथा नवयुवक एक काश्मीरी ब्राह्मण का पुत्र था। एन्ट्रेन्स तक पढ़ा था। बाप की ऐसी स्थिति न थी कि घर में खिला पिला कर कालेज में शिक्षा दिला सके। और कालेज के छात्रालय में वह लड़के को छोड़ नहीं सकता था, क्योंकि वह अपनी जाति में नाग के नाम से मशहूर था, और ऐसा करने से वह जाति से निकाल दिया जाता। देखने में यह उम्मेदवार तेज और गौरवर्ण का था। तोते सी नाक और नींबू के फाँक सी आँखें थीं। ललाट भव्य था। चेहरे से चंचलता टपकती थी। पाश्चात्य सभ्यता से पूर्ण अवगत था। अभ्यासानुसार अंग्रेजी बहुत

अच्छी बोल लेता था। परन्तु हिसाब किताब में शून्य ही था। उसने यदि प्रथम में अपने को ब्राह्मण न बताया होता तो पद्मजी उनको एक जरथोस्ती (पारसी) समझ गुजराती भाषा में ही बातचीत करते।

पाचवें महाशय एक बङ्गाली थे। कोयले को मात करने वाला इनका रग था। साक्षात् आबनूस के आकार मालूम होते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होंने गणित अंग्रेजी और सायन्स तीनों में एम० ए० पास किया था। प्रभावशाली अनुरोधपत्र प्राप्त थे। घर के सम्पन्न थे पर माता पिता से बिगड कर चले आए थे। यदि उच्चारण की अशुद्धियाँ ध्यान में न लावें तो कहना ही पडेगा कि ये बातचीत में घोडे की तरह सरपट भागते थे। गणितशास्त्र में ये इतने निपुण थे कि मानो अंक इन के सन्मुख हाथ जोड कर खड़े रहते। इनके एक एक शब्द से स्वदेशभक्ति टपकती थी। शरीर बेडौल था, आँखों पर चर्बी चढी हुई थी। नंगे सिर थे, काले घूघरू वाले बालो से गरी के तेल की भभक निकलती थी। देशी बूट पैर में थे। ढाके की देशी धोती इतनी महीन पहिने थे कि यदि ऊपर कोट न पहिना होता, तो उसका पहिनना न पहिनना दोनों ही बराबर था। काछ ऐसी उत्तमता से मारी थी कि पैर की पिंडुली बिल्कुल नजर आती थी। घर से जो कुछ लाए थे, सब खा पका गए अब नौकरी करने को निकले थे।

छठवें माणिक चन्द एम० ए० लाहौर गवर्नमेन्ट कालेज के विद्यार्थी थे। ये बिचारे जहां प्रार्थना पत्र भेजते वही से निराशा जनक उत्तर आता, जहा उम्मेदवारी करते वही का टाट उलटता—ऐसे भाग्य हीन थे कि जिस के यहा दूध लेने जायँ उसकी भैंस मर जाए और जिसके यहां अग्नि लेने जायं उसका घर जल जाय—

"जो दाना माँगे तो खेत आग सारे हो जाय।
जो पानी चाहे तो दरिया किनारे हो जाय॥"

जाति के ये राजपूत थे। इन्होंने बी० ए० में गणित शास्त्र का विशेष अभ्यास किया था। एम० ए० में तत्वज्ञान का अभ्यास किया था। निर्धन पिता ने अपने पूर्वजों की कमाई के खेत और घर गिरो रख कर्जा ले कर इनको इतनी शिक्षा दिलाई थी। माणिक चन्द का शरीर केवल अस्थिपिंजर था। खाल उतारे बिना ही उनके शरीर की एक एक हड्डी गिनी जा सकती थी। आखों में गड्ढे पड़ गए थे और कालिमा छा गई थी। गाल बैठ गए थे। हाथ पैर उंगली जैसे हो गये थे। आकृति सुन्दर थी, रंग गेहुआं था। आखें बड़ी बड़ी थीं। भौंहें आपस में बालों से ऐसी मिली थीं और इस प्रकार तनी थीं मानो किसी वीर सिपाही की कमान कसा हो। अंग्रेजी अच्छी बोलते थे। धर्म का भी बोध था। शारीरिक सम्पत्ति में वे जितने भाग्यहीन थे उतने ही मानसिक शक्ति में बढ़े चढ़े थे। सरकारी नौकरी के लिए इनको सर्टिफिकेट मिलना असम्भव था। इनके हँसने की चाल एक विचित्र थी; हँसने के समय इनके दोनों ओंठ ऐसे झुक जाते की दर्शक को उन्हें देखने में बड़ा आनन्द आता।

चतुर पटेलजी ने इन छओं व्यक्तियों की बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा ली। बीच बीच में जर भी एकाध प्रश्न कर बैठती। सब से प्रथम काश्मीरी पंडितजी को नारियल-सोपारी मिली। उनका अभ्यास कम था। अक्षर यद्यपि मोती से चुने थे परन्तु इतने ही से इतने बड़े कार्यालय में कार्य नहीं कर सकता था।

पंडित जी के विदा होने पर बाप और बेटी दोनों जने बरामदे से उठ कर कुछ विचार करने के लिये कमरे में गए। बंगाली बाबू के लिये तो दोनों के एक ही विचार मिले कि ये असभ्य

और हठीले हैं। एक पारसी के यहा नौकरी की आशा से आए हैं और पूरे कपडे भी नहीं पहिना है। नौकरी लग जाने पर कौन जाने ये शरीर पर वस्त्र रहने देगें या नहीं ? इस प्रश्न पर दोनो जने खूब हसे। वनिये को तो पुस्तक का कीडा, धर्मान्ध और सभ्यता से एक दम अनभिज्ञ जान कर अलग किया। वर्णसंकर होने के कारण ईसाई को पुराने विचार के पदल जी ने पसन्द नही किया। जर ने भी अपने पिता के विचार को ठीक माना। अब बचे माणिक चन्द जी और अलीगढ वाले खां साहब। पदलजी का यह कहना था कि अलीगढ वाला खां हृष्ट पुष्ट और चालाक है। वह लिखा पढी का काम भी करेगा और अपने व्यापार का ढब भी शीघ्र समझ जायगा। व्यापार में ऐसे ही व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। मुसलमान होने के कारण इसको अधिक छुआ छूत का ख्याल भी नही रहेगा। हमें जैसे आदमी की आवश्यकता है वैसा ही यह है। जर ने माणिक चन्द को पसन्द किया था। इसलिए वह माणिक चन्द ही को सब बातो में श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करती थी।

पदलजी ने पुत्री पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा "मेरी प्यारी, यदि तुम्हारी इच्छा उसी के लिये है, तो मैं उसी को नौकर रखूगा। परन्तु व्यापार की दृष्टि से यह मुसलमान बहुत उपयुक्त है। जरा विचार करो कि यह लैले-मजनू यदि रख लिया गया तो क्या करेगा ? देखना, हम तुम से कहते हैं कि महीने में पन्द्रह दिन तो इसको डाक्टरी सर्टिफिकेट पर छुट्टी देनी पडेगी। खाने पीने में भी ये हजारों नखरे करेंगे और नाक भौंह चढावेंगे। पूजा वन्दना में ही इनके घन्टो बीत जायंगे। यदि व्यापार के निमित्त इनको चीन या जापान भेजना पड़े तो ये समुद्र-यात्रा-निषेध की धर्म की टाग अड़ायेंगे।

पारसी बच्चे व्यापार ही के लिये पैदा होते हैं, अतएव वे पूर्व ही से खूब सोच विचार लेते हैं। वास्तव में माणिक चन्द्र में अलीगढ़ वाले से विद्या का बल अधिक है पर एदल जी की दूकान में जितनी अलीगढ़ वाले की आवश्यकता है उतनी माणिक चन्द की नहीं। मुट्ठी भर हाड़ वाला निर्जीव शरीर क्या कर सकता है ? जिसके मारने से कोई नहीं मर सकता उसकी दृष्टि से यह कैसे मर सकता है ? अलीगढ वाला अपने रोब से काम ले सकता है। बोलचाल में उसका अंग्रेजी का ज्ञान दूकानदारी के काम के लिए पर्याप्त है।

जर ने रुकते रुकते नीची नजर किये हुए कहा "पिताजी, आप का अनुभव ठीक है, पर मुझे तो मुसलमान के स्वभाव से बहुत भय लगता है। जहां कुछ गुस्से से बोले कि सामने जूता सा जवाब तैयार है। यदि वह पूजा पाठ में समय व्यतीत करेगा तो ये मांग सँवारने ही में समय बिताएँगे। वह तो जब बीमार पड़ेगा तब छुट्टी मांगेगा और ये क्रीकेट पेलो आदि के खेल खेलने और देखने की इच्छा से छुट्टी लेने के लिये झूठे ही बीमार पड़ जायेंगे। यह राजपूत हिन्दू है। मांस और अण्डे तो खाता ही होगा। एम० ए० तक पढा लिखा है, साधारण छुआ छूत का इतना ध्यान भी नहीं करता होगा। यदि उसको छुआ छूत का ध्यान होगा तो भी वह अपने साथ रहते रहते ठीक हो जायगा।"

एदलजी ने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए अपने विचार प्रकट किये "जर, बेटा !" यह तो मानना पड़ेगा कि स्वभाव के ये लोग जरा तीखे होते हैं पर ये गरीब विचारे स्वभाव के भी गरीब होते हैं।"

जर बाप को अपने पक्ष में आते देख बोल उठी, "हां पिता

जी। यद्यपि अपने विचार ऐसे नीच नहीं हैं कि हजारों वर्ष की अदावत याद कर उसका बदला लें, पर साधारणतया ध्यान देने से यह स्मरण हो आता है कि अपने को अपनी प्यारी मातृ-भूमि से निकालनेवाले ये ही यवन लोग हैं। और ये राजपूत ही अपने को आश्रय देने वाले हैं।"

पदलजी ने अपनी दुलारी पुत्री को बगल में दबा कर कहा "वाहरे पगली बेटी, तूने भी खूब जान जिम्मेदारी की बात छेड़ी। क्या उस जाति के लोगों को नौकर न रखना चाहिये? यों तो ये हिन्दुओं का समस्त देश दबा कर उनको हैरान कर चुके हैं, पर इससे क्या कोई हिन्दू मुसलमान को नौकर नहीं रखता? अपने लिये तो हिन्दुस्तान में हिन्दू मुसलमान एक चने की दो दाल हैं। हजार वर्ष के मरे मुर्दे अब क्या कर सकते हैं!"

चतुर जर ने अपने को एक उपाय में निष्फल देख, दूसरा रंग, रचा, "मेरे कहने का, पिता जी, यह मतलब नहीं है! इस गरीब ने अपने प्रार्थना पत्र में अपनी जो स्थिति दर्शाई है वह भी दयाजनक है। इसके पिता ने घर बार सब गिरों रख कर अपने पुत्र को पढ़ाया और यह अभागा जहां कहीं नौकरी के लिये जाता है वहीं अपने मुह की खाता है। यदि यह अपने यहा से भी निराश हो कर लौटेगा तो सम्भव है, इसके जीवन पर ही आ पड़े। मुझे तो इस पर बहुत दया आती है पिता जी।" इतना कह, जर आशा पूर्ण हो पिता की ओर देखने लगी। समझ में नहीं आता कि जर माणिक चन्द की नौकरी के वास्ते इतनी अधीर क्यो हो गई है!

अन्त में पदल जी ने, या तो अपनी पुत्री के कहने से, या माणिक चन्द की दीन-हीन स्थिति पर दया कर के, अथवा उसके विद्याभ्यास पर मोहित हो कर, या और कोई कारण

वश,उसी को नौकर रखने का निश्चय किया और जरवानू की तरफ होकर बोला, "अस्तु, इस समय तो जर ! इस हिन्दू बालक को ही अपने यहा आश्रय दें।" जर ने एक दीर्घश्वांस इस प्रकार लिया मानो उसकी आन्तरिक इच्छा पूर्ण हुई हो। "चेहरे से भी यह भला और दृढ विचार का मालूम पडता है। चलो, हम वाहर चल कर इन लोगो से कह दें।"

घरामदे में जाकर दोनो जने अपने अपने स्थान पर बैठे, फिर चतुर पदलजी ने यह सोच कर कि किसी को बुरा न लगे, धीरे से कहा कि, "महाशयो, आप सब के पते मेरे पास हैं, विचार कर के कल जिसकी नौकरी कायम होगी उसको सूचना दे दी जायगी।" सब किसी ने अभिवादन कर के अपने अपने घर का रास्ता पकडा। पदलजी ने अपना नौकर दौड़ा माणिक चन्द को वापस बुलाया। और सब तो हृष्ट पुष्ट थे, चटपट चलने बने थे। परन्तु माणिक चन्द पैर घसीटता हुआ बंगले के कम्पाउंड के बाहर ही पहुंच सका था। नौकर ने आवाज़ दी वह आशा पूर्ण हृदय से पीछे फिरा और पहिले से दुगुनी तेजी से चट आ कर पदलजी के सम्मुख उपस्थित हुआ। धन्य है आशा, धन्य है, तेरी बलिहारी ! तू चाहे तो मरे हुए को भी दो चार पैर चला सकती है। जर दूर से आते हुए माणिक को टकटकी लगा कर देख रही थी। विशेपतर उसकी मुख-मुद्रा पर से उसके ध्यान और नेत्र हटते ही न थे। इस प्रथम मिलाप ने ही ऐसी सुशिक्षिता, सुधरी हुई, अप्सरा सी बालिका के हृदय पर कैसा प्रभाव डाल दिया कि वह एक परजाति के युवक पर इतना अधिक दया भाव दिखाने लगी।

माणिकचन्द को सामने की कुर्सी पर बैठने का इशारा कर के, दयालु पदलजी बोले, " महाशय ! कल से आपकी नौकरी

हमारे यहाँ कायम हुई। अभी आपको बीस रुपये मासिक दिए जायँगे। यद्यपि आप के अभ्यास की ओर ध्यान देने से इस अल्प वेतन के कहते भी मुझे सकोच होता है, पर लाचारी यह है कि हमारे विभाग में जितने वेतन के व्यक्ति की आवश्यकता है, उनके बाहर हम नहीं चल सकते। यदि आप ध्यानपूर्वक वफादारी से काम करेंगे तो आपको भविष्यत् में अच्छे अवसर दिये जायँगे। कहिये आप की क्या इच्छा है ?"।

माणिक चन्द ने गद्‌गद् स्वर से उत्तर दिया "मैं उन रुपये को बीस अशर्फी समझ सिरोधार्य करता हूं। ईश्वर आपकी उत्तरोत्तर वृद्धि करे और आप मेरे से भी दीन निस्सहाय को आश्रय देते रहें।" इतना कह माणिक ने पटल जी को हाथ जोड़े किन्तु सभ्य गृहस्थ पटल जी ने उसको ऐसा करने से रोका।

अपने स्थान पर आ कर माणिक चन्द ने अपने माता पिता को अपनी नौकर लगने का पत्र लिखा। उसके माता पिता पंजाब के अन्तर्गत होशियार पुर जि॰ के अमोटा नामक ग्राम में रहते थे। मा-बाप को इतने व्यय के बाद बीस रुपये मासिक की नौकरी सुन आनन्द तो क्या हुआ होगा, पर इतना सोच कर सन्तोष कर लिया कि, लड़का ठिकाने तो लगा, अपना खर्च तो निकाल लेगा और प्रति मास जो घर से रुपये भेजने पड़ते थे, यह विपत्ति तो अब टली।

हिन्दू-प्रथानुसार माणिक चन्द का विवाह बालकपन में ही हो गया था। उसकी स्त्री की अवस्था इस समय अठारह वर्ष की थी। माणिक बाइस वर्ष का था। उसकी स्त्री को न्यूनाधिक वेतन का कुछ ध्यान न था। पत्र पढ़े जाते ही उस को यह निश्चय हो गया कि अब उसको बाहर जाना पड़ेगा, अलग गृहस्थी स्थापित करनी पड़ेगी और अब सास नंद

की बोली ठोली से उसका पिंड छूट जायगा। माणिक चन्द के सहपाठी और सम्बन्धी तो जो परीक्षा में फेल होने से खेती बारी में लग गये थे द्वेषाग्नि में जलने लगे, परन्तु लोकाचार से उस के पिता गोविन्द राम को धन्यवाद देने आए।

द्वितीय प्रकरण

अमोटा तालुका—माणिक की जन्मभूमि

होशियारपुर जिले को पंजाब का चमन कहते हैं। अब तो नहरों के प्रभाव से अन्य स्थल भी रमणीक बन चले हैं। अमोटा एक छोटा पर रमणीक गाँव है। माणिकचन्द का पिता गोविन्दसिंह वहा का निवासी है। स्वरूपसिंह नाम का द्वितीय वर्ग का एक राजपूत भी वहीं रहता है। दोनों में दीर्घकाल से कुछ अनबन चली आती थी। केवल अनबन ही नहीं, बल्कि वैर-भाव भी अंकुरित हुए, गाव में दो तड पड गए, और परस्पर की छेडछाड से दोनों को न्यायालय तक पहुचने की नौबत आ गई।

केवल मुखिया शब्द के लिये वे परस्पर खून के प्यासे बन गए हैं। अमोटा में मुसलमान राजपूत के भी दो चार घर हैं। मोगल राज्य के दौर-दौरे के समय से इन्हों ने मुसलमानी (इस्लामी) धर्म स्वीकार कर लिया है। पर इन की सब रीति हिन्दुओं की सी हैं। विवाह में इनके यहा एक तरफ मौलवी इजाब और कुबुल के कलमें पढते हैं तो दूसरी ओर ब्राह्मण नवग्रह की पूजा कराते हैं। पंजाब में मीरासी नाम की एक

जाति बसती है। ये लोग 'लागी' (लागा वाले) कहे जा
हैं। इन लोगों का काम विवाह में गाना बजाना है। मीरास
हिन्दू भी होते हैं और मुसलमान भी। पजाब के राजपूत ब
आलसी, ऐयाश और बैठ कर खाने वाले हो गए हैं, जिस
वे ऋण से दबे जा रहे हैं।

गोविन्दसिंह को अपने पुत्र और पुत्री के विवाह में कु
की रीति के अनुसार बहुत खर्च करना पड़ा था, जिससे अ
वह दब गया है। अपने पूर्वजों की कमाई आधे से अधिक जम
न उसने गिरो रख दी है। तीन में से उसके दो मकान भी जा
रहे। अब जिस में वह रहता है वही घर बाकी रह गया है
माणिक की पढ़ाई में भी उसने कुछ उठा न रखा। थोड़ी जमी
गाव के सरहद पर थी जिस में वह खेती-बारी करता था
उसमें उपज इतनी होती कि वह अपने कुटुम्ब का निर्वाह म
में कर सकता था। उसके नाती गोती जो अमोटा ही में रहते
उसके पुराने दुश्मन थे। वे लोग रात दिन इस को मिट्टी
मिलाने के ही फिराक में रहते। इसके जाति बन्धु, जिनमें
अधिक तर शराब और रंडियों के शिकार बने थे, इसके प
शत्रु थे। कारण यह था कि गोविन्द का पुत्र सुशिक्षित औ
सभ्य था, इससे वे द्वेषाग्नि में भस्म हो रहे थे। 'मुख में रा
बगल में छुरी' की कहावत वे चरितार्थ करते थे। कितने तो गो
विन्द की जमीन्दारी नष्ट होने की आशा लगाए बैठे थे। कि
नों ने न्यायालय में उस की दुर्दशा देखने के लिये मान मनौ
कर रखी थी। बिचारे गोविन्द ने किसी की जमा नहीं मा
थी पर जातिके विशेष तर वे लोग जो अशिक्षित हैं, कैसे दुर्ज
होते हैं यह वे ही जान सकते हैं जिन को उन से काम प
हो। कहीं भी जाति में एक से उन्नति की कि 'अंग्रेजी भोजन

निद्रा' लेने वाले उस के पीछे पड़ जाते हैं और बात बात में धर्म की टाग अड़ा धर्म को बदनाम करते हैं। इन निरक्षर भट्टाचार्यो को और तो कोई काम रहता नहीं, जहा चार एकत्र हुए कि दन्तकथा छिड़ो। 'काजी जी दुबले क्यो ? शहर के अन्देशे से।' यदि कोई इनका विरोध करता है और इन को अच्छी बातें समझाता है तो ये अपने को अपमानित समझ न्यायालय की शरण लेते और घर के वा पच के रुपये वेपीर की तरह सरकारी घोड़ों के दाना घास के वास्ते बहा देते हैं। यदि जाति के विद्यालय, औषधालय या धर्म शाला की सहायता के लिये इन से प्रार्थना की जाय तो एक कौड़ी भी इनके हाथ से जल्दी नही निकलती।

गोविन्द की जाति में एक सज्जन ऐसे थे जिन के साथ बिरादरीवाले परस्पर जूती पैजार होते देख आनन्दित होते थे। पाठक, आप इसमें जरा भी अतिशयोक्ति मत समझियेगा। प्रत्येक देश में और हर एक समाज में ऐसे लोग पड़े हैं जिन को पराई हानि में ही अपना लाभ नजर आता है। महात्मा तुलसी दास ने भी रामायण में ऐसे दयासिन्धुओं का वर्णन किया है

"पर हित हानि लाभ जिन केरे, उजरे हर्ष विषाद बसेरे।
जो परदोष लखहिं सह साखी, परहित घृत जिनके मन माखी॥
बचन वज्र जेहि सदा पियारा, सहस नयन-पर दोष निहारा।"

एक महाशय तो गोविन्द के उसी दिन से शत्रु बन बैठे थे जिस दिन उसने अपने पुत्र और पुत्री के विवाह धूमधाम से किये थे। उन दिनों में, जब का यह हाल लिखा जाता है, एक राजपूत ने अपने घर में एक मेहरिन को रखा था जिस से वह जाति से निकाल दिया गया था—यहां तक कि उस को गाव के कुए में पानी तक नहीं भरने दिया जाता था। वह बिचारा गावसे

तीन कोस पर नदी से पानी भर लाता।

अमोटा में एक तुलाराम पटवारी नाम का सारस्वत ब्राह्मण रहता था। उस का खास निवास-स्थान तो गुरुदासपुर में था। पर उस मूर्ख को यही धनार्जन करना अच्छा लगा। उसने अपना डेरा तम्बू सब यहीं ला जमाया। इसके 'आगे नाथ न पीछे पगहा' था। पाँच वर्ष हुए इसकी स्त्री परलोक पधार चुकी थी। अनजान आदमी तो इसकी चाल-चलन से इसको एक काश्मीरी पण्डित ही समझता। इसकी सब चाल-ढाल काश्मीरी पंडितों से मिलती जुलती थी। कारण कि इसने पांच वर्ष तक एक काश्मीरी पंडित की अध्यक्षता में काम किया था। वह पण्डित डेप्युटी सुपरिन्टेन्डेन्ट था। इन्होंने उसी पण्डित की चाल पकडी थी। ये बड़े ही हँसमुख थे, अच्छे अच्छे पदार्थ खाने और बनाने में निपुण थे, कपड़े पहिनने की ढब निराली ही थी, सभ्यतापूर्ण वार्तालाप करते, प्रातःकाल दो घडी शिव-पूजन में बिताते, जिसमें दो चार सौ आदमी दर्शन के लिये आते। तिलक इतना लम्बा चौडा लगाते कि आधे कोस से ही नजर पडे। लाल त्रिपुण्ड के आगे पीछे केशर लगाते मानो ताँबे के तपेले पर कलई की गई हो। भौह के बीच में काजल की बिन्दी देते-जिस से लोग समझें कि "कस्तूरी तिलक ललाट पटले" झूठे सौगन (शपथ) आप ऐसे लटके से खाते मानों खीर पुरी बरफी आदि ही उड़ा रहे हैं। सितार की भी पाँच सात गत आप टुनटुना लेते थे। संध्या समय एकलोटा भंग चढा, ऊपर से चरस की चिलम का दम खींच, चबूतरे पर सितार ले बैठ जाते। इनके यहाँ, गाँव के छटे हुए लडके, गपाप-घोसी के तरंग में बहे हुए युवकों, भंगेरी, चरसबाज, तथा गाजे का दम मारने वालों का समाज संध्या को सात बजे तक जुटा

रहता। रात्रि मे आठ से ग्यारह बजे तक शाक्तों का समाज इकट्ठा होता। उस समय कोई पशु भी वहा प्रवेश नहीं कर सकता था। उस समय तो केवल अधिकारी वर्ग ही एकत्र होते और 'किञ्चित पानम, किञ्चित ध्यानम्, किञ्चत् किञ्चित् चर्चणम्' का व्यापार चलता। ईश्वर ने हिन्दू धर्म को बहुत विस्तृत बनाया है। भाँग पीना हो तो शिव जी की बूटी। इससे उसके पीने में पाप ही क्या !

"महादेव कहैं सुन पारवती, विजया मत दे गँवारन को।"

गाँजा और चरस भी भोला शम्भू और भैरव नाथ के प्यारे हैं। इसलिये उसका दम मारने में भी दोष नहीं। मदिरा पान करना हो तो महाकाली की दीक्षा ले, फिर तो वह देवी का प्याला हो जाता है, फिर किस की मजाल जो चुचुर करे। उसी प्रकार मास का भी शाक्तों को काहे का निषेध। अपने तुलारामजी पटवारी भी प्रत्येक कार्य शास्त्रानुसार ही करते। पर स्त्री गमन से भी आप मुह न मोड़ते। उसकी सनद भी आप के पास उपस्थित रहती थी। विद्याज्ञान पर विशेष ध्यान देने की कोई आवश्यकता न थी। उन्होंने सगतों के अच्छे फल प्राप्त किये थे। स्वभाव जरा हसमुख था। एक चरणी कविता भी कर लेते। पर दूसरा चरण रचते रचते इनके पिता श्री पर-लोक पधारे थे। कभी कभी काग - र से (सप्तम सुर में) राग भी अलापते, और वह भी मद्पान के उपरान्त ही तथा अधिक तर कविता ही में।

"मुतरिबे खुशानवा बुगो—ताजा बताजा, नव बनव।"

आप स्वयंपाकी भी थे। हाथ ही से भात पकाते। किसी का छूआ हुआ खाना पाप समझते। शाक्त के अधिकारियो की मण्डली में चाहे चमार भी हो वहा इनकी राय में छुआ छूत

नहीं। प्याला पीते समय आप ध्यान करते और श्लोक भी पढते। किसी कवि ने ठीक कहा है'—

'पीता नहीं शराब कभी बे वज़ू किसे,
कालिब में मेरे रूह किसी पार की हुये।"

गाव के युवक इन के यहां नित्य आते। ये ब्राह्मण कुलावंश हो कर भी यदि ऐसे कर्म करें और राजपूत तथा दूसरे लोग इनका अनुसरण करें तो उस में आश्चर्य ही क्या? माणिक चन्द भूल कर भी उसकी तरफ न जाता। इसी से वह पापी पंडित माणिक का शत्रु हो गया था। गोविन्द को डराने के लिये वह सरकार में बराबर उसके नाम की झूठी रिपोर्ट करता। विचारे गोविन्द को डर के मारे उसके घर आटा, घी भेज उस को राजी करना पड़ता। गाँव की सरहद यानी, तीन कोश की दूरी पर एक छोटी सी नदी थी। वहा पटवारी जी का एक चक्कर नित्य लगता। सध्या-वन्दन के बहाने आप स्त्रियों को खूब घूर घूर कर देखते। नीच श्रेणी के काश्मीरी पंडितों के सब आचरण आपने स्वीकार कर लिये थे। सदा धर्म्म शब्द के उच्चारण ही को आपने धर्म समझ लिया था।

गोविन्दसिंह का गार्हस्थ्य जीवन भी बडा वेढव था। इनकी स्त्री प्रेमदेवी तुर्क मिज़ाज और कुन्द जेहन थी। माणिक चन्द की स्त्री रुक्मिणी को वह कभी भी चैन से न बैठने देती। नित्य लडाई झगडे हुआ करते। माणिक चन्द की बहिन भी अपने नैहर रहती थी। उसका पति अशिक्षित, मूर्ख और लपट था। उसने एक छटी हुई तम्बोलिन को रक्खा था। वह अपनी स्त्री से कोई सरोकार न रखता था। माणिक की मा अपनी पुत्री ही को ससार में सब से अधिक समझदार और चतुर समझती। लडकी भी उन्हीं में थी जिसे शाक्षात् चंडि-

ी कहना चाहिये। ननँद भौजाई में ... न बनती। दिन में सैकड़ों घर दांत बजते। प्रेम देवी सदी अपनी पुत्री का दक्ष लेकर गरीब रुक्मिणी के मा बाप को सौ सौ नरक कहलाती।

हीलर नाम के इतिहास वेत्ता लिखते हैं—हिन्दुओं को तथा सांसारिक सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता। दिन रात में इनको कभी भी धर्म के झंझटों से छुट्टी नहीं मिलती। चोखाई मर्यादा, पवित्रता, सेवा, पूजा, पाठ, चौका, मुटका आदि नित्य नियमों से ही इनको फुरसत नहीं मिलती। विवाह और मृत्यु के अवसर पर ये इतना अपव्यय करते हैं कि दिवाला निकालने की नौबत आ जाती है। इतना करने पर भी उपकार की गंध तक नहीं। ये भोजनभट्ट जिस पत्तल में खाते उसी में छेद करने की नीयत रखते हैं। इनके पूर्वजों ने ऐसी व्यावहारिक रूढ़िया चला दी हैं कि अब वे अनिवार्यसी हो गई हैं। उनके लिये अपव्यय न करने से इज्जत आबरू पर आ पड़ती हैं। घर में स्त्रियों का कलह कभी शान्त नहीं होता। कहां पश्चिमीय जातिया जिन्होंने अपने घर को स्वर्गतुल्य बना रखा है और कहां एशियाई जातियाँ जिन्होंने अपने घर को नरक से भी बदतर कर डाला है। ये लोग गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाना जानते ही नहीं।" हीलर महाशय का यह कथन अन्यत्र चरितार्थ होता हो या नहीं पर गोविन्द के यहां तो पद पद पर इसकी सत्यता स्थिर होती है। गोविन्द को एक घड़ी भी घर में बैठना दुश्वार हो जाता। नहाने धोने के बाद दो चार ग्रास दाल रोटी खाई, न खाई कि हाथ में हुक्का ले करजदार के दरवाजे तकाज़े जा बैठता। यही उसका दिन बीतता। घर में आते ही कलह पुराण की कथा आरम्भ होती। पुत्री एक ओर मुह

फुलाये बैठी है, तो स्त्री दूसरी ओर बड़बड़ पुराण का परायण कर रही है और बहू एक ओर अपने भाग्य को कोस रही है। किसी ने प्रातः काल से जलपान नहीं किया है तो किसी ने रसोई नही जीमी है तो किसी ने दो दो कडाके किये हैं। किसको कहा जाय और किसको नहीं? जिसको कहो उसी को बुरा लगे और एक दूसरे के माथे नहाये। नित्य के कलह से गोविन्द के नाकों दम आ गया। उसने इन लोगों से शब्द व्यवहार करना भी छोड़ दिया। क्षेमकुशल पूछने को कौन कहे। घर का खर्च दे देता, तीन बार भोजन कर लेता, दिन भर इधर उधर फिरता रात को घर में आ सो रहता—यही गोविन्दसिंह की दिनचर्या थी।

गोविन्दसिंह ने, माणिक के अभ्यास पर बड़े बड़े आशारूपी किले बांधे थे। पुत्र अच्छा ओहदेदार होगा, गहरी तनखाह लावेगा? गिरों रखी हुई जमीन छुडा लेंगे, बड़े बड़े घर बनवायेंगे, जाति बन्धु तब स्वयं आ कर देहली चूमेंगे, आदि स्वप्न गोविन्द सिंह नित्य देखता। माणिक चन्द के पत्र ने तो उसकी आँखे खोल दीं। उसने देखा कि पुत्र बीस रुपये महीने पर एक व्यापारी के यहा गुमाश्तगिरी करता है माणिक ने अपने पत्र में सरकारी-नौकरी की निराशा भी झलकाई थी। गरीब गोविन्द को दुख तो बहुत हुआ, पर वह कर ही क्या सकता था? यही कह कर उसने आँसू पोछे कि लड़का ठिकाने तो लगा। अब उसकी स्त्री को भी उसके पास भेजना ही पड़ेगा; चलो घर का कलह तो बन्द हुआ। पर मा को इस नयी चिन्ता ने ग्रसा कि पुत्र अब अलग रहेगा, बहू उसका कान भरेगी, हमारे घर की लौंडी हो कर अब वह हमारी परवाह न करेगी। माणिक उसके वश में हो जायगा और उसका

पक्ष करेगा। लड़के का घर बसे और लड़की नैहर में रोटी तोड़े यह कैसे देखा जायगा ? प्रेम देवी ने अपने मन में इस बात की गाँठ बांध ली कि चाहे आकाश पाताल एक हो जाय पर माणिक अपनी स्त्री का मुंह नहीं देख सकेगा।

माणिक चन्द भी अपनी मां और बहिन के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। सुशिक्षित माणिक अपने मन में भली प्रकार समझता था कि उसकी विवाहिता स्त्री की क्या दशा होती होगी। इसने तो अंग्रेजों की तरह अपने घर को स्वर्ग तुल्य बनाने का विचार किया था। पर वह स्वयं यह नहीं लिख सकता था कि मेरी स्त्री को लाहौर भेजो, क्योंकि यह बात तो हिन्दू धर्म शास्त्र के विरुद्ध है। जिसके साथ जिन्दगी काटनी है उस के साथ बातचीत करने में, दुख सुख की कहने सुनने में निर्लज्जता समझी जाती है। फटहा, निर्लज्ज, मा बाप की नाक कटाने वाला होता है। गोविन्द चाहता था कि जैसे बने वैसे बहू को लड़के के पास बिदा करें। पर जब वह प्रेम देवी के आगे इसकी चर्चा करता तब वह मुहूर्त, योगिनी, दिशाशूल, हेली मेली और सम्बन्धियों में विवाह आदि का बहाना कर के बात उड़ा देती। बहिन चाहती थी कि भाई भाभी को न बुलावे तो अच्छा, क्योंकि फिर वह जो दो चार रुपये बचा कर भेजता है शायद उसे भी बन्द कर दे। प्रेम देवी के मन में कभी कभी पुत्र प्रेम उमड़ आता। वह सोचती कि पुत्र पढ़ने लिखने की झंझट से तो आधा हो ही गया है, अब भी पचता नहीं, पढ़ते पढ़ते आँखें कमजोर हो गयी हैं तथा भरी जवानी में चश्मा लगाना पड़ता है, यदि अपने हाथ ही चूल्हा फूंकेगा तो बची खुची आँख की ज्योति भी जाती रहेगी। यदि किसी के साथ रहेगा तो अनेक भोग भोगने पड़ेंगे अतएव

पुत्र प्रेम वश हो कर कभी कभी वह यह सोचती कि स्वयं लाहौर जाऊँ और वहां पुत्र को अपने वश में रखू और रुक्मिणी को मन माना नाच नचाऊँ। पर इसमें भी उसको यह डर लगता कि ऐसा करने से रुक्मिणी भरपूर घर की मालकिन बन बैठेगी और जब वह घर का काम काज ठीक ठीक करेगी तब गोविन्द सिंह भी वहू के वश में हो जायगा। भला यह सब प्रेम देवी सी स्त्री को कब अच्छा लगता ? इस प्रकार प्रेमदेवीने घर को कैसे सत्यानाश में मिला दिया सो आगे चलकर आप पढ़ेंगे। हिन्दू संसार में स्वेच्छाचारी स्त्रियों का विशेष महत्व होता है। वे अपनी चंचल बुद्धि द्वारा पुरुषों को मूर्ख समझ नाना प्रकार के उपद्रव कर डालती हैं और सुखी घर को अपनी अशिक्षाके कारण नष्ट भ्रष्ट कर डालती हैं। किसी कविने सर्वथा सत्य ही लिखा है —

> "समझ अपने में नहीं, ना समझ पति को कहे-
> कर्कश बोले बोल धमकी और धिक्कार के।"

तृतीय प्रकरण।

> शिक्षितों की अवस्था।
> मैट्रिक मरने से बचे, बी० ए० के बेहाल।
> एम० ए० मरण पधारि में, यह विद्याके हाल॥

नौकरी मिलने पर माणिकचन्द ने छात्रालय का रहना छोड़ दिया अनारकली नाम के बाजार में उसने एक साधारण कोठरी भाड़े पर ले ली। उसी में उसने अपना सब खटपाट ला रखा।

कोठरी में क्या क्या सामान रखा था इस पर भी एक नजर डालनी चाहिये। बेंत की बीनी हुई एक पेटी थी, जिसमें विविध धर्म के भिन्न भिन्न विद्वानों की हस्तलिखित पुस्तकें भरी थीं। उसीमें की दूसरी पेटी तत्वज्ञान, विज्ञान, कालेज की पाठ्य पुस्तकें और शौक से पढने के लिये खरीदी हुई पुस्तकों से भरी थीं। एक पेटी में पहिनने के कपडे थे। काठ की एक पेटी में वैद्यिक, यूनानी और अंग्रेजी भिन्न भिन्न प्रकार की दवाएं थीं। किसी पर अंग्रेजी में टिंक्चर लिखा था तो किसी पर नागरी में नमक सुलेमानी, तो किसी पर उर्दू में अर्कें शफ़र, खाकी आईल इत्यादि नाम पढने में आते थे। एक तरफ दर्पण रखा है तो एक आले पर ब्रश, कंघी और सैन्डो के डम्बल्ड पडे हैं। दर्पण के ऊपर एक तख्ता जड़ा था जिस पर कुछ दवाई की शीशियां, और छोटी बड़ी डिब्बिया रखी थीं॥

माणिक ने एक नौकर भी रखा था। वह नैनीताल की तरफ का लागरी जाति का ब्राह्मण था। माणिक के जेबे में सदा तीन चश्मे रहते थे। एक आख को धूल से बचाने के लिये, एक दूर का और एक पढने के लिये। इन तीनो में से उसके नेत्र पर एक न एक बना ही रहता। इन चश्मो के दो एक टूटे पुराने खाते भी तख्ते पर पडे नजर आते। एक पुरानी तिपाई, वैसी ही एक पुरानी कुर्सी और एक किरमिच की आराम कुर्सी वह किसी कबाडी की दुकान से ले आया था। खाने पकाने के उसके पास कोई खास बर्तन न थे। तरकारी भाजी वगैरह बाजार ही से तैयार आता और इसी प्रकार काम चल जाता था॥

माणिकचन्द को पदलजी के यहा की नौकरी बहुत भारी पड गई थी। लगातार आठ घण्टे तक टेबुल पर बैठकर लिखना माणिक से क्षीण शरीर वाले से कब निभ सकता था। दूसरे

व्यापारियों की चिट्ठी पत्रियों में कोई कोई शब्द ऐसे विचित्र आ जाते कि वाक्य भर का मतलब एक हो जाता था, कितना ही माथा मारो पर अर्थ नहीं निकलता था। दिन में दस बारह बार तो कुर्सी परसे उठ उठ कर पद्मलजी के पास मतलब पूछने को जाना पडता था। इससे पद्मलजी बडे आश्चर्य में पडते कि एक एम० ए० पास व्यक्ति दूकानदारी के व्यवहारीक चिट्ठी पत्रों में इतना अधिक चक्कर में आ जाता है तो कालेज में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है। पद्मलजी को विशेष अचरज इस बात का होता कि माणिक घन्टे घन्टे भर पर दवा पीता, दिन भर ठों ठों करता, प्रति आधे घन्टे पर पांच पांच दस दस मिनट वह टेबुल पर किहुनी टेक कर बैठा रहता यदि कोई अंग्रेज ग्राहक कुछ खरीदने आवे तो वह थर थर कांपता और इसकी घिग्घी बंध जाती। भली प्रकार घूम घूम कर दुकान दिखाने की कौन कहे, यथा साध्य जल्दी यह उसको बिदा करने की ही केवल धाधना। कई बार पद्मलजी ने चाहा कि उसको नोटिस दे कर बरखास्त करें पर दया बीच में आ टांग अडा देती और इनको ऐसा करने से बाज आना पडता। कभी कभी तो पद्मलजी के मन में यह विचार आता था कि केवल बीस रूपये पर एक ऐसे हाउजिर से आठ आठ घन्टे बही खाते पर चक्की दरवाना एक घातकी का काम है। भोजन करते समय यदि पद्मलजी माणिक चन्द को बरखास्त करने की चर्चा करते तो गुरवानू के मुख से ये करुणा रस में पगे हुए शब्द एकाएक निकल पडते कि "पिता जी! ऐसे लाचार, मुफलिस, गरीब ग्रेजुएट के पेट पर लात मारना एक घातकी का काम गिना जायगा। ईश्वरेच्छा से आपको किस बात की कमी है? यदि कोई देखे सुने कि एक बार ऐसे मनुष्य को आश्रय दे अब उसको निकाल दिया तो क्या कहेगा!

अनेक बार ऐसी चर्चा छिडने से जरबानू को यह आशंका हुई कि उसका पिता माणिक को कहीं निकाल न दे। अन्त में यह सहृदय-सुन्दरी माणिक का बोझा हलका करने में उसे स्वयं योग देती परन्तु पदल जी इसके एक दम प्रतिकूल था कि उसकी एकलौती दुलारी बेटी एक साधारण गुमाश्ते का काम करे। जब जर ने पदल जी से कह दिया कि ऐसा करने से उसको आनन्द मिलता है तब सीधे सादे पदल जी चुप हो रहे। हमारे एम० ए० चन्द की अपेक्षा तो जरबानू पत्र व्यवहार में अधिक कुशल निकली। उलटा वही-माणिकचन्द को समझाती थी। माणिकचन्द का सब समय दुकान के ही काम में बीत जाता। बिचारे को उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढने और विविध विषयों के अवलोकन करने का समय ही न मिलता। जरबानू की सहायता को एक दैवी सहायता समझ कर वह प्रतिदिन उसके भार से नीचे दबा जाता था। कितनी बार उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह दया की देवी हमारे से निर्धन की इतनी सहायता क्यों करती है ? पर इसका समाधान न होता। कुछ दिनों तक तो चुपचाप मर्यादा से काम चला। फिर धीरे धीरे काम काज हो जाने पर विविध विषय पर दोनों में वार्तालाप होने लगे। इस प्रकार कितने दिनों में जाकर सङ्कोच दूर हुआ। फिर क्या था, एक दिन अपना थोडा सा काम खतम करके अवकाश मिलने पर माणिक ने बडे कोमल शब्दों में पूछा कि —

"जरबाई ! मुझे बडा आश्चर्य होता है कि आपने इतना अधिक अंग्रेजी ज्ञान कहां सम्पादित किया ? मैं आपको धाराप्रवाह की तरह बोलते देख आपका मुंह ताका करता हूं। इससे अधिक मुझे इस बात का अचरज है कि आप व्यावहा-

रिक भाषा और व्यापार-सम्बन्धी प्रचलित शब्दों का एक कोष हैं। यद्यपि मैंने एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है तथापि मेरी दशा मौलवी सखा साहेब के कथनानुसार ही है—

" मसा हमने बहुत कुछ कोशिशें की ताके कुछ समझें।
मगर समझे तो ये समझे कि अब तक कुछ नहीं समझे ॥"

जर ने माणिक के प्रश्न से प्रसन्न होकर पर सच को स्वीकार करते हुए कहा " जितनी अधिक आप धारणा करते हैं उतनी अधिक योग्यता मुझ में नहीं है, मिस्टर माणिकचन्द ! जब मैं छोटी थी तब बेहरामजी जीजी भाई गर्ल स्कूल में पढ़ने जाती थी, फिर कुछ समय तक मैं दीनशा पेटीट गर्ल स्कूल में पढ़ी। अब तक मैं फराम जी कावज जी इन्स्टीट्यूट में भिन्न भिन्न पुस्तकें पढ़ने जाती हू। धारा प्रवाह बोलने की आदत तो सगे सम्बन्धियों के कारण पड़ी। मेरी मण्डली के सब लोग सुशिक्षित ग्रेजुएट हैं। ईश्वरेच्छा पारसियो की अंग्रेजी बोलने की शैली स्वाभाविकतया अच्छी होती है और हमारे बम्बई की शिक्षापद्धति भी अति उत्तम है। आप पंजाबियों के उच्चारण तो स्वाभाविकरूप से अच्छे नहीं होते। वे लोग बिचारी भाषा की बड़ी निर्दयता से हत्या करते हैं। बम्बई तो बम्बई ही है। हजारो भाति की पढ़ने लिखने की सुगमता यहा हैं। प्रत्येक विषय के शिक्षक यहां मिलेंगे। आप का पंजाब प्रान्त, क्षमा कीजिएगा। मिस्टर माणिक जी—नोवा, आई मीन टु से माणिक जी शब्दो को उच्चारण करने लगे तब जर कुछ घबरा गई थी। एक दीर्घ श्वास ले कर फिर उसने अपना कोकिल स्वर छेड़ा, " मैं आप का दिल दुखाने या हंसी करने के लिये नही कहती हूं, पर मुझे तो आप का प्रान्त कुछ जगली सा मालूम होता है। मेरे ध्यान में आता है कि अंग्रेजी अमलदारी के पूर्व

यहा कोई दरजी भी न रहा होगा। थान का थान मलमल माथे पर लपेटते हैं वह भी एक उत्तर तो एक दक्षिण, ईजार या लहँगा के एवज में, भला सा उस का नाम है, हा लुगी-लुगी लपेटके साईं, फकीर की तरह फिरते हैं। स्त्रिया भी मैली कुचैली, आधी नगी घूमती हैं, न लज्जा न मुलाहजा। एक लम्बी चादर ओढी कि परदा बीवी बन के चलो। पैर में जूते तो हजार में से एकाद ही पहिनती होंगी और उस में नदी किनारे का दृश्य तो और भी बेहयाई का होता है। औरत मर्द दोनों एक ही स्थान पर निर्लज्ज की तरह स्नान करते हैं। हम लोग तो वैसा दृश्य कभी भी नहीं देख सकते।"

जरयानू की छटादार बातो और मत प्रकट करने की स्पष्टता पर माणिकचन्द लट्टू हो गया। उस को तो यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह स्त्री है कि पुरुष? कहा सौ बार बुलाने पर भी मुह से 'जी' या 'हा' उच्चारण करने में एक ग्रामीण स्त्री के नौ सौ नखरे और कहा यह पुरुषों को एक कोने में बैठाने वाली तेज और चालाक बाला!

'भला हुआ जो अंग्रेजी अमल्दारी हुई"—जरयानू कुछ देर चुप रही फिर एक श्वास से बोली, "बिचारे कोट पतलून तो पहिनने लगे। नहीं तो वह लुगी या दो थान के लहँगे, जिस में पांच मन तो अन्न समा जाय और जिस में चार आदमी समा जायं ऐसा कुर्ता जिस की आस्तीन में एक एक साथ आठ आठ हाथ रह सके, पहिनते थे। किसी कालेज के अध्यापक को लम्प वगैरह वस्तुओं की दरकार थी। उसने कल बाबा जी को बुलाया था, वे कहते थे कि हिन्दुओं के लडके धरन की फडी से अपनी चुन्दी (शिखा) बाध रात को बारह बारह बजे तक पढते हैं और सवेरे फिर चार बजे से अभ्यास में लग

जाते हैं। और खाने पीने के नाम दाल, चावल, जौ, गेहूं की रोटी। बस एम० ए० और बी० ए० होने की धुन लगी है, जिस से सुनो उस से परीक्षा ही परीक्षा सुनी जाती है। पंजाबियों ने तो यही समझ लिया है कि पढ़ना लिखना सब सरकारी नौकरी ही के लिये है। बस डिग्री और नौकरी यही दो भारतवर्ष का उद्देश्य है।"

माणिक चन्द, जिसने बड़े परिश्रम से विद्यार्जन किया था, बोल उठा, "श्रीमती, आपका एक एक शब्द सत्य है, यहां की जनता में बिल्कुल दम नहीं है। पूर्व में कुछ हो तो हो भी पर अब तो उसका नामोनिशान नजर नहीं आता। सब विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। मुझी को देखिए, मौका मिलने पर जब मैं अपने विद्यार्थी जीवन का वर्णन करूंगा तो आप दांतों अंगुली दबाएँगी॥"

"जरा! बेटी जर!" भीतर से एदल जी की आवाज आई॥

"हां, पिता जी अभी आई कहती हुई जर दौड़ती हुई अपने कमरे में घुस गई। माणिक भौचक्का सा होकर टेबुल के पास जा अपनी कुर्सी पर बैठ गया। वह अपने मन में यही गुनगुनाता कि इन लोगों के संसारिक सुख का पार कहां? ऐसी स्त्री को इसी के योग्य यदि वर मिले तो स्वर्ग और संसार में अन्तर ही क्या रह जाय? पारसियों में तो सुशिक्षितों की भरमार है। मैं एम० ए० हूं! इससे क्या? बीस रुपये! एदल जी सेठ की अंग्रेजी तो खैर, ठीक है, पर वह लाखों का धनी है! हाय! मैंने एम० ए० होकर व्यर्थ अपनी जिन्दगी बर्बाद की॥"

इसी विचारसागर में गोते लगाते हुए उसकी दृष्टि जापान से आए हुए माल की सूची पर पड़ी जिसको उसने तथा अरथानू ने साथ बैठ कर तैयार की थी। सूची को देखते ही

माणिक बोल उठा, "धन्य है, देश तो इसको कहना चाहिए। कितनी शीघ्रता से इसने ऐसी उन्नति की है ! वाह रे संघ ! ऐक्य की महिमा ही अपार है। हाय, हमारे से दीन हीन को ऐसे देश में कौन ले जाए ? यदि कोई ले भी गया तो जाति वाले शरीर पर खाल भी क्यों रहने देंगे ?"

एक बुड्ढे नौकर ने आकर माणिक चन्द से कहा—"आप को साहब बुलाते हैं बाबू जी।" माणिक चन्द, जापान के माल की सूची ले अपने सेठ के कमरे में गया। एदल जी ने सूचीपत्र देख कर कहा, "वेल बाबू ! यु आर एलकी मैन। आप के करते तो हमारी लडकी ने चार सतर अधिक लिखी है॥"

माणिक ने लज्जा से नीची निगाह करके उत्तर दिया "आप ठीक कहते हैं, गरीब परवर ! श्रीमती जर के मेरे पर लाखों उपकार हैं, आप मेरे अन्नदाता हैं। आप की बेटी मेरे साथ लिखने बैठती हैं यह देख मुझे बहुत लज्जा आती है पर करूं क्या ? शरीर से लाचार हू नहीं तो मैं मरते मरते भी इनको कष्ट न उठाने देता। अधिक तो कुछ नहीं कह सकता, पर ईश्वर से इतनी प्रार्थना करता हु कि हे दयानिधि, मेरे इस दुखी शरीर पर इस महामती के भी एकाध दु:ख डाल दे, और इनको सुखी रखे। हे ईश्वर, मेरी आयु में से इस दयामयी को पांच वर्ष अर्पण कर।" यह कहते हुए माणिक के नैन डबडबा आये॥

तिरछी निगाह से माणिक की अश्रुधारा देख अन्त:करण से दु:खी होकर जर बोली, "पिता जी, मैं इस काम को कष्ट रूप कब समझती हू ?" मैं तो केवल अभ्यास के लिये स्वयं लिखने बैठती हू। मिस्टर माणिक चन्द ! आप इस प्रकार इतने दुखी क्यों होते हैं ? मनुष्य यदि मनुष्य की सहायता करे

तो उसने कौन सा बड़ा काम किया ? यह तो उसका धर्म ही है।"

माणिकचन्द अपनी स्थिति पर एक दीर्घ श्वास ले विनयपूर्वक बोले, "यह आपकी कुलीनता है, और यह आपका सच्चा जरथोस्ती की बालिका का पवित्र खून बोल रहा है, श्रीमती !" "आप अपने पिता जैसी ही पवित्र और दयालु हैं । और किसी की ऐसी दुलारी बेटी अपने गुमाश्ते की ऐसी सहायता करे तो वह घड़ी भर भी टिकने न पावे। मुझे मेरी स्थिति का पूर्ण ज्ञान है । ईश्वर आप का कल्याण करे कि आप एक माथे पड़े दीन दु.खी को आश्रय देती हैं और उसको निबाहती हैं ॥"

सरल चित्त दयालु पद्ल जी अपने नौकर के दु.ख से दुखी होकर उसको धैर्य देते हुए बोले "शान्त हो बेटा माणिक ! जाओ, आज कुछ काम नहीं है, धैर्य धरो, घर जाओ ।" माणिक विनय पूर्वक अभिवादन कर चला आया । उसके चले जाने पर पद्ल जी ने जर की ओर घूम कहा, "सुशील बालक है, "हिन्दू स्वभाव ही से गरीब और उपकार को मानने वाले होते हैं । पारसी लडको की तरह ये उद्दण्ड और तूफानी नहीं होते ॥"

इसके बाद बाप बेटी में इधर उधर की बहुत सी गपशप हुई, जिससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है । हमें तो विश्वविद्यालय के रुस्तम और पठनवीर भीमसेन माणिक चन्द से मतलब है सो उसकी ओर चलें ॥

नौकरी पर से चल कर हमारा नायक सीधे अपने घर आया । आने के साथ ही बूट उतार कर वह अपने औषधालय की ओर इस प्रकार बढ़ा जैसे भूखा बंगाली भात देख कर । एक शीशी उतारी, उसमें की एक गोली खाई । फिर कपड़े

उसे उतार कर एक धोती पहिनी। गरम पेटी तो गले में सदा ही पड़ी रहती थी। धोती की काछ मार कर कोई चार पांच हाथ डम्बल्स हिलाए कि श्वास भर आया। पांच मिनिट सुस्ता कर उसी कोठरी में सवा सौ कदम घूम पसीना सुखाया फिर गरम जल से स्नान कर डाला। रसोईदार पहाड़ी व्यक्ति था उसके पेट में 'या देवी सर्व भूतेषु क्षुधा रूपेण संस्थिता' वाला हिसाब चल चुका था। माणिक चन्द के आते ही वह चटपट नीचे उतर अनार कली में से तरकारी और पकौड़े ले आया। आटा बांध कर पूछने लगा कि "सेठ जी, तरकारी भाजी ले आया हूं कहिये तो फुलके उतारूं दो नवाले गरमागरम।" माणिक चन्द ने पेट पर बायाँ हाथ फेर इधर उधर घूमते हुए कहा, "ठहरिए महाराज मैं कहूं नहीं तब तक आप तवा मत चढाइयेगा।" रसोईदार जी ने तो हाथ मार ठंडी श्वास ली। भूखे ब्राह्मण की कैसी दशा होती है यह तो पाठकों से कुछ छिपा ही नहीं है। चूर्ण की गोली ने माणिक की जठराग्नि प्रदीप्त न की। इससे उनको फिर उसी ओर जाना पड़ा। दूसरी शीशी उठाई और अंग्रेजी दवा की एक खुराक ली। दस मिनिट तक चक्कर लगाया। फिर भी कुछ नहीं मालूम हुआ। भूख माणिक का घर भूल गई है और रसोईदार के पेट में प्रवेश कर गई है। पाव घन्टे तक फिर आशा देखी, फिर भी उसका नामो निशान नहीं। अब खिजला कर माणिक ने निश्चय कर लिया कि डाक्टरी और वैद्यक दोनों दवाएं अपूर्ण हैं। यह फिर औषध की तरफ गया। अब यूनानी दवा की बारी आई। एक शीशी उठाई और एक खुराक 'जवारिशे मुस्तगी' की उड़ा गए। और तेली के बैल की तरह फिर चक्कर काटना शुरु किया। जिस प्रकार बनचारी ढोलक, झांझ आदि

से 'भागा हो ! हो !' आदि चिल्लाते हुए बाघ को शिकारी के सम्मुख भगा लाते हैं उसी तरह अन्त में आधे घन्टे बाद विविध दवाओं द्वारा क्षुधा देवी के दर्शन हुए। बिना दवा खाये ही इतनी देर में तो भूख स्वाभाविक रीति से लगी होती, पर हमारे यह पहलवान माणिक चन्द को तो यूनानी नुसखा ही सर्वोत्तम सिद्ध करना था। बस, फिर तो उन्होंने दो ग्रास खा ही लिये ॥

खाने पीने बाद अब पाचक औषधियों की बारी-आई। अंग्रेजी मेडिसिन और देशी औषधियों पर से तो अब श्रद्धा उठ ही गई थी, अतएव उन्होंने यूनानी पाचक-दवाओं से श्री गणेशाय नमः किया। पहिले उन्होंने एक गोली खा ली, फिर आधे घन्टे तक वैद्यक की पुस्तकों में से शक्ति की दवाएं पढ़ी। फिर मुंह में से कुछ फीका फीका पानी गिरा। लोगों का विश्वास है कि युवावस्था में निद्रा अधिक होती है और कहा भी है कि,

"लडकपन खेल में खोया,
जवानी नींद भर सोया,
बुढापा देखकर रोया।"

परन्तु विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तकें पढ पढ़ कर शरीर तो सुखा डाला था, दूसरे मन्दभागी माणिक चन्द से जिस प्रकार क्षुधादेवी का वैर था उसी प्रकार नित्य निद्रा देवी से भी बिछौने पर युद्ध होता। पडाडी मिश्र जी महाराज की नाक में मानो बरसाती मेंढक टर्रा रहे हो। कहिये कौन अच्छा है? कलम वाला कि कलछुल वाला? एक तरफ डिग्री प्राप्त विद्वान माणिक चन्द को, जिसने अभ्यास के पीछे अपनी शरीर मिट्टी में मिला दिया है, और जो क्षुधा और निद्रा के लिये

जलहीन मीन हो रहा है और संसार का दया पात्र बन रहा है, और दूसरी ओर उसके रसोईये को जिसने भूख लगने पर खा लिया है और निद्रा आने पर खुर्राटे मार रहा है, देख यह स्मरण हो आता है कि,

"सुख सोवै संसार में, भाग्यवान कोहार,
चिन्ता बांधी खाक में, धन्य धन्य अवतार।"

मुश्किलों से यदि निद्रा आई भी तो उसमें अनेक स्वप्न दीखते हैं। वे भी ऐसे कि 'स्वप्न विचार' की सैकड़ों पुस्तकों के पन्ने उलट डालिए तो भी उनके सिर पैर का पता ही न चले। पल में पहाड़ पर चढे तो क्षण में खाई में गिरे। घड़ी में सिर में थपकी लगी तो पलक भर में एकाएक चिल्ला उठे। रात भर बड़बड़ाहट, "आप से उऋण नहीं हूं, पिता जी ऋणी हैं, स्त्री नदी पर न जाय, तुलाराम सच्चा है, जापान जाना है, जाति वाले हुए हैं, कपड़ा अच्छा है, विचारों को याद रखना इत्यादि इत्यादि" भयंकर स्वप्नों से विचारा कई बार 'बाप रे बाप' करके जाग उठता। अन्त में देखा तो सवा छः बज गये हैं। सात बजे नौकरी पर हाजिर होना था। इसलिये विचार भवन (पायखाना) में गये तो वहाँ से भी खुलासा होकर नहीं आये। दतुअन कुल्ला कर दो लोटे पानी सिर पर उडेल लिये और कपड़े बदले, चाह के साथ में कुनैन की एक गोली ले ली, टिंचर की शीशी जेब के हवाले की और बूट पहिन दूकान का रास्ता पकड़ा। सो कर उठे कि एक घन्टा हो गया, तिस पर भी हाथ मुँह अच्छी तरह साफ नहीं हुए॥

पाठकगण! पढ़े लिखे सरस्वती के उपासक की एक रात का नमूना आपको दिखाया है। वैसी एक ही रात नहीं बल्कि साल में दो सौ पैंसठ रात्रियाँ हमारे अधिकतर ग्रेजुएटों की

३

ऐसे ही कटती हैं। माणिक की तो नित्य की यही दशा थी। अरेरेरे! विचारे के उत्तमोत्तम विचार, स्वदेशभक्ति, धर्मसम्बंधी खोज और रिवाज सुधारने की उत्कंठा, राजकीय विषयों की बारीकियां, देशाटन का उत्साह विज्ञान और तत्वज्ञान के रहस्य कवियों के उत्तमोत्तम पद और लेखकों के नस नस अभिप्राय जिनको उसने दीर्घकाल के असीम प्रयत्न और परिश्रम से अपने मस्तिष्क में भरे थे वे सब अर्थ सम्बन्धी चिन्ता और औषधियों को दुग्धा के कारण पानी में मिल गये। इस समय तो पढने लिखने का फल यही मिला कि दिन भर दूसरे की दूकान में कागज लीपना और औषधियों द्वारा अन्न पचाना, जिसका नाम आनन्द और शान्ति है, उसका तो स्वप्न भी दीन माणिकचन्द को नहीं दिखाई पडता था। दिन भर की झंझट के बाद यदि घडी आध घड़ी जरसे वार्तालाप करने को मिलती तो उसी से माणिक का मन बहलाव हो जाता॥

चतुर्थ प्रकरण

जरवानू का घर

पदलजी की दुकान एक महल की तरह बडे विस्तृत स्थान में थी। उसके एक हिस्से में गोदाम बना था, जिसमें नाना प्रकार के मालों की सैकड़ो पेटियां पड़ी थी। बीचका कमरा जो प्राय सौ फीट लम्बा और पचास फीट चौडा होगा उसमें सब बिक्री का माल विविध प्रकार की कांच की अलमारियें में बड़ी सुघडता और सुन्दरता से सजा कर रखा हुआ था

सिरे पर दो कमरे थे, एक में अंग्रेजी आफिस था और एक में एक पारसी गुजराती भाषा में सब बही खाता रखता था। यह पारसी व्यक्ति एदलजी का दूर का सम्बन्धी था। एदलजी का इस पर पूर्ण विश्वास था। दूकान में और भी दो पारसी नौकर थे, जो दोनों एदलजी के गोलोक वासिनी बहिन के पुत्र थे। एदलजी की धर्म-पत्नी भी कई वर्ष हुए परलोक सिधार चुकी थीं। पर सरल चित्त सद्गृहस्थ ने स्वप्न में भी दूसरे विवाह का ध्यान न किया था। जर अपने पिता की कैसी प्यारी और दुलारी होगी, यह अब विचक्षण पाठकों से छिपा नहीं रह सकता। अतएव इस पर विशेष विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एदलजी जरको अपना धन, सम्पति, इज्जत, आबरू, जीवन सब कुछ समझता था। जर यदि आकाश के तारे माँगे तो भी एदलजी सर्वस्व देकर जरकी इच्छा पूर्ण करने में आनन्द मानता था। उसी तरह जर भी एक देवी का अवतारही थी। उसका शरीर ईश्वर ने दया की मिट्टी से गढा था। परमार्थ के लिये वह अपना जीवन हथेली पर लिये फिरती थी। दूकान के पिछले भाग में एक विशाल बङ्गला था, जिसके अगले भाग में एदलजी स्वय रहते थे और पिछले भाग मे उन्होंने अपनी एकलौती बेटी जर के लिये तीन कमरे खूब अच्छी तरह सजा धजा दिये थे। आगे का बडा कमरा जर की बैठकथी, जिसके दरवाजे के एक तख्ते पर लिखा था। "बिना आज्ञा अन्दर आना मना है।" एदलजी स्वयं यदि वहां जाते तो पहिले बाहर से पूछ लेते। इस कमरे में घुसते ही सामने एक चांदी के सुन्दर चौखटे में मढी हुई श्वेतमान जरतुस्तजी की पूरे आकार की तसवीर शोभायमान था उसके नीचे एक सुन्दर टेबुल पर चांदी का धूपदान रखा था। जिसमें चन्दन की सुगंध निरन्तर निकल कर मस्तिष्क को

शान्त करती और चित्त में शुद्धता और भक्ति उत्पन्न करती थी। हजरत जरतुस्त के चित्र के एक ओर जर की मृतक माँ मेहरबानू की और दूसरी और उसके पिता एदल जी का सुन्दर चित्र अच्छे चौखठे में शोभायमान था। ये तीनों तसवीरें बंबई के आर्ट स्कूल के अध्यापक के कलम के नमूने थे। इन्होंने ही जर को चित्रकला सिखाई थी। इन चित्रों में केवल प्राणार्पण ही करना बाकी था। माता पिता के तसवीरों के नीचे जर एक एक धूपबत्ती निरंतर जलाता। दरवाजे के दोनो तरफ संगमरमर के टेबुल ऐसे शोभायमान थे कि देखनेवाले दांतो उंगली दबाते। ये छोटे पर बहुमूल्य टेबुल एक ही पत्थर में से गढे गए थे। दोनो पर एक एक फूलदान ताजे फूलों से सुशोभित रखे थे। इसके अतिरिक्त दोनो कोने में दो लकड़ी की टेबुलें इस से कुछ बडी होशियारपुर के कारीगरों की बनाई हुई थीं, जिनमें हाथीदांत के बेलबूटे बडी-बारीकी से बनाये गए थे और जो हिन्दुस्तान के गौरव का नमूना था। इन मेजों पर छोटे छोटे चौखटो में मढी हुई रंग बिरंग की फोटोग्राफ रखी थी। मखमल की कोच और कुर्सियों पर रेशमी गिलाफ चढी हुई थी। बीचोबीच एक बिल्लौरी तिरपाई और चार घूमने वाली बिल्लौरी कुर्सियाँ रखी थी, ठीक उसी के ऊपर प्रायः दो सौ मोमबत्तियों का झाड लटक रहा था, जिसकी आभा टेबुल और कुर्सी पर पडने से कमरे की शोभा चौगुनी बढ जाती थी। भीत में विविध प्रकार के सुन्दर चित्र जडे थे। प्रत्येक चित्र में काश्मीरी बारीक काम के उत्तम दुशाले लटकते थे। दो सुन्दर आलमारियों में चीन के बने हुए हाथीदांत के, दिल्ली की कारीगरी के नमूने चांदी के, तथा लखनऊ की कारीगरी के द्योतक मिट्टी के खिलौने सजाए थे। एक हाथी-

दांत के टेबुल में शतरंज के खाने खुदे थे और उस पर हाथी-दांत ही के मोहरे भी रखे थे। थोड़े में यही समझना चाहिये कि एक राजसी बैठक की तरह जर की बैठक थी।

दूसरे कमरे में चित्रकला सम्बन्धी अनेक सामान पड़े थे। उस कमरे में सदा ताला बन्द रहा करता था, क्योंकि उसमें जर किसी की तसवीर बना रही थी। उसमें अभी बहुत काम बाकी था। जब रात में केवल एक घन्टा, उस कमरे के अन्दर से बन्द कर के दो बड़े लम्प जला, बड़े ध्यान और प्रेम से वह चित्र तैयार करती थी। तीसरा कमरा उसका शयनागार था। उसमें दो आलमारियाँ थीं जो नाना प्रकार के अमूल्य वस्त्रों से खचाखच भरी थीं। दोनों आलमारियों के बीच एक दरवाजा था जिस में एक छोटा कमरा था वह जर का शृंगार घर था, उस में दो बड़े दर्पण, और ब्रश, कंघी, तेल, फुलेल, अतर आदि के बकस रखे थे।

पाँचवां प्रकरण

जरबानू की स्थिति।

माणिकचन्द्र की एक रात पाठकों ने देख ही लिया है, अब जर की एक रात देखिए। आठ बजे हैं। सात आठ आदमी ब्यालू करने टेबुल पर बैठे हैं। साढे नौ बजे तक सब ब्यालू कर अपने अपने स्थान पर चले गए। जर बानू भी सब से साहेब सलामत कर के अपने पिता की आज्ञा से अपने कमरे में गई। अपने बैठक के दरवाजे जर ने अन्दर से बन्द कर दिये। पहिले पहिल उस

ने आलबम (चित्राधार) का पैन्न खोला। एक फोटो को जिस के नीचे 'केवल तुम्हारा माणिक' लिखा था, पाँच मिनिट तक देखती रही। फिर आलबम बन्द कर पैन्न भी लगा दिया और अपने चित्रकला के कमरे में गई। वहाँ उसने अपने हाथ से दो लम्प जलाये। रंग और कलम से उसने एक आइल पेन्ट पर थोड़े समय तक काम किया। मूर्ति चित्रित करने का चौगुना समय उसका असल फोटो देखने में जाता। पाँच मिनिट एक टक से फोटो देखती और एक दीर्घ श्वास लेती, एकाध मिनिट काम कर फिर पाँच सात मिनिट तक फोटो देखने में लीन हो जाती। दस बज के पंचीस मिनिट पर वह उठी, लम्प बुझा के कमरे का ताला बन्द करने के बाद कपड़े बदलने वाले कमरे में गई दीपक को तेज किया। एक सन्दूक खोल उसमें से एक लकड़ी का चीनी कारीगरी का चौखूटा बक्स निकाला। उसका ढकना खोला, उस पर दिल्ली के प्रसिद्ध चित्रकार नजीर हुसेन के हाथ की हाथी दाँत पर चित्रित हुई उसी व्यक्ति की तसवीर जड़ी हुई थी, जिसकी कि तसवीर

लिया, तत्पश्चात् तकिये की गिलाफ में बड़ी सावधानी से रखा। स्नान आदि के बाद कुछ व्यायाम कर, स्वच्छ वस्त्रादि धारण किया और हुर्जरन जरथोस्त की तसवीर के आगे जा खड़ी हुई। धूपदानी में लोबान रखा और प्राय एक घण्टे तक पवित्र मनसा वाचा और कर्मणा दादार अहुर्मज्द का स्मरण कर, पवित्र जन्द अवस्था का पाठ किया। फिर जर ने न मालूम क्या प्रार्थना की कि उसके मृगनैन से अश्रुधारा बह चली। आलबम खोल, तसवीर देखी फिर उसको बन्द कर दिया साढे आठ बजे उसने अपने कमरे का दरवाजा खोला। घार्निंग बेल* पर दो थपके लगाए कि दो मिनिट में चाह और नाश्ता हाजिर हुआ। तदुपरान्त बम्बई से आई हुई डाक को जो नौकर ले आया था हाथ में लिया। उसमें कोई चिट्ठी न थी पर तीन समाचार पत्र थे। जर ने पहिले अंग्रेजी समाचार पत्र खोला और उसमें से दरियाई सम्बन्धी सब लेख बडे ध्यान से पढे। फिर गुजराती भाषा के समाचार पत्र को बारी आई, उस में भी उसने उसी विषय के समाचार पढे। उसने एक बार फिर उठकर उस तसवीर को देखा और आराम कुर्सी पर पड़ गई। अखबार पढ़ने में उसको दस बज गए। तब वह पिता के पास गई और वहाँ पाव घन्टे तक बात चीत कर अपने कमरे में चली गई। फिर उस तसवीर को देखा, और 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस†' नाम की पुस्तक पढने लगी। ग्यारह बजे उठी, तस्वीर देखी, आलबम्ब बन्द किया और माणिकचन्द के पास गई। वहा एक घन्टे तक उसने उस के काम में सहायता दी। बारह बजे भोजन

* नौकर चाकर को सूचना देने वाली घटी।

† अंगरेजी का एक प्रसिद्ध उपन्यास।

करने के टेबुल पर जा बैठी। एक बजे उसने अपने कमरे की सिट-किनी चढ़ाई और एक पत्र लिखा, लिफाफे में उसको बन्द किया और एक ठंडी श्वांस लेती हुई अपने श्रृंगार घर गई। वहाँ उसने एक पेटी खोली और उसमें इसको छोड़ दिया। उस पेटी में ऐसे कागजों के ढेर पड़े थे। तीन बजे से साढ़े चार बजे तक वह फिर माणिक के पास जा बैठी। काम काज से निवृत्त होने पर जर ने माणिक चन्द से पूछा—

"मिस्टर माणिक चन्द क्या आपने किसी समाचार पत्र में अपोरो जहाज के पता लगने की चर्चा पढ़ी है"

"श्रीमती आपके इस नित्य के प्रश्न के कारण मुझे प्रति-दिन पुस्तकालय में जा दस बीस पत्र पढ़ने पड़ते हैं, पर अभी तक तो मेरी समझ में कोई सम्वाद नहीं आया है"

"आलराइट, साहब जी," जर एक दीर्घ श्वास से चलती बनी। वह अपने पिता के पास नित्य के नियमानुसार बरामदे में जा बैठी।

एक दिन जब जर नियमित रूप से ग्यारह बजे माणिक के पास गई तो माणिक ने अपने जेब से एक समाचार पत्र के विशेष अंश का तार निकाल जर के हाथ में रखा। जर ने उस में हरयाई समाचार पढ़े। हर्ष से उछलती हुई वह माणिक की तरफ घूम कर बोली, "थैंक यू, मिस्टर माणिक चन्द। आप के अनुग्रह और सुसमाचार के लिये मैं आप की यह तुच्छ भेंट करती हूं। इसे आप स्वीकार करें।" प्रसन्नचित्त जर ने एक गिन्नी माणिक चन्द के हाथ में रखी। माणिक चन्द को तो लगभग एक महीने का वेतन मिल गया। उसने जर को कोटिश: धन्यवाद दिए और फिर अपने काम में लग गया। आज उसके हाथ पैर में भी रोज से अधिक बल मालूम होता था

आज उस को भूख भी अगर न लगे तो क्या आश्चर्य ! उस अंग्रेजी समाचार पत्र में लिखा था कि "अपोलो की खोज में गए हुए एक जापानी स्टीमर ने उस को दूर से देखा है। आशा है कि शीघ्र ही उसका पता लग जाएगा" इतनी ही बात को जर ने कम से कम पचीस बार तो पढ़ा होगा। फिर वह कोमल हरिणी की तरह कूदती हुई अपने कमरे में चली गयी।

दूसरे दिन जब जर आफिस में आई तब उसने यह बात छेड़ी कि "माणिकचन्द जी, अपोलो कैसा प्यारा नाम है, क्यों ? क्यों आपको भी यह नाम प्रिय लगता है न ? हमारे बम्बई में इसी नाम का एक बन्दर है। सन्ध्या समय वह तो स्वर्गतुल्य हो जाता है। यह भी आप जानते होंगे कि रोम ग्रीस के गायन तथा वैद्यक शास्त्र के देवता का नाम भी अपोलो था। अहा हा ! मैं अपोलो स्टीमर देखने गई थी, वाह ! वह ऐसा सुन्दर, नवीन और साफ था मानो वास्तव में तस्वीर के अन्दर बिजली की रोशनी थी। उस पर प्रतिदिन बैंड बजता था। लोग कहते थे कि चलने में भी अपोलो बड़ा तेज था, अधिक हिलता डुलता भी न था। उसमें यूरोप से एक राजकुमार भी जो हिन्दुस्थान देखने आये थे, बैठे थे। मेरे कितने सम्बन्धी भी उसमें थे। परमेश्वर उस स्टीमर को कुशलता पूर्वक किनारे लगाए। उसमें एक लेफटिनेन्ट लेफटिनेन्ट हा, बराबर अंग्रेज पारसी और बहुत से लोग थे। हे दयासागर—किसी के भाई किसी के पुत्र और किसी के हाय—सब पर दया कर। सब की इच्छा पूर्ण कर। अरेरे ! दुनियाँ दुनियाँ !"

माणिक ने आज जर को पहिले ही पहल इस प्रकार चिंतित और शोकाकुल देखा था। उसने यह सोचा था कि जो पारसी

उसमें थे उस में सेठ के भी कोई सगे सम्बन्धी होंगे, जिस के कारण जर इतनी दु:खी होती है। उस विचारे ने अपने कृपालु मालिक की पुत्री को धीरज देने के लिये कहा, "श्रीमती ईश्वर की लीला कोई नहीं जानता, तथापि अपने को मगल कामना करनी चाहिए, यही अपना धर्म है। आगे ईश्वर की इच्छा प्रबल है। यो तो स्टीमर के साथ लाइफ बोट वगैरह मनुष्य के बचाव के साधन अनेक हैं, पर ह , माल असबाव की विशेष हानि–"

लाइफबोट का नाम सुन जर आशापूर्ण हो बोल उठी, "ठीक है, ठीक है, माणिकचन्द! आप सच कहते हैं, लाइफबोट और सहायतार्थ गए हुए और भी स्टीमर बराबर हैं। दीनबन्धु दया करेंगे, अवश्य दया करेंगे। लाइफबोट जिन्दगी का सहारा, कैसा मधुर शब्द है!; लाइफबोट—अरे लाइफबोट!" एक अधीर की तरह जर अपने कमरे में दौड गई। माणिकचन्द मुह बाये रह गया कि आज जर को क्या हो गया है। पाँच बजे जब सेठ से विदा होने माणिक गया तो, सेठ ने कहा कि कल छुट्टी है। कारण कि कल जमशेद जी नवरोज है।

छठवाँ प्रकरण।

लाहौर–म्यूजियम

आज पारसियों का 'नवरोज' तेहवार है। लाहौर निवासी सब ही पारसी, आज हँसी खुशी में मस्त हैं। मध्याह्न बाद सब स्त्री, पुरुष लाहौर का म्युजियम (अजायबघर) देखने गए थे। म्यूजियम में एक तरफ एक प्रदर्शिनी देखने में छोटे बड़े लगभग

चालीस आदमी जुटे थे, दूसरी तरफ उन लोगों को देखने वाले सौ सवा सौ नागरिक एकत्र हुए थे। कितने सरल स्वभाव के मनुष्य बालकों हो को खड़े देख रहे थे। थाने पर खबर पहुंची की पाच सिपाही बन्दोबस्त करने के लिए आ धमके। ईश्वर की लीला अपरम्पार है, देखो सज्जन पुरुषों से परमेश्वर के नाती गोती पुलिस वाले भी काँपते हैं। देखते ही देखते भीड़ छट गयी। स्त्रियाँ भाँति भाँति के वर्त्तन, वस्त्र और चित्र विचित्र दृश्यों को देखने में लगी थीं। पुरुष लोग सिक्के धातु और शिल्पकारी ही की प्रशंसा में तन्मय थे। बालकवृन्द साँप बीछू अजगर, नेवले आदि पशु-पक्षी देख देख कर खूब आनन्दित होते थे। परन्तु जरबानू के माथे न मालूम कौन सा भूत सवार था कि वह सबसे अलग हो, जहाँ जहाज नौका आदि के काठ के बने हुए नमूने रखे थे वहीं जा एकचित्त हो उनको देखने लगी।

आफत पर आफत! माणिकचन्द जो आज विशेष अजीर्ण के कारण डाक्टर के घर गए। बीस रुपये के वेतन में माणिकचन्द डाक्टर का विल रोज उठ कर कैसे चुकाता होगा? डाक्टर बाछा जर के सगे मातुल थे। एदलजी ने जर के कहने से उन के नाम एक पत्र लिख दिया था कि माणिकचन्द के दवादारू का बिल दुकान खाते लिख रुपये मँगा लिया करना। माणिक जब बाछा के घर पहुचा, तो वहाँ पता लगा कि वे एदलजी के यहाँ गये हैं और एदलजी के यहाँ से यह खबर मिली की म्यूजियम देखने गये हैं। गरज का मारा माणिकचन्द वहां पहुँचा। वहाँ वह क्या देखता है कि लाहौर भर के पारसी लोग सपरिवार मौज उड़ा रहे हैं। माणिकचन्द ने विनयपूर्वक सेठजी को सलाम किया। एदलजी माणिकचन्द

सम्बन्धी खोज जो कुछ पहिले हो चुकी है वही पढने में आती है। मालूम पडता है आपने बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ पढा नहीं है, इसी से ऐसा कहती हैं। हाँ, अच्छा याद आया आजके तार से पता लगा है कि अपोलो बहुत भयानक स्थिति में है। चार पाँच स्टीमरें उसकी सहायतार्थ जा चुके हैं। यथा साध्य वे मुसाफिरों की प्राणरक्षा की पूर्ण चेष्टा करेंगे।" इतना कह माणिकने अपने जेब मेंसे एक अंग्रेजी समाचार पत्र निकाल जर के हाथ में रखा। आज तो जरबानू के यहाँ त्यौहार था, इसलिये उसके पिताने उसके जेब रूपयोंसे भर दिये थे। सुसमाचार सुनकर जर ने अपने पोल (चोली विशेष) के जेब से दो गिन्नियाँ निकाल माणिकचन्द के हाथ में धरीं। माणिकचन्द बारबार की इस बात से बहुत शर्माकर बोला,—

"जरबानू! आज पीछे अब मैं आपको समाचार पत्रोंके सम्वाद लाकर नहीं दूंगा, कारण कि आप मुझे सहज में पुरस्कार दे कर लज्जित करती हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि मैं सोने की मोहरों की लालचसे ही अखबारों में से खबरें खोज कर आपको देता हूं। नहीं साहब, नहीं, मैं इतना लालची और नीच नहीं हूं, मैं तो अपने सेठ की पुत्री की आज्ञा—

जर ने बात काट कर कहा "लीजिये भया न, अब मैं भविष्य में नहीं दूंगी। अस्तु, मैं यह पूछती हूं, माणिकचन्द, कि पेशावर में तो सब मुसल्मानो ही की बस्ती है, वहां से जो यह मूर्ति निकली सो क्या वे भी मूर्तिपूजक थे?"

माणिकचन्दने कहा, "बात यह है कि मुसलमान भी पहिले मूर्ति की पूजा करते थे। इन लोगोंके तीर्थ-स्थान मकामें हजारों मूर्तियां थीं। परन्तु जब हजरत मुहम्मद साहब पैगम्बर हुए, तब उन्होंने यह प्रथा बन्द कर दी और सब मूर्तियों के टुकड़े

टुकड़े करा डाले। पेशावर ज़िले में बुद्ध की मूर्ति निकलने से यह सिद्ध होता है कि वहाँ भी बौद्ध मतका प्रचार रहा होगा।"

माणिक ने विचार किया कि आज सेठजी का त्योहार है और अपने पास में पैसा भी आ गया है, अतएव सभ्यता के अनुसार सेठजी के यहाँ कुछ मेवा मिठाई भेजनी चाहिए। बस, वह धीरे से बाहर निकल आया। पास ही, चौमुहानी पर से वह दो रुपये की मिठाइयाँ और तीन रुपये के सूखे मेवे ले आया और सेठ के सम्मुख बड़ी नम्रता से भेंट रखी। सेठ ने प्रसन्न बदन हो उसके सिर पर हाथ फेरा और भेंट स्वीकार की। म्यूज़ियम देखने के बाद सबों की इच्छा शाली मार बाग़ देखने की हुई। सब गाड़ियों पर लद कर वहाँ पहुँचे। लड़के वहाँ के बन्दरों को देख कर कूदने लगे, स्त्रियाँ मोर के रङ्गों पर मोहित हो गईं और पुरुष शेर, चीते और बाघों से छेड़छाड़ करने लगे। जर तालाब के किनारे जा खड़ी हुई। तालाब को देखते ही उसके मनमें समुद्र की तरगें उठने लगीं। उसने एक वृक्ष से पीठ टेक खड़ी होकर अपने जेब में से उस अंग्रेज़ी अख़बार को निकाला और उसके पढ़ने में तल्लीन हो मनमाने अर्थ लगाने लगी। माणिक भी तालाब के किनारे खड़ा खड़ा बगल और बत्तखें देख रहा था। तालाब के बीचोबीच तार का एक जाल बना हुआ था। उसमें भाँति भाँति के जलचर पक्षी उड़ने और किलोलें करते थे। माणिक को यह दृश्य देखते ही हिन्दू संसार का स्मरण हो आया। वह मन ही मन गुनगुनाने लगा, 'अहा! हिन्दुओं के घर संसार और धर्म इस तार के जाल की तरह और हिन्दू लोग इन पक्षियों की तरह हैं। क्योंकि उड़ते फिरते, खेलते-कूदते, सब कुछ इतने ही घेरे में करते हैं। उन्नति की परवाह न करने वाले तो उन पंखहीन बगलों की तरह हैं।

और जीवन की इच्छा से 'नहीं नहीं कहते,' जाने ही देते हैं। सभ्य अंग्रेजों की मेम साहिबा भी अपने बच्चों को अनेकबार नमस्कार कराने लाती हुई देखी गई हैं। प्रेम के वश में पड़ी हुई मूर्ति अथवा कबरो की अनेक मानमनौती करते हैं। आर्य समाजी लोग मूर्ति को खण्डित करने हैं, मूर्ति पूजा का निषेध करते हैं, तथापि वे अपने गुरुदेव "दयानन्द" को पुष्प हार चढाते और प्रातःकाल उनके दर्शन करते हैं। एकेश्वरवादी प्रार्थना-समाजी भी केशव, राममोहन और देवेन्द्र के दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं। कर्मवादी भी पार्श्वनाथ की मूर्ति के पूजन में किलोलें करते हैं—अपने प्रेम पात्र के टपके ज्योतिष, रमल, नजूम आदि दिखाते हैं। इन सब को मिथ्या समझते हुए भी किसी के प्रेम पाश में फँसे हुए व्यक्ति यह सब करते हैं। माता-पिता पुत्र के लिए,पुत्र माता-पिता बहिन भाई या पती के लिये, सम्बन्धी सम्बन्धी के लिये, मित्र मित्र के लिये प्रेमी प्रेयसी के लिये, चकोर चन्द के लिये, स्त्री पुरुष के लिये पुरुष स्त्री के लिये, कंजूस पैसा के लिये,पतङ्ग दीपक के लिये और भ्रमर पुष्प के लिये जो कुछ करता है वह केवल प्रेम के प्रभाव के ही कारण। ठीक कहा है—

"भूत लगे मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय,
(परन्तु) प्रेम सुधारस जिन पियो, तिन न रहे सुधि कोय।"

हमारी कथा की नायिका जरवानू, यद्यपि एक सुधरी हुई, सुशिक्षिता, पढ़ी लिखी और नई रोशनी की नवयुवती है, तथापि इस समय प्रेमपाश में बँधी होने के कारण वह भविष्य देखने की चटपटी में पड़ी है। टिप्पणी, पंचाग, या और कोई साधन तो था ही नहीं। अतएव जो कुछ 'जंद अवस्था' में निकले वही भविष्य फल होगा, यह विचार कर

उसने 'जन्द अवस्था' का ग्रन्थ हाथ में लिया, और मन को स्थिर और शान्त कर बोली:—"ए पाप हारार ! ए सचाई के परखने वाले, ए मेरे दीन मजहब के पेशवा 'जरथुस्त' जो मेरा प्रेम सच्चा और पवित्र हो तो इस पवित्र ग्रन्थ में से मेरे पथ-प्रदर्शक वाक्य निकलें।" इतना कह उसने ग्रन्थ खोला और उसको निम्नलिखित वाक्य मिले.—

"प्रत्येक विपत्ति टल जाती है। संसार संकटों का द्वार है। कोई भी ऐसा नहीं है जिसपर संकट न पड़े हों। अन्त भले का भला है। मन को व्याकुल नहीं करना चाहिए ? ईश्वर की इच्छा होगी तो अवश्य होगा। मनुष्य के उद्योग का फल क्या होना चाहिए ? धन दौलत से सुख और शान्ति नहीं मिलती, परन्तु बुद्ध की तरह दृढ़ता और श्रद्धा से शान्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।"

इतना पढ़ कर जर विचार सागर में गोते लगाने लगी और बहुत देर के बाद जब उसको ध्यान आया तब वह बड़-बड़ाने लगी, "फल तो अत्युत्तम निकला।" बुद्ध का नाम पढ़ वह बहुत आश्चर्यित हुई कि जरतुस्ती धर्म में भी उस महात्मा का नाम निकला, जिनकी प्रतिमा आज ही देखी थी। अब तो उसे और भी खलबली पड़ी कि कब सवेरा हो और माणिक चन्द से बुद्ध के विषय में पूछूँ।

सातवां प्रकरण।

परीक्षा! बस!! परीक्षा परीक्षा!!!

भारतवर्ष की यूनिवर्सिटियां शिक्षा और कला सिखाने वाली नहीं हैं। उनका काम तो केवल परीक्षा लेने का है। एन्जिल का वाक्य है कि "ईश्वर किसी की परीक्षा न कराये।" ब्रिटिश-राज्य के आरम्भ में सरकारी कर्मचारियों के दो दल हो गए थे और उन लोगों में मत भेद पड़ गया था। प्रथम स्वार्थान्ध अर्थात् अपना ही पेट भरने वाले का यह कहना था कि भारत वर्ष को शिक्षा द्वारा सुधारने का काय बड़ी जोखिम का है। इनके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे मत वालों का यह विचार था कि "भारत वर्ष को उच्च कोटि की शिक्षा द्वारा सुधारने से सरकार को बहुत लाभ होगा, अशिक्षित और जंगली अवस्था में उनको रहने देने से ये लोग बड़े उपद्रवी और आफत की पुड़िया हो जायेंगे, और जब तक ये सुशिक्षित नहीं होंगे तब तक अपनी राजकर्तृ सरकार के गुण और महिमा न जान सकेंगे। लार्ड मैकाले ने भी इस कथन का बहुत समर्थन किया था। इस विषय पर उन्होंने कई लम्बे चौड़े मौलिक लेख लिखे थे। उनका यही कथन था कि भारत वर्ष को अच्छी शिक्षा द्वारा सुधारना, यही अंग्रेज़ी सरकार का मुख्य कर्तव्य है। ईश्वर ने जिन लोगों को अंग्रेज़ी राजकर्ताओं का आश्रित बनाया है उन लोगों का भला करने से ही वह कर्तार प्रसन्न होगा। आखिरकार इस महापुरुष के विचारों की तूती बोली विपक्षियों का पराजय हुआ। स्कूल और कालेजों की स्थापनाएँ हुईं। ऊंचे प्रकार की शिक्षा दी जाने लगी। इस शिक्षाने

और लिखाते और दम पर दम प्रश्नों की भरमार कर देते। और इन प्रश्नों में कभी कभी सेर और मन के भी हिसाब आ जाते, जिन को हमारे काने मास्टर ने कभी सिखाया भी न था।

देशी भाषा की परीक्षा एक गढ्ढा है जिसमें प्रति वर्ष हजारों आदमी गिरते हैं। यदि पास हुआ तो विद्यार्थी आगे के जगलों में भटकता फिरे और यदि फेल हुआ तो अपने भाग्यको नाम रोकर बैठे।

(७) पाँच वर्ष देशी भाषा में माथा मारकर छठवें वर्ष अंग्रेज़ी में पहुचे। पहिली, दूसरी और तीसरी, इस प्रकार तीन वार्षिक परीक्षाएँ और मासिक परीक्षाएं मास्टर लेते। वे सब मिला कर उन चालीस परीक्षाए हुई। इसमें यदि देशी भाषा की छः परीक्षाएँ मिला दी जाँय तो पैंतालीस परीक्षाएँ होती हैं। सौभाग्य से अन्तिम परीक्षा में हम अच्छे नम्बर से पास हुए थे। हाय! मुझ को नहीं मालूम था कि ये नम्बर मुझे मेरी उम्र की एक एक घड़ी के बदले में मिलते हैं। अरे, रे, किस वास्ते मैंने इतना परिश्रम किया? अब मुझे उन दिनों पर शोक होता है। माता-पिता, इष्ट मित्र, सगी साथी, सगे सम्बन्धियों की ओर से मुझे धन्यवाद सूचक पत्र मिले। इस परीक्षाने मेरा दिमाग फेर दिया। अब मुझे इस बात का चसका लगा कि एन्ट्रेन्स की परीक्षा में भी इतने अच्छे नम्बर से पास होऊं। लालच ने मेरे मन में अपना घर बना लिया। मेरी उत्कट इच्छा थी कि मुझे छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) मिले। सेठ साहेब! पैंतालीस परीक्षाओं के बाद अब फिर मासिक परीक्षाओं का झगड़ा लगा। चार वर्षोंमें अड़तालीस परीक्षाएं दे अन्तिम एन्ट्रेन्स की परीक्षा दी। यह हुई आपके तरफ की मैट्रिक। यहा तक सब मिला कर चौरानवे

भय तो नहीं लगा था, पर परीक्षा बहुत कठिन हुई थी, इतना तो ध्यान में है। इस वर्ष वही इन्स्पेक्टर न थे, वे छुट्टी पर थे। उनके सहायक इस बार परीक्षक थे। " बड़े मियां तो बड़े मियां छोटे मियां सुभानअल्लाह।" उस भले आदमी की तबीयत जन्म भर लडकों को पढाते पढाते ऊब गई थी। यहा तक वह इस कार्य से घबडा गया था कि मानो वह किसी को उठा कर खा जायगा या स्वयं ही आत्मघात कर लेगा। वह अपने शिक्षण-काल में लडकों को पीस डालने ही में अपना बडप्पन समझता था। जितने अधिक लडके फेल हों उतना ही अधिक परीक्षक चतुर माना जाता। इस परीक्षा में तो भगवान हीने मेरी रक्षा की नहीं तो तीन सैा और साठ हाथ के कूप में तो गिर ही चुके थे। एकाध ही नम्बर मे लाज रही। यदि एक भी नम्बर की कोताई हुई होती तो सब किये कराये पर पानी फिर जाता और पास भये हुए विद्यार्थी हम हँस कर प्राण लेते सो अलग ही। माता पिता कच्चे का कच्चा ही खा जाने को तैयार होते और वर्ष भर पिष्टपेषण में बीतता सो अलग। पर ईश्वर ने गिरते गिरते लज्जा रख ली। मेरे क्लास में रूपये में बारह आने लडके फेल हुए थे। माता पिता ने प्रेम से छाती से लगाया और नैाकरी के किले बाधने लग गए।

(६) छठे वर्ष के आरम्भ में देशी पढाई से पिंड छूटा। अब अंग्रेजी का नम्बर आया। आपने सुना ही होगा कि अंग्रेजी में प्रवेशिका परीक्षा बडी विचित्र होती है, देशी भाषा के पांच दरजे पास किये हों और इन्स्पेक्टर की सर्टिफिकेट भी मिली हो तथापि अंग्रेजी की प्रवेशिका परीक्षा का भूत सिर पर सवार ही रहता है। फिर भी स्कूल मास्टर की शक्ल कैसी मेंढक की सी होती थी कि टेढ़ी मेढी गरदन करके प्रश्न करते

और लिखाते और दम पर दम प्रश्नों की भरमार कर देते। और इन प्रश्नों में कभी कभी सेर और मन के भी हिसाब आ जाते, जिन को हमारे काने मास्टर ने कभी सिखाया भी न था।

देशी भाषा की परीक्षा एक गढ्ढा है जिसमें प्रति वर्ष हजारों आदमी गिरते हैं। यदि पास हुआ तो विद्यार्थी आगे के जगलों में भटकता फिरे और यदि फेल हुआ तो अपने भाग्य के नाम रोकर बैठे।

(७) पाँच वर्ष देशी भाषा में माथा मारकर छठवें वर्ष अंग्रेजी में पहुंचे। पहिली, दूसरी और तीसरी, इस प्रकार तीन वार्षिक परीक्षाएं और मासिक परीक्षाएं मास्टर लेते। ये सब मिलाकर उनचालीस परीक्षाएं हुईं। इसमें यदि देशी भाषा की छः परीक्षाएँ मिला दी जाँय तो पैंतालीस परीक्षाएँ होती हैं। सौभाग्य से अन्तिम परीक्षा में हम अच्छे नम्बर से पास हुए थे। हाय! मुझ को नहीं मालूम था कि ये नम्बर मुझे मेरी उम्र की एक एक घड़ी के बदले में मिलते हैं। अरे, रे, किस वास्ते मैंने इतना परिश्रम किया? अब मुझे उन दिनों पर शोक होता है। माता-पिता, इष्ट मित्र, संगी साथी, सगे-सम्बन्धियों की ओर से मुझे धन्यवाद सूचक पत्र मिले। इस परीक्षाने मेरा दिमाग फेर दिया। अब मुझे इस बात का चसका लगा कि एन्ट्रेन्स की परीक्षा में भी इतने अच्छे नम्बर से पास होऊं। लालच ने मेरे मन में अपना घर बना लिया। मेरी उत्कट इच्छा थी कि मुझे छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) मिले। मेट साहेब! पैंतालीस परीक्षाओं के बाद अब फिर मासिक परीक्षाओं का झगड़ा लगा। चार वर्षोंमें अड़तालीस परीक्षाएं दे अन्तिम एन्ट्रेन्स की परीक्षा दी। यह हुई आपके तरफ की मैट्रिक। यहां तक सब मिला कर चौरानवे

परीक्षाएं हुईं । छात्रवृत्ति के लोभ से मैंने जो कड़ा असीम परिश्रम किया था उसका परिणाम यह हुआ कि परीक्षा में मैं ही प्रथम हुआ। यह मेरे सत्यानाश का द्वितीय मूल कारण हुआ। कैसे कैसे कठिनसे कठिन विषयोंका अभ्यास करना पडता और कैसे विद्यार्थीयों की शक्ति के परे उनसे काम लिया जाता ये सब दु खडे फिर कभी सुनाऊँगा, आज तो केवल परीक्षाओं की गिनती ही कीजिये। अन्त में छात्रवृत्ति प्राप्त करने की जो उत्कट इच्छा थी वह पूर्ण हुई। इसके पश्चात फर्स्ट आर्ट में पदार्पण किया। कालेज में त्रैमासिक तीन परीक्षाएं वर्ष में दीं। अन्तिम परीक्षा ग्रेजुयेट होने के लिये दी। चार वर्ष की कालेज की बारह परीक्षाएं और युनीवर्सिटी की दो कुल मिला कर चौदह परीक्षाएं हुईं। अब सब मिला कर एक माला के १०८ मन के पूरे हुए। फिर एम० ए० की तैयारी हुई। वहाँ माला का सुमेर एम० ए० भी पूरा हुआ। विशेष क्या वर्णन करूं? मैंने कैसे कैसे कष्ट उठाए क्या क्या खाया कैसी मेहनत की और किस प्रकार पन्द्रह वर्ष की घोर तपस्या के उपरान्त एम० ए० का पद प्राप्त किया आदि यदि कहने बैठू या लिखू तो एक अच्छा किस्सा तैयार हो जाय मैं वार-वार अपने मित्रों सेइस बात का अनुरोध करता हू कि वे मेरे मरने पर मेरे शव को जलावें नहीं पर एक कब्र में गाड दें और उस कब्र पर इतना अवश्य लिख दें—

"देशको आबाद करनेवाली व्यापारिक और कलाकौशल की शिक्षा को लात मार सामान्य मनुष्य को एम० ए० पास कर अधूरे रहने से मार जाना हजार वार श्रेष्ट है।"

डाक्टर माणिक चन्द की बातों से दयार्द्र हो कर बोला, अहो मिस्टर इत्तिहान चन्द! आप का

जनक है, आप धन्य हैं-जो आप कहीं भी फेल न हुए। यदि एकाध बार फेल होते तो आप की परीक्षाओं की संख्या सवा सौ तक पहुच जाती। आप की अवस्था के आधार पर मैं एक लेख मेडिकल गजट में लिख भेजूगा और पंजाब यूनीवर्सिटी के विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी असावधानी का एक नमूना नन साधारण को दिखाऊंगा। ऐसी शिक्षा से है ईश्वर अनभिज्ञ ही रह कर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना मैं श्रेयस्कर समझता हू।"

माणिक गद्गद् होकर बोला—"आप सच कहते हैं, डाक्टर साहब! पर आप पंजाब ही को क्यो बदनाम करते हैं! मैंने तो पढ़ा है कि सब प्रान्तो में यही हाल है। तिसपर आज कल की पढ़ाई इतनी महँगी हो गई है कि गरीब बिचारा तो आधी मंजिल ही में हो बीतता है। यदि यह मरता नहीं तो मेरी तरह बीमार होकर खाट सेता है। प्रत्येक दर्जे की इतनी अधिक फीस और पाठ्य पुस्तकों की भरमार के मारे तो नाकों दम हो गया है, उस में यदि किसी गरीब के तीन-चार बेटे हुए तो उनकी खोपड़ी ही गंजी हो जाती है। यह कापी लाओ, वह किताब लाओ, यह खरीदो और वह खरीदो—लायब्रेरी का चन्दा, क्रिकेट आदि खेलकूद का चन्दा, प्रिन्सिपल और प्रोफेसर के स्वागत और विदाई आदि के अवसर पर चन्दा आदि भरते भरते तो बिचारे निर्धन पिता की हड्डी सूख जाती है। प्रति वर्ष पुस्तके बदली जाती हैं। विलायत के नये नये साहब आकर शिक्षा विभाग के बड़े साहेब का बूट पालिस करते हैं, बड़े दिनो में भेंट की टोकरी पर टोकरी पहुंचाते हैं, फिर क्या, पाठ्य पुस्तकें बदल गई, इसलिए इतिहास, भूगोल और गणित के नए नए ग्रन्थ खरीदने पड़ते हैं।

एक की पढ़ी हुई पुस्तक दूसरे के 'काम की नहीं। क्या यह पीड़ा कुछ कम है ? हिन्दुस्तान में कितने के ग्रन्थ हैं—मेकमिलन, लॉगमैंन, केशल, दत्त, फ्रेजर आदि दर्जन के दर्जन प्रकाशकों में लागाबाजी चल रही है। इनके अतिरिक्त और जो नए पैदा होते जाते हैं उनका तो कहना ही क्या। उन लोगों के लिये विद्यार्थी ही सर्वस्व हैं—कामधेनु हैं। फिर भी आप देखिए, इतने परिश्रम का फल क्या ? बीस रुपये की नौकरी ! यूनीवर्सिटी में से प्रति वर्ष हजारों बकरे सूत कर तवाइ से होकर बाहर निकलते हैं, उनमें से भाग्य ही से दो चार का चित्त व्यापार में लगता है। कितने तो मारपीट कर कहीं वकील हो गए, या मास्टर हो गए, या पुलिसमैन अथवा पोस्टमैन (डाकिया) हो गए। देश में 'साहित्य-शिक्षण और साहित्याध्ययन अवश्य होगा पर पेट के गढे की पूर्ति तो उससे नहीं होती। जर्मनी, जापान, फ्रान्स, अमेरिका के विश्वविद्यालयों की शिक्षापद्धति ही अलग है। वहाँ कला-कौशल, व्यापार, धन्धा, साहित्य, वेदान्त आदि की पढ़ाई ही निराली होती है। शिक्षा का क्या अर्थ है, डाक्टर साहब, यह सब तो हमारे प्रोफेसर ने न कभी हम लोगों को बतलाया न वे स्वयं ही इसको जानते थे। आजकल तो शिक्षा का अर्थ "पढो-तोताराम-राम" की तरह तोता रटान ही है। इससे देश का कल्याण कैसे हो सकता है ? आजकल तो यूनीवर्सिटी में से "टके सेर भाजी और टके सेर खाजा" की तरह सभी घोड़े बारह टके के निकलते हैं फिर देश की दुर्दशा का हाल क्या पूछना है। सचमुच इस देश के विद्यार्थियों की यह दुर्दशा है। पन्द्रह पन्द्रह वर्ष तक जी तोड कर परिश्रम करें मां बाप के हजारों पर पानी फेरें, और लम्बी चौडी उपा

नवीन विलायती।भूसा यदि यहां के कालेजो में भरा जायगा तो उससे क्या यहाँ का अन्न पकेगा ? मास्टर इम्तिहान चन्द, यदि मैं एन्ट्रेन्स-वेन्ट्रेस, मेडिकल कालेज के फेर में पड़ता तो सौ वर्ष पर भी मेरा कहीं ठिकाना न लगता। डाक्टरों की कमाई भी कुछ मुझ से छिपी नहीं है। मैंने देशी और विलायती दोनो औषधियों का मनन किया है, जिसके कारण आज मैं इतना सुखी हूं।"

"डाक्टर साहब, मैं क्या कहूं ? जिसको आपने पीडा बताया वह कुछ भी पीडा नहीं है। यूनीवर्सिटी भर की सब पाठ्य पुस्तकें पढ़, किसी भो परीक्षा में फेल हुए बिना एक सौ और नव परीक्षायें देना, एक कोमल मस्तिष्क के युवक के लिये, क्या कोई साधारण बात है ? पढने और पढाने की दोनों पद्धतियां त्रुटि युक्त हैं, पर शिक्षा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इतना है कि memory, Power of Imagination, and Power of judging (स्मरण शक्ति, तर्क बुद्धि, और विवेक) का खूब विकाश करना चाहिए। आजकल की शिक्षा पद्धति का यह प्रभाव है कि अन्तिम दो (तर्क बुद्धि और विवेक) के नाम तो शून्य और स्मरण शक्ति की तो तो था ! परीक्षा हुई कि यद्यद् पठित तद्तद् मुखे समर्पितम्। रट्टू पंडित जी का तरह पढ लिया, समझे ? इसी प्रकार की पढाई में आजकल की शिक्षा सार्थक समझी जाती है। जो भूगोल और खगोल मुझे पढाया गया है, उससे व्यवहार में मेरा कौन उपयोग होता है ? आज मुझे उसका एक अक्षर भी याद नहीं है। छ. छ घन्टे बालक विद्यार्थियों को स्कूल में बन्द रखने से वह भी स्कूल की दरिद्र इमारत में-उनका शरीर रक्त हीन, निर्जीव, अस्थि पिंजर हो जाता है। प्राचीनकाल में पचास साठ वर्ष के पूर्व किसी

को भी चश्मे की आवश्यकता न पड़ती थी । परन्तु आजकल तो बारह बारह वर्ष के पिल्लों को आप तेली के बैल की तरह चश्में चढ़ायें हुए देखेंगे । यह वर्तमान् शिक्षा-पद्धति का प्रभाव है या और कुछ ? परीक्षा की चिन्ता उनको ऐसी लगती है कि कितने तो परीक्षा-भवन में बेहोश हो जाते हैं, कितने परीक्षा देने के दूसरे ही दिन चार आदमी के कंधे पर यात्रा करने चले जाते हैं, और जो जीते रहते हैं, उनका उत्साह और उमंग तो पहिले ही से फिरट हो जाता है । जब कि शिक्षित यूरोपियन भर पेट पेन्सन खाते हैं, तीस पैंतीस वर्ष तक भारत सरकार को खूब चूसते हैं, उस समय तक हमारे देशी भाई या तो नौकरी ही करते करते 'राम राम सत्य है' की अवस्था को प्राप्त होते हैं, नहीं तो एकाध वर्ष पेन्सन खाइ न खाई कि साफ । बाबा आदम के पास पहुंचे । यह यहाँ की शिक्षा की खूबी है ! जो कुछ होता है सब पेट के लिये । जब दिल में ही कुछ नहीं रहता तो देश की चिन्ता कहाँ ? जर्मनी, जापान और अमेरिका अनेक सुविख्यात पुरुषों को उत्पन्न करते हैं, पर डाक्टर साहब, बहुत खोजने पर भी आप को बम्बई, कलकत्ता, प्रयाग, बनारस आदि नगरों की हमारी यूनीवर्सिटियों में से भाग्य ही से दस पाँच ऐसे प्रसिद्ध ग्रेजुएट मिलेंगे, जिनके लिये लोगों को गौरव होगा और जिन्होंने देश का कुछ भी कल्याण किया है । वर्तमान शिक्षा प्रणाली का निबाहना ही टेढ़ी खीर है । जब तक इस शिक्षा प्रणाली का संशोधन नहीं होगा और जब तक प्रजा को देश के विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं होगा तब तक देश में उन्नति होना भी असम्भव है और विद्यार्थियों की अवस्था भी सुधरना बड़ी मुश्किल बात है ।"

कि बैठे रहिए, बैठे रहिए, ज़रा सी लड़की के हाथ में लड़के क
गृहस्थी का भार सौंप कर क्या लोगों में हसी करानी है? कौन
जाने लडकी छटक जाए, या लडका ही वहक जाए तो जाति
विरादरी में खूब मुह काला हो। उधर रुक्मिणा ने जिस दि
से उसके पति की नौकरी लगी थी, यह सोच लिया था कि
अव सास नन्द के त्रास से जी छूटेगा। इस विचारी का विवा
हो हुआ था पर अभी तक वह अपने पति से बातचीत भी नह
करने पाई थी। माणिक भी अपने अभ्यास में लीन था, इस
उसके मगज़ में सासारिक सुख की पर्याप्त कल्पना न थी।

नित्य के जले भुने कटाक्षों की जलन से रुक्मिणी की शा
रीरिक स्थिति विगडने लगी। सास का मुह दिन भर कुप्पा स
फूला ही रहता और ननँद की नाक चढ़ी ही रहती थी।
इसको छीकते दण्ड देती और चलते फिरते गालियाँ देती थीं
बात बात में वे इसके पीछे पड़ी रहतीं। मनुष्य कितना बर
दाश्त करेगा? अन्त में उसका स्वास्थ्य विगडने लगा। जह
खाना पीना अच्छा नही लगता, सुख से नीद नहीं आती वह
शरीर की कौन पूछे! एकाध वार उसने अपने नैहर भी कह
लाया कि वहाँ वाले उसको थोडे ही दिन के लिये बुला ले
पर वहाँ के लोग ऐसे रूढ थे कि एक कान से सुना और दूस
से साफ़। पर वे लोग इतना तो अवश्य समझते थे कि सास
ननँद लडकी पर दु.ख के बादल घहराती होंगी। 'ऊँचे च
कर देखा तो घर घर यही लेखा' इससे वे चुप हो बैठे। मन
विचारते कि जब उसका पति अलग अपना घर करेगा तो स
विपत्तियाँ दूर हो जायँगी।

गोविन्द ने अपने भरसक पूरी कोशिश की, पर प्रेमदेवी
एक से दो न हुई। आखिरकार उसने लाचार होकर अपने पुत्र

को आठ दिन की छुट्टी लेकर घर आने को लिखा। ऐसा लिखने में उसका भीतरी मतलब यह था कि कदाचित पुत्र को देख कर उसकी माँ अपने विचार बदले और लडके का घर बने। प्रेमदेवी यह तो चाहती न थी कि लडके का घर फूटे। उसकी यह इच्छा थी कि बहू को अपने कब्जे में रक्खूँ और दासी की तरह उससे काम लू, जिससे घर में उसका कुछ चले ही नहीं वह यह नहीं देख सकती थी कि लडका वहू को माने, क्योंकि उसने अपने समय में भी बहूपन में वैसे ही सङ्कट भोगे थे। सच पूछो तो यह रीति परम्परा से इस वश में चली आती थी। हिन्दू ससार में यह कोई नई बात नहीं है, इसमें कोई कलंक भी नहीं लगता। गोविन्द ने यह सब देख कर ही माणिक चन्द को उपयुक्त पत्र लिखा था और केवल आठ ही दिनो की छुट्टी लेने की आज्ञा दी थी।

पत्र पढते ही माणिक विचार-सागर में डूब गया। अभी मैंने दो तीन छुट्टियाँ ली हैं, उस पर यह आठ दिनो की एक साथ छुट्टी सेठ जी कैसे देंगे ? पत्र पढते ही यह प्रश्न उसके मन में उठा। दिन भर लिखने का इतना काम रहता है कि जर की मदद से किसी न किसी तरह वह खतम होता है। दूसरा भी कोई गुमाश्ता नहीं है। पत्रज्ञी में काम करने वाला भी कोई नज़र नहीं आता। ऐसे ही अनेक विचारों के बाद उसने अपनी एक मात्र मददगार, सलाहकार और आश्रयदात्री जर से अपने घर का दु ख कहा। मौका देख उसने अपने घर का पत्र भी उसके आगे रख दिया और आठ दिन की छुट्टी के वास्ते विनती की।

जरतानू ने पूछा "ओ हो, हो, माणिक चन्द, तो आपका विवाह हो गया है ?" जिसके उत्तर में माणिक चन्द ने नीची

नजीर ने लिखते लिखते 'हाँ जी' का संकेत करते हुए माथा हिलाया। जुर ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा, "आप लोग सचमुच बड़े सुखी हैं, माता पिता ने चार चावल छिड़क जो गाँठ बाँध दी, उसको निबाहने के लिये आप लोग पवित्र हृदय से अपने सुख दुःख के साथी के समान वफादार रहते हैं। यह हिन्दुओं के ही भाग्य में लिखा है। आप लोगों की स्त्रियाँ भी उसी प्रकार प्रेम की मूर्ति ही होती हैं। जिसका हाथ पकड़ा वही उनका वर बलिक वही परवरदिगार है। कैसा धैर्य और कैसा विश्वास होता है।

माणिक चन्द ने कहा, "जी हाँ" हम लोगों में पुरुष की अपेक्षा हमारी अशिक्षिता स्त्रियाँ ही अधिक पतिव्रत, सुशीला और पति परायणा होती हैं। गरीब से गरीब स्थिति को श्रेष्ठ करके निबाहना, पति के साथ प्रेम कायम रखना, इन बातों में समस्त संसार की स्त्रियों पर प्रभुता प्राप्त करने वाली अबलाएँ ही कही जाती हैं। पानी भरना, बर्तन माँजना, रसोई बनाना, दलना, बीनना चुनना, झाड़ना-बोहारना, गाय भैंस की रक्षा करना, बाल बच्चों को पालना खेती बारी के काम में अपने पति की सहायता करना, पति के सो कर उठने के पहिले उठना, पति के भोजन करने के उपरान्त भोजन करना, और अन्त में मृत पति के पीछे जीते हुए सती होना आदि ऐसे अनेक अलौकिक गुण सम्पन्न महिलाओं को उत्पन्न करने वाली केवल हिन्दू जाति ही है।"

डर ने पूछा "तो क्या पुरुष भी उतने ही वफादार होते हैं, माणिक चन्द ?"

माणिक चन्द ने नम्रता से उत्तर दिया, "हाँ, श्रीमती यदि आप राजा रामचन्द्र का इतिहास पढ़ेंगी तो आपको आदर्श

की तरह स्पष्ट हो जायगा कि पुरुषों को किस प्रकार चलना चाहिये और उस महात्मा ने इन नियमों को किस उत्तमता से पाला है।"

जर ने पूछा "फिर क्या हमारे में भी ऐसे पुरुष होंगे जो अपनी स्त्रियों को रामचन्द्र की तरह जी से चाहें ?"

माणिक ने उत्तर दिया, "आप में भी ऐसे पुरुष हैं, आप लोगों में रामावतार हुआ है और वह अब भी जीवित है। राजा रामचन्द्र ने तो सीता जैसी एक ज्ञानी, विलक्षण, बुद्धिमती और सुन्दर स्त्री के साथ एकपत्नी व्रत पाला था, परन्तु हिन्द के दादा दादा भाई नवरोजी ने, जिनके भाग में एक भोली ... स्त्री पड़ी थी उसी के साथ संसार निभाया और जिस प्रकार रामचन्द्र सीता की खोज में समुद्र पार गये थे उसी तरह ये अपनी स्त्री को अपने साथ लेकर समुद्र पार गए थे। इस विषय में आप स्वय मुझसे अधिक जानने वाली हैं, आप ने तो इस अलौकिक पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन तक किए हैं, मैं तो केवल कानों ही से सुनी बातें कह रहा हूं।"

जर ने एक ठण्डी साँस लेकर कहा, "मिस्टर माणिक चन्द आप बड़े स्वतन्त्र विचार के मनुष्य हैं, आपने जो कुछ कहा वह सब अक्षरश सत्य है। मैं आपको छुट्टी दिलाने के लिये कोशिश करूँगी। मैं अब आप से पूछती हूं कि आप ने मुझसे एक दिन पूछा था कि मैं और माणिकशा ! अरे तोबा—मेरा शरीर जले मैं आप के लिये .माणिक चन्द ! क्या आप हमारे मजहब से भी परिचित हैं ?" आप उस विषय का हमको कुछ ज्ञान दे सकते हैं ?

माणिक चन्द ने हाथ में कलम उठाते हुए कहा, "जी हाँ, यथाशक्ति, संस्कृत तथा फारसी के अक्षर-ज्ञान जिसको प्रोफे-

सर बुम्सलुल मौलवी महमद हुसैन आज़ाद ने अभी प्रकाशित किया है—के अनुसार मैं तो यही सिद्ध कर सकता हूं कि हम लोग एक ही माता पिता की सन्तान हैं। पर समय के प्रभाव से हम लोग छूट से गये थे अब फिर दूसरे रूप में आ मिले हैं अतएव हम लोग एक दूसरे को पहिचान नहीं सकते।"

काम काज से निपट कर माणिक बरामदे में गया। दस पाँच मिनिट काम काज की बातचीत कर मालिक को सलाम कर घर चला गया। उसके चले जाने पर जर ने अपने प्रिय पिता से माणिक के विषय की बात छेडी।

"बाबा जी, किसी ने सोलह आना यह बात ठीक कही है कि 'आदमी बसे और सोना कसे' पहिचाना जाता है। इस माणिक चन्द को जैसा हम लोगों ने सोचा था, वह दूसरे हिन्दुओं की तरह वैसा हाथ-मुंह फैलाने वाला नहीं है और यह हमारे पवित्र जरथोस्ती धर्म को भी बहुत मानता है। तत्सम्बन्धी इसने बहुत कुछ अभ्यास भी किया है। बात ही बात में इसने तो यहाँ तक कहा कि हिन्दू और पारसी एक ही माता पिता की सन्तान हैं। बाबा जी हम लोग यदि एक दिन यह सब बातें इसके मुख से सुनें तो कैसा होगा। समय भी उचित रीति से पसार होगा और बहुत सी हमें धर्म सम्बन्धी ज्ञान की बातें भी मालूम होगी।"

पदल जी ने इसको स्वीकार करते हुए कहा "जैसी तेरी मरजी।"

दूसरे दिन पदलजी के पास जापान भेजे हुए माल के बिक्री का तार आया, उसमें इनको चौदह हजार का मुनाफा होने की बात लिखी थी। पदलजी एक अनुभवी और महान व्यापारी था, यह नफा उसके आगे कोई चीज़ न था। माल को भेजते

समय माणिक चन्द ने इसमें पाँच छ हजार का नफा कूता था और सेठ जी ने भी अपनी अंगुली पर हिसाब लगा कर आठ दस हज़ार का नफा आँका था। आज एलदजी कुछ विशेष आनन्द में थे। इस अवसर का लाभ उठा कर समयानुकूल चतुर जर ने माणिक के हित की बातें छेडी। आज एदलजी की बैठक बरामदे में हुई। आज लम्बी चौडी मेज पर सोडा, बरफ, एक बोतल शराब, और बिस्कुट के साथ में थोडा बहुत फल फूल भी रखा गया था। चार बजे जब दूकान के काम काज से छुट्टी पा एदलजी ने आनन्द करने को सब को बुलाया, तब माणिक भी वहाँ बुलाया गया था। आज पहिला ही दिन था कि वह अपने मालिक और उनकोसगे सम्बन्धी के साथ इस तरह उनके तफरीह में सम्मिलित हुआ था। वह स्वय राजपूत की औलाद था, इससे उसको शराब पीने में कोई बाधा न थी, परन्तु वह सेठ के साथ भोजन करने में हिचकता था, तो भी उसने थोडा फलफूल खाया ही। तदुपरान्त और सब लोग खा-पी कर अपने इच्छानुसार घूमने-फिरने निकल गए, केवल एलदजी, जर और वृद्ध मास्टर जो एलदजी का विश्वास पात्र दूर का सम्बन्धी था—रह गये। जर ने माणिक चन्द से बडे मधुर स्वर में कहा, "मिस्टर माणिक चन्द कृपया बतलाइये कि हमारे और आप के धर्म में कौन कौन सी समानता है इसको जानने की बाबा जी की बडी इच्छा है।" इतना कह कर उसने एक ऐसा इशारा किया जिससे वह समझ गया कि आज सेठ को प्रसन्न करने से आठ दिन की छुट्टी आसानी से मिल जायगी। सामने की कुर्सी पर अदब से बैठ कर कुछ आवेश में आए हुए हमारे एम ए महाशय ने नीचे लिखे अनु- सार चर्चा छेडी—

नवाँ प्रकरण

सेठ जी की फिदागिरी।

माणिक चन्द्र की बातो से प्रसन्न होकर एदलजी ने ऊँची आवाज से कहा "हैं, है।" "मैंने इस वंश के एक लडके को, जब वह बहुत छोटा था तब देखा था, नाम भी उसका अच्छा ही है। इस समय मुझे याद नहीं आता। करीब दो वर्ष हुए मैंने किसी अखबार में पढा था कि वह लडका लेफ्टिनेन्ट जनरल होकर कही नौकरी पर गया है। यदि मैं भूलता नहीं तो, वह हिन्दुस्तान से कही बाहर नौकरी पर गया है।"

जर की स्थिति इस समय बडी विचित्र हो गई थी। वह दम पर दम खीचती और बलात्कार से अपने मनोभावों को दबाती थी। कहीं उसके मन का भाव कोई समझ न जाय, इससे वह डरती हुई इधर-उधर ताक रही थी।

माणिक की बातचीत फिर शुरु हुई "दूसरे सब वर्णो की उदारता पारसियो की उदारता के आगे रद्द है।" न जाति का ख्याल न पाति का ख्याल, न द्वेष न पक्षपात। जो कुछ कार्य उन्होने किए हैं सब स्वार्थ रहित किए हैं। पाठशालाएं स्थापित की तो सब के लाभ के लिये, अस्पताल खोले तो प्रत्येक जाति की आरोग्यता के विचार से। दादा भाई नवरोजी और सर फिरोजशाह मेहता जैसे पुरुषों को उत्पन्न करने का मान और गौरव आप ही की जाति को .

जर ने बात काट कर कहा " पर मिस्टर माणिक चन्द ! यह सब तो आपने केवल हमारे धर्म की प्रशंसा ही की,

परन्तु हमारे आप के धर्म की समानता, और उस अक्षर ज्ञान की तो चर्चा ही आपने उड़ा दी, क्यों ?"

माणिक चन्द ने, विषयान्तर होने के कारण कुछ शर्मा कर, उस के प्रश्न का नम्रता पूर्वक उत्तर दिया। "वह भी कहता हूं, श्रीमती।" "हमारे हिन्दू धर्म में मूर्ति पूजा का प्रचार होने के पूर्व ही हमारे पूर्वज वैदिक धर्म के तत्वों के अनुसार सूर्य, अग्नि, वरुण, इन्द्र, आदि नैसर्गिक विभूतियों की पूजा और प्रार्थना करते थे। हमारे धर्मशास्त्रों में इसके अनेक प्रमाण हैं। आपके धर्म में भी आज तक ये ही तत्व माने जाते हैं और उसमें मूर्ति पूजा का प्रवेश नहीं होने पाया है। जिस समय पारसियों को आश्रय दिया गया, उस समय उनके आश्रयदाता राजा ने उनसे उनके धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये थे, जिनके उत्तर में ईरान से आए हुए पारसियों ने कहा था.—

'हे दयालु राजन्, हम अपने धर्म का वर्णन करते हैं, सुनिए। हमारे धर्म से आप को जरा भी भय नहीं खाना चाहिए। हम लोगों के यहां आने से आप को किसी प्रकार की भी अड़चन नहीं पड़ेगी। आर्यावर्त में हम सबके मित्र बन कर रहेंगे। आपको अन्तःकरण से यह मान लेना चाहिए कि हम लोग केवल यज़्दान परमेश्वर की आराधना करते हैं। अपने धर्म की रक्षा करने ही के लिये हम लोग मुसलमानों के पंजे से भाग कर इतनी दूर चले आए हैं। केवल धर्म रक्षा ही के लिये हम लोगों ने अपनी सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति का त्याग किया है। इतनी लम्बी यात्रा में हमको अनेक संकटों का सामना करना पड़ा था, पर यह सब धर्म ही के लिये। गृह, भूमि, और धन आदि का जो हम लोगों ने एकाएक त्याग किया है वह भी धर्म ही

के नाम पर। हम लोग सुप्रसिद्ध जमशेद बादशाह के एक समय सर्व सम्पन्न, पर अब निर्धन, वंशज हैं। सूर्य और चन्द्र, इन दोनों आकाश की विभूतियों को हम पूज्य भाव से मानते हैं। इनके अतिरिक्त हम तोन नैसर्गिक वस्तुओं को भी पवित्र मानते हैं, वे ये हैं—गौ, जल और अग्नि। अग्नि और जल की हम लोग एक निष्ठा से पूजा करते हैं। गौ, सूर्य और चन्द्र की भी आराधना में हम लीन रहते हैं। परमात्मा की जो जो प्रकाश रूप और अलौकिक विभूतियां हैं," वे सब हमारी पूज्या हैं।" पारसियों के कहे हुए उनके धर्म के तत्व हमारे वैदिक धर्म से कितनी समानता रखते हैं। अब मैं आप को अपने पुरातन आर्य धर्म के तत्वों को यथासाध्य विवेचन से समझाने का थोडा बहुत यत्न करूगा। हमारे आर्य धर्म में भो अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र आदि विभूतियों को अति पवित्र माना है। जलके लिये तो वेद में एक स्थान पर ऐसा उल्लेख है कि "आपो नारा इति प्रोक्ताः' आप. यह जल शब्द का बहुवचन है, जल का समूह वही साक्षात् नारायण परमेश्वर हैं। इसी प्रकार अग्नि, सूर्य और चन्द्र की भी प्रशंसा की गई है, उन सबों का कहना और सुनना इतना मनोरञ्जक नहीं होगा। यज्ञकी अग्नि को हम लोग उतनी ही पवित्र मानते हैं, जितना आप लोग आतशबहेराम को। जिस प्रकार आप लोगोंमें अग्नि, जल और सूर्य के सम्मुख खड़े होकर प्रार्थना करने की प्रथा है, वैसीही हमलोगों में भी चाल है। हमारा धर्म भी गौ को पवित्र मानता है। जिस प्रकार आप लोगो में आपके धर्म की सूचक, ' कस्ती ' धारण करने में आती है, उसी प्रकार हम लोग 'यज्ञोपवीत' धारण करते हैं। जिस प्रकार हम लोगों के यज्ञ में सोमरसका उपयोग होता है, आप लोगों में भी वैसी ही यज्ञ की क्रिया

होती है। अब हम लोग धर्म के विषय की यहां समाप्ति करके भाषाज्ञान की चर्चा करेंगे। 'स' का 'ह' होना एक साधारण नियम है। जिससे सोम का होम हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। अग्नि के लिये जंद भाषा में 'आतस' शब्द का प्रयोग किया जाता है और संस्कृत में उस को हुताशन कहते हैं। अश्व और अस्प, मर्त्य और मर्द। संस्कृत में जिस वाहन को रथ कहते हैं जंद भाषा में उसको रस कहते हैं। 'स' का 'थ' होना भी, भाषा का अपभ्रंश होना, एक पुरातन नियम है। हस्त शब्द का अपभ्रंश हाथ हुआ। संस्कृत में देव शब्द देवता वाचक है और फारसी वाले इस शब्द को दैत्य के अर्थ में प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल में फारसी भाषा में भी देव शब्द का पवित्रात्मा अथवा सुर ऐसा ही अर्थ होता था। पैगम्बर जरथुस्त ने धर्मान्तर किया। उसके बाद यह शब्द दानवों का सूचक हुआ। इस प्रकार हम जितना ही अधिक भाषा और शब्दों पर विचार करेंगे, उतना ही हम लोगों को पता लगेगा कि पारसी और आर्यों के मूल धर्म-संस्थापक और उनकी भाषा एक ही होनी चाहिए। ये सब एक ही खान के प्रकाशमान हीरे होने चाहिए।"

एदलजी माणिक के इतने अधिक अनुभव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज पीछे माणिक का पूरा ख्याल रखना चाहिए। अपने जाति की स्तुति किसको नहीं अच्छी लगती? एदलजी की अपेक्षा पुराने विचार वाला वह बूढ़ा मास्टर तो इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने झट उठ कर माणिकचन्द को गले लगा लिया और पारसियों प्रति सदा वफ़ादार रहने की बार बार शिक्षा दी। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि माणिक ने किसी प्रकार की प्रार्थ-

ही में वैराम जी का आदमी आया। वड़ी खुशी से वह वहां जाने को दौडा। उस भले आदमी ने दरजी को भी बुलवा कर वैठा रखा था। वैरामजी ने दरजी के कहने मुताबिक कपड़ा पसन्द कर के वँधवाया और दरजी को ताक़ीद करते हुए कहा, "देखो मियां साहब, कल संध्या तक अगर कपडा सी कर नही लाओगे तो कपड़े का दाम तुम्हारे नाम लिखेंगे।" ज़र और माणिक इस वृद्ध सज्जन की उर्दू भाषा सुन कर हँस पड़े। भले वृद्ध ने सिलाई के भी पैसे दूकान ही से दिये।

तीन दिन बीत गए। मध्यान्ह के भोजन के बाद ज़र एक छोटी से पोटली ले इधर उधर देखती सब की निगाह बचाती हुई माणिक के पास आई। उसके पास नया क्लार्क बैठा था, अतएव वह चुपचाप उस पोटली को और एक पत्र को रख कर चलती बनी। पत्र में यह लिखा था:—

"मिस्टर माणिकचन्द, आप जिस योग्यता से हमारे यहां रहते हैं और मुझे आप की जो स्वाभाविक प्रतिभा नज़र आती है, उसका बदला देने को सामर्थ्य मुझमें नही है। बावाजी ने आपको जो कुछ दिया है उससे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है मैं अपनी तरफ से यह यह किञ्चिद् भेट आपकी अर्द्धांगिनी के लिये देती हू। इसको अस्वीकार करने का अधिकार भी सिवाय उसके और किसी को नहीं है, अतएव आप इसको अवश्य ले जाइए। यह भेट पिता जी से छिपा कर देने का पाप जो मैं करती हू, उसके लिये ईश्वर मुझे माफ़ करेंगे। यथासाध्य शीघ्र आकर अपना काम सभाल लीजिएगा, क्योंकि इस नवीन व्यक्ति से मैं बातचीत नहीं कर सकूंगी। ईश्वर आपकी यात्रा सुफल करे

शुद्ध मन से आपकी हितेच्छु

'ज़र

पत्र पढ कर माणिक ने उसके बहुत छोटे छोटे टुकडे कर डाले। पोटली को एकान्त में ले जाकर खोला, उसमें एक जरी की बारीक किनारे की रेशमी साड़ी थी, चोली के लिये दो गज मखमल थी, तीन रेशमी रूमाल, एक अतर की शीशी और एक सुन्दर डिब्बी में छोटीसी सोने की अगूठी थी, इतनी चीज़ें उसमें थीं। पोटली बाँधते समय माणिक की आखो में पानी भर आया। उसने जर और उसके पिता को मन ही मन आशीर्वाद दिये। सध्या समय वैराम जी ने उसको बुला कर एक सूट उसको पहिनाया और दूसरा सूट एक पोटली में बाँध माणिक के हवाले किया। अपने आफिस में आ माणिक ने जर वाली पोटली निकाल इसके साथ बाधा। फिर वह सेठ को अन्तिम सलाम करने गया। उसके पीछे पीछे वैराम जी और जर हँसते हँसते जा खडे हुए। माणिक ने जाकर शुद्ध अन्त करण से सेठ के पैरो पर अपना सिर रखा। सेठ ने उसको प्रेम से उठा, उसके माथे पर हाथ रख खुशी से उसको छुट्टी दी। फिर वैराम जी और जर को प्रणाम कर वह अपने घर गया। दूसरे दिन माणिक अपनी मातृ भूमि के लिये विदा हुआ।

दशवां प्रकरण

पति–पत्नि का मिलाप

आज विद्वान पुत्र आएगा और लोग उससे मिलने आवेंगे आदि इन्हीं सब सोच विचार में गोविन्द हुक्का लेकर खाट पर

बैठा हुआ पुत्र की राह देख रहा था। उसके आगे पीतल की डिब्बी में अफीम रखी है। तमाखू के पिंडे, अंगीठी और कोयले के ढेर ही बैठक को शोभायमान किये थे। जनान खाने में प्रेमदेवी भी मन ही मन मग्न होती थी कि आज पढ़ा लिखा कमासुत पुत्र रुपये लेकर आवेगा। बहिन दरवाजे पर ही खड़ी राह देख रही थी। हवा से जरा भी दरवाजे खडके कि 'भाई आए, कौआ बोला कि, समाचार आया, माणिक भैया आते हैं,' इस प्रकार प्रतिक्षण वह पुकार उठती थी। रुक्मिणी को सास ननंद के पास बैठने का सौभाग्य ही कहां! वह विचारी तो एक कोने में बैठी थी और उस के मन में यही विचार उठ रहे थे कि कब पति घर आए और कब एकान्त में मिलें कि मैं सास ननंद के सलूक का हवाला दूं और हमारी गृहस्थी अलग हो जाय। यहां उसको सब की दासी बन कर रहना पड़ता था, अलग घर करने पर तो वह और उसका पति दोनों ही सुख से रहेंगे।

इसी प्रकार गोविन्द के घर में चारो कोने में चार प्रकार के विचार चल रहे थे। थोड़ी देर में माणिकचन्द आ पहुंचे आते ही बाप ने खड़े हो कर उसको छाती से लगाया। माणिक चन्द ने अपने पिता के पैर छुए और उनके पैरों की धूल आंख और माथे पर चढ़ाई। अपने अंग्रेजी पढ़े हुए पुत्र के इस बर्ताव से वह हर्ष से गद्गद् हो गया। फिर वह अपनी माता के पैरों पड़ा और उसने एक सुपुत्र का कर्त्तव्य बजाया। माता ने उस की बलैया ली और उस पर हाथ फेरा। वह क्यों न ऐसा करे आखिर को माता ही ठहरी। उसने अपने पुत्र का हाथ पकड़ अपनी आंखों में लगाया। बहिन भी भाई के गले में हाथ डाल कर उससे खूब जूझी। इस समय माणिक ठीक वैसा ही मालूम

होता था जैसे हेडम्बा की बाँह में अभिमन्यु। रुक्मिणी बिचारी एक कोठरी में चुपचाप बैठी थी। वह सन्ध्या तक बाहर न निकल सकी। इसी का नाम गुजरात में लाज है और उत्तरीय भारत में इसी को हया कहते हैं।

माणिक के आने पर घर की तथा पड़ोस की सब स्त्रियाँ मानी मनाती देवी के मन्दिर में बधाई लेकर गयीं। माणिक बैठक में अपने पिता के पास जा बैठा। अड़ोसी-पड़ोसी सगे सम्बन्धी जो कोई मिलने को आए, सभी ने आते ही यह प्रश्न किया, "क्यो भाई बीमारी से उठे हो क्या ?" हाँ, हाँ, हाँ, कहते कहते माणिक का तो सिर दुख चला। पिता भी माणिक की ऐसी दशा देख मन ही मन जल भुन कर खाक हो रहा था। चेहरे पर तेज का नाम नहीं है, गाल बैठ गए हैं, आँखें गड्ढे में रोने ला रही हैं। शरीर में माँस का नाम नहीं है। चमड़ी में करचुली पड़ गई है। पिता ने बताशे का शरबत बना माणिक को दिया। इससे माणिक की जो कुछ भूख थी वह भी कूच कर गई। भोजन का समय हुआ, बारह बजे की गजल बजी, मिलने आए हुए सब अपने अपने घर गए। एकान्त देख माणिक ने साथ लाई हुई चालीस रुपये की रकम पिता के हाथ में रखी पिता ने माणिक से कहा—"अपनी माता को सौंप दे।" माणिक ने घर में जा माता को वह रकम दे दी। माता हर्षित हुई। अहा, नारद नारायण, रूप देव, महालक्ष्मी सी महारानी की तसवीर सहित, ठननन, ठननन, मंगल शब्द उच्चार करने वाले, किसको अच्छे नहीं लगेंगे ? 'कमासुत पूत माता का प्यारा' भला इस लोकोक्ति को कौन झूठ कह सकता है ? 'पूत कमासुत हुआ' इस बात से माता का अभिमान पुन उद्दीप्त हुआ। आज इतना लाया तो कल हजारों लावेगा ऐसी

आशा बँधी। खैर, रात पडी। सास ने इतने वर्षा बाद की प्रथमवार बहू के सिर पर हाथ फेर कर "सो रहो जी और ऐसे मधुर शब्दों का उच्चारण किया। बहू ने तो मान लिया कि पति के आगमन से ही ऐसा हुआ है। आज पढ़ा

चलिए अब माणिकचन्द के शयनागार के दरवाजे पर बात तो जरा बे अदबी की है, खैर, विवेक को धीजे खड़े प्रथम तो दम्पति की बैठक देखने लायक थी। माणि माणिक प्रिया को हर्षित करने की नीयत से जर की दी हुई पं... अपने सिरहाने रख कर बैठा था। परन्तु स्त्री खाट के पैताने, पति की तरफ पीठ कर के, पाच हाथ का घूंघट तान-मानो किसी को मुकाम देती हो-केहुनी घूंघट पर रख, और हाथ का पहुचा बगल में दबा इस प्रकार बैठी थी-मानो पति प... में जान पहिचान ही नहीं है। उस समय दंपति की ऐसी स्थिति थी।

माणिक ने थोडी देर उसके बोलने की प्रतीक्षा कर, सु... ही अधीरता से सवाल किया—"क्यों? शरीर कुछ नरम... क्या?"

बहू रानी लज्जा से अधिक सकुचित होकर ठीक ख... की पाटी पर जा बैठीं। घूंघट को और भी बढ़ा कर क... वस्त्र रूपी बादलों में चन्द्र मुख को छिपा दिया।

माणिक ने बडी मधुरता से कुछ आगे बढ कर सवा... किया—"क्यों कोई जवाब नहीं मिला?"

बहू जी रो पडीं और घूंघट के अन्दर आसू और का... को उसी से पोछ डाला। कहाँ, एम० ए० साहेब की पुस्त... की ओफिलिया, जुलियट, क्लीयोपेट्रा, कहाँ लैला शी... अर्जुमन आरा, तथा जलीखा, कहाँ दमयंती, सुलोच...

ता था और राधा; और कहाँ उनके साथ में जंगली, अशि-
क्ष कोठर्म पाली मूढ और सास-ननंद के त्रास से आग
निकल रही हुई विचारी राजपूतिन बाला ! माणिक कुछ
भारन में कर प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरने गया कि
माणिदूर" के शब्दो ने उसको पीछे हटा तकिए के सहारे
गाती मजाल।

बैठक में अक ने पत्नी को इस अज्ञानता पर ध्यान न देते हुए
स्वारी बार पूछा—"मेरा कौन सा अपराध हुआ है ?"

सिसकती हुई और अपनी साड़ी से आंसू पोछती हुई, भोली, पर चिढ़ी हुई रुक्मिणी बोली—"जाव जाव। क्या आप ने मुह को भी इतना पूछा कि दिन भर में मुई ने पानी भी पीया है या नहीं ?"

निर्दोष माणिक ने कहा " दिन भर माता पिता पास में थे। भला बताओ कि उनका लिहाज छोड कर किस तरह पूछ सकता था ? दो तीन बार मेरे ध्यान में यह बात आई थी पर माता पिता की मर्यादा तोड़कर मुझ से कुछ पूछा न जा सका।"

सामने मुह तो हुआ, पर घूंघट ज्यों का त्यों ही रख रुक्मिणी बोली, "आप की माता तो साक्षात् राक्षसी का ही अवतार हैं। खून की प्यासी होकर वह मेरे पीछे पडी हैं। दो वर्ष में एक दिन भी चैन से बैठने का मौका नहीं दिया है।" इन अनुचित शब्दो के सुनने से माणिक के मन में कुछ खेद तो हुआ, पर वह बोले क्यों, 'एक कहे तो दो सुनना पडे।

माणिक ने पूछा—"माता तुमको इतना क्या कष्ट देती है ?"

रुक्मणी इस प्रश्न से अधिक चिढ कर बोली—"हाय, हाय,

यदि कलेजा चीर कर कर दिखा सकती तो मैं ... की
देती कि पूरा है या चलनी हो गया है। उठते-बैठते ... और
मैं टेढ़ा सोधा बोलती और चुटकियाँ भरती थीं। ... बातें
भी मुझे लौंडी दासी बेमरजाद-छिनाल आदि बनाए ... आज पढ़ा
रही हैं। और हमारे भाई बाप को तो ऐसा ऐसा क... दरवाजे पर
मेरे कलेजे में छाले पड़ जाते हैं।" ... आज लड़के

माणिक यद्यपि यह जानता था कि सास-पतोहू माणिक
रूपी चन्द्रमा पड़े हैं पर घर घर यही लेखा होने से उसे इसमें
कुछ नवीनता नजर न आई। उसने बात उड़ाने को गरज़ से कहा-
"आपकी कुछ भूल देखती होगी। वे अपनी बड़ी हैं, उनकी
गालियां कुछ द्वेष से भरी थोड़ी ही होती हैं।" परन्तु रुक्मिणी
का तो वर्ष का मलाल उमड़ आया था वह किसी प्रकार रुक
सकता था? उसने तो दफ़्तर के दफ्तर उलटने शुरू किए।

पत्नी ने इतिहास का श्री गणेशायनमः करते हुए कहा—
आपको नौकरी मिली इसमें मैंने कौनसा पाप किया? उस
दिन से तो वे हाथ धो कर मेरे पीछे पड़ी हैं। शुभ मुहूर्त में आप
के पिता ने मुझ को लाहौर भेजने की चर्चा की। अब तो और
भी मेरे भीग लगे। लड़के को कौड़ी का तीन कर डालेगी
लड़के को खा जायगी, उसको चूस डालेगी, अब यों कहने
लगी, मानो मैं कोई जीती हुई डाकिनी हूँ और आप मेरे प्रिय
नहीं हैं। एक दिन तो यहाँ तक कह डाला कि तूने तो अपने
ससुर को कुछ खिला कर अपने वश में कर लिया है, वह तो
ही सी कहता है।"

माणिक ने हसते हुए बात को खतम करने के ख्याल से
कहा—"अरे भोली! तुझे छोटी समझ कर न भेजने को कहा
होगा, इसमें क्या हो गया?

पर यह उसको लाकर मेरी गोद में फेंक जाती, मैं उसको उठा कर बिछौने के नीचे रख देती। अब तो वह गली गली घूम कर अड़ोसी-पड़ोसी सब को सफूका पूर थाती कि "आज कल की छटी हुई बहुएं ऐसी होती हैं कि अपने पति के पत्रों को बड़ी सावधानी से रखती हैं।"

माणिकने कुछ आगे बढ़ कर उसके कंधे पर हाथ रखा—बड़े भाग्य कि रुक्मिणीने उसको हटा न दिया, पर ज्यों का त्यों रहने दिया,—और कहा, खैर यह तो बताओ, कि तुम्हारे भाई और माता-पिता सब कोई राजी खुशी तो हैं ? वे लोग कभी यहाँ आते जाते हैं कि नहीं ?

रुक्मिणी बोली—"उन बिचारों को क्या खबर कि आपके ऐसे सरदार के घरमें भी लड़की को कुछ दुःख होगा। खबर होती तो वे कभी के आकर मुझे ले गए होते। और नहीं तो, छाछ-रोटी तो वे आनन्दसे खाते हैं। आपके पिता दो बार नीलाम मेंसे साड़ियाँ लाये दोनों बार मैंने अपने कानों सुना कि इसका बहू को घाघरा और कुर्ती बनाना पर आपकी माता ने उसका कुछ भी ख्याल न किया। आपकी बहिनने उसको दबा लिया और ऊपर से कहती क्या है कि इसका दुलहा तो पारसी के घर नौकरी करता है, यह तो अब रेशमी साड़ी पहिनेगी, इसको यह घाघरा क्यों अच्छा लगेगा।"

"ईश्वर उसका भला करे। मैं तुझे रेशमी "

रुक्मिणी माणिक के कहने का भावार्थ न समझ और बात काट कर छनक कर बोली, "क्यों खूब, अपनी बहिन को कौन बुरी कहेगा ?" "दिन भर काम करते करते प्राण निकल जाते हैं। सवेरे उठते ही घन्टी पीसना, फिर बासन माँजना, घर साफ करना, गाय दूहती, गोबर पाथना, पानी भर"

कसनी शुरू कीं कि 'जब भूख नहीं थी तो फिर बीमारी हालत में भकोसने की कौन जरूरत थी ? इच्छा बिना कहीं खाया जाता है ? ' दूसरे दिन मैं अधिक बीमार हुई, पर इसकी परवाह किसने ? उनके लेखे तो मैंने ढोंग रचे थे। बुखार की तेजी से जब मेरी आँखें लाल हो गईं तो कहती क्या हैं कि 'जाने की छटपटी में रात भर नींद नहीं आई है, इससे आखें लाल होगी हैं।' न कभी हाल हवाल पूछना और न कभी शरीर में हाथ लगा कर देखना कि हाल क्या है ? मैं किसके आगे जा कर अपने दुखड़े रोऊँ ? एक कोने में बैठ कर ईश्वर से सदा मौत देने के लिये प्रार्थना करती रहती हूँ।" ये बातें रुक्मिणी के सच्चे अन्त करण से निकली थीं। जिनके पूरे होते ही उसके आंखो से अश्रुधारा बह चली।

माणिक भी अनी घाला आदमी था। उसको अपनी माता के तीखे स्वभाव का पूरा पता था। परन्तु लोक लाज के कारण वह कुछ बोलता न था। यदि वह अपनी स्त्री का पक्ष लेकर माता से कुछ भी कहे तो गाँव भरमें इसकी चोंचों हो जाय। कोई उपाय न देख वह चुप ही रह गया। रुक्मिणी के दिल का सब मलाल निकल जाने पर उसने उसको समझाने का निश्चय किया था।

रुक्मिणी ने फिर अपना रोना-शुरू किया "माताजी वृद्ध हैं और उन्होने जो कुछ कहा सो कहा पर आपकी बहिन की जीभ तो चार हाथ की है, उनका तो कहना ही क्या है। नित्य नई नई वे सिर पैर की हमारी चुगली माँ के आगे करती हैं और इस प्रकार एक नया तकरार खड़ा होता है। आपका पत्र आवा, तो आपके पिता जी घरमें उसको पढ सुनाते। मैं घूंघट निकाल घर में एक कोने में बैठ रहती। पत्र पढ जाने

कर वह उसको लाकर मेरी गोद में फेंक जाती, मैं उसको उठा कर बिछौने के नीचे रख देती। अब तो वह गली गली घूम कर अड़ोसी-पड़ोसी सब को सफूका पूर आती कि "आज कल की छटी हुई बहुएँ ऐसी होती हैं कि अपने पति के पत्रों को बड़ी सावधानी से रखती हैं।"

माणिकने कुछ आगे बढ कर उसके कंधे पर हाथ रखा—बड़े भाग्य कि रुक्मिणीने उसको हटा न दिया, पर ज्यों का त्यों रहने दिया,—और कहा, खैर यह तो बताओ, कि तुम्हारे भाई और माता-पिता सब कोई राजी खुशी तो हैं ? वे लोग कभी यहाँ आते जाते हैं कि नही ?

रुक्मिणी बोली—"उन बिचारों को क्या खबर कि आपके ऐसे सरदार के घरमें भी लड़की को कुछ दुःख होगा। खबर होती तो वे कभी के आकर मुझे ले गए होते। और नही तो, दाल-रोटी तो वे आनन्दसे खाते हैं। आपके पिता दो बार नीलाम मेंसे साड़ियाँ लाये दोनों बार मैंने अपने कानों सुना कि इसका बहू को घाघरा और कुर्ती बनाना पर आपकी माता ने उसका कुछ भी ख्याल न किया। आपकी बहिनने उसको दबा लिया और ऊपर से कहती क्या है कि इसका दुलहा तो पारसी के घर नौकरी करता है, वह तो अब रेशमी साड़ी पहिनेगी, इसको यह घाघरा क्यों अच्छा लगेगा।"

"ईश्वर उसका भला करे। मैं तुझे रेशमी " ,,

, रुक्मिणी माणिक के कहने का भावार्थ न समझ और बात काट कर छनक कर बोली, "क्यों खूब, अपनी बहिन को कौन बुरी कहेगा ?" "दिन भर काम करते करते प्राण निकल जाते हैं। सवेरे उठते ही चक्की पीसना, फिर बासन माँजना, घर साफ करना, गाय दूहती, गोबर पाथना, पानी भरना,

रसोई बनाना और इतना करने पर भी ऊपर से सबोंकी बातें सुनना और गालियां खानी। आपने तो शास्त्रोंके सब पन्ने उलट डाले है, भला, बताइये ऐसा कहाँ, लिखा है ? दो महीने से रोज़ संध्या को बुखार आता है अन्न भाता नही, छातीमें सूल उठती है, दवा दारू तो दूर किनारे यह भी कोई नहीं पूछता कि मरेगी या जीएगी ? फलाने की कुतिया बीमार पडी थी तो चार आदमियोंने इकट्ठा होकर उसकी दवा की थी, मैं तो आदमी हू पर मेरी उतनी भी कोई पूछ नही रखता, तो फिर, बताइए क्यों न शरीर "कुढे ?"

सुशिक्षित माणिक के हृदय पर इन शब्दों ने बाण का काम किया। उसने अपनी स्त्री को छाती से लगा लिया और रुमाल से उसके आँसू पोछते हुए कहने लगा, "ये लोग तुम्हारी दवा क्या करेंगे ? मैं तुम्हारी दवा करूंगा। जिस प्रकार इतने दिन बिताये, उसी तरह चुपचाप एक दो महीने और भी बिता लो, तुम्हारे लिये मैं पूरा बन्दोबस्त करके तुम को वहा बुला लूँगा और बडे डाक्टर से तुम्हारी दवा कराऊंगा।"

रुक्मिणी कुछ कपटी या झूठी तो थी नहीं। उसके मन का भार हल्का हुआ कि वह शान्त हो गई। उसने जिन जिन दु खो का वर्णन दिया था वे अक्षरश सत्य थे। माणिक ने ज़र की दी हुई सब वस्तुएँ उसको दीं। उनको पाकर वह बहुत आनन्दित होकर कहने लगी, ईश्वर उसका सदा भला करे। वह हम गरीबों पर बिना जान पहचान के भी बहुत माया रखती है कैसी भली है !" तदुपरान्त नई घर गृहस्थी के विषय में अनेक हवाई किले बांधे गए और फिर पति-पत्नी दोनो निद्रादेवी के वशीभूत हो गए।

रात को बात चीत में दो बज गए थे। माणिक का क्षीण

शरीर जागरण करने के लिये समर्थ न था। सवेरे वह साढ़े आठ बजे सोकर उठा। माणिक की माता ने जान बूझ कर अपनी लड़की को दरवाजे के बाहर दम्पती की वार्तालाप सुनने को बैठा रखा था। चिलबिल्ली लड़की ने कुछ सुना था और कुछ नहीं, पर, सवेरे उसने अपनी मा के सम्मुख उन सब बातों में ऐसा निमक मिर्च लगा कर कहा कि प्रेम देवी उसको सुनते ही साक्षात् चंडिका का अवतार हो गई। "बस, इस आग लगौती का घर में कुछ काम नहीं है।" सैकड़ों बार उसने इस वाक्य को दोहराया होगा। माणिक भी स्नान आदि कर्म से निवृत्त होकर एक पुरानी कुर्सी पर पटल जी को अपने राज़ी खुशी के पहुंच की चिट्ठी लिखने बैठा। लड़के को दिखाने के लिये प्रेम देवी आज रोटी बनाने बैठी थी गोविन्द चूल्हे में से अपनी चिलम में आग लेते हुए प्रेम देवी से बोला, "फिर भी कहता हूं, अब भी अगर लड़के के साथ बहू को विदा करना हो "

रोटी को ज़ोर से पटक कर प्रेम देवी चिल्लाने लगी, "इस कागज़ी राड के नाम पर सलाई लगा दो, इस हरामजादी ने रात भर अपने खसम के कान भरे हैं। यह लड़का भी मेरा नहीं है, अगर मेरा लड़का होता तो रात ही को उसके झोटे पकड़ घर के बाहर करता। यह तो वह गई है, पति के आने से फूल गई है और इसको अब लड़के के बीस रुपये पर ही मोट मँगरी सूझी है। देखो मैंने तो लड़के के लिये हजारों पर पानी फेरा है तब यह इस लायक हुआ है।" इतना कह कर प्रेम देवी ने ज़ोर से छाती कूटना शुरू किया।

गोविन्द चुपचाप चोर की तरह वहां से खिसक गया। रुक्मिणी भी एकान्त में बैठी हुई आंसू ढालने लगी।

देवी चौके में फटाफट रोटियां पटकने लगी और बहिन जी कुप्पे सा मुंह फुला सब तमाशा देखने लगी। माणिक ने रात में कही हुई सब बातें प्रत्यक्ष देख ली। इसी विषय पर मन में गुनावन करता हुआ वह चिट्ठी छोड़ने घर से बाहर निकला। उसके जाने पर क्रोधान्ध प्रेमदेवी बोली कि, "अबकी बार लडके को जाने दे, तब मैं इस कुतिया से पूछूंगी।"

ग्यारहवां प्रकरण।

पटवारी का अखाडा।

माणिक को सिर्फ चार दिन और चार रात घर पर रहना था, उस में से पहिला दिन और पहिली रात किस तरह बीती सो तो पाठकों ने देख ही लिया। दूसरा दिन भी इसी प्रकार क्लेश और झंझट में ही बीता। इससे माणिक का मन बहुत उदास हो गया था। तीसरे दिन नया सूट पहिन कर माणिक हवा खाने को नदी के किनारे गया। लौटते समय तुलाराम पटवारी की बैठक रास्ते में पडी। माणिक उस को बहुत धिक्कारता था, फिर भी नदी में रह कर मगर से बैर करना उसने अच्छा न समझा।

माणिक ने विचार किया कि "चलूं, सोच विचार कर तो इसके यहां आया नहीं हूं, रास्ते में घर पड गया है, चलूं देख तो लूं कि कितने वर्णसंकर एकत्र हुए हैं और क्या क्या गुल खिला रहे हैं?" इस विचार से दरवाजा खोल उसने अन्दर प्रवेश किया। वहां वह क्या देखता है? एक तरफ पांच दस

गाज चरस की दम भर रहे हैं। वह उनका रँग देखने जरा ठहर गया। एक ने चिलम हाथ में लेकर कहा, ' अब तो लगे दम और टले गम " और दम मारा। लपट छः अँगुल ऊँची उठी। दूसरे ने चिलम लिया और कहा,

" अब तो रंग है ... का, जिसने एक रंग पैदा किया,
और लानत है दो रंगी को, जिसने दोस्ती में दगा किया।"

इसने भी चिलम खूब जगाई, धूएँ के बादल बाँध दिए। खाँसी और कफ देख कर माणिक की तबीयत घबरा गई। अब उसने दूसरी दिशा में दृष्टि डाली, इधर भाँग से भरा हुआ एक तपेला नज़र आया, उस पर एक साफी ढँकी थी और उसके चारों तरफ त्रिपुण्ड धारी लोग बैठे थे। और " जयशंकर दुलहा की, जय विजया माता की " पुकार मच रही थी। एक आदमी पटवारी जी को भाँग पिला कर लोटा ले आया और सर्टिफिकेट के तौर पर उसने कहा " गुरू जी कहते थे, अच्छी गहरी छनी है।" इस पर सब भंगेड़ी प्रसन्न हो गए। कोई लोटे से तो कोई चुल्लू से भाँग पीने लग गए। "आन तो विजया माता, गुण की दाता, ज्यो रखे पुत्र को मात, चढते ज्ञान उतरते ध्यान, अकल विकल करे तो गुरू गोरखनाथ की आन।" इस प्रकार एक ने बोम मारी। इतने में दूसरा गर्ज उठा—

" बम गिरनारी, शिखर पर बैठ कर फिकर कर हमारी"

यहाँ से माणिक आगे बढा तो उसने लोगों को गाँजे की चिलम फूँकते हुए देखा। यह सब खेल पटवारी के घर के बिशाल चौक में हो रहा था। अफीमची बुड्ढे भी 'असलिया' अमलिया की गुनगुनाहट कर रहे थे। माणिक इस विलक्षण दृश्य से दंग हो गया। इतने में सामने से उसको सितार की आवाज सुन पडी। देखा तो भक्तराज, विप्रकुलोत्तम

राम जी एक चौकी पर हाथ में सितार लिए तार के तरंग में एकतार भये हुए नज़र आए। जितनी वार चिलम चढ़े, भाँग घोटी जाए, और अफीम घुले, उतनी वार वे सब पहिले मुनिराज को भोग लगाते, तब आगे की कार्रवाई होती। 'अग्रे अग्रे विप्राणां' की कहावत भला किस से छिपी होगी सवेरे उठ कर नशा पानी करना तो पटवारी जी के लिये एक उत्तम कर्त्तव्य था। फिर दिन भर तो गाव के लोग आपही ला ला के भोग धरते थे, उस में किसी का अहसान थोड़े था। यह सब देख माणिकचन्द के तो छक्के छूट गए कि यह कोई विचित्र मूर्त्ति है। 'बाबा बैठा जपे, और जो आवे सो खपे' ऐसा मन में विचार कर माणिक आगे बढा और 'नमस्कार महाराज' कह कर सामने खड़ा हो गया। नशे में चूर महाराज ने अपनी लाल आँखें खोली और जानबूझ कर धूर्तता से पूछा, "कौन है भाई ?"

माणिक ने उत्तर दिया, "जी, मैं गोविन्द सिंह का पुत्र माणिक।"

"अरे गोविन्द का तू चिरंजीवी और माणिक तेरा नाम ?" (कविता आरम्भ हुई)

बैठते बैठते माणिक ने कहा—"जी, वही आप का दासानुदास।"

"आइये माणिकचन्द कहिये शरीर तो सुखी ?"

सोरठा का एक चरण अपने नियमानुसार कह कर पटवारी ने सितार नीचे रखा। इतने में एक आदमी ने आकर उनके हाथ में गाजे की चिलम दे प्रणाम किया। पटवारी ने "ॐ नमः शिवाये" कह कर गाँजे का दम मारा, और फिर धुएँ के बादलों की सृष्टि की। चिलम लाने वाला उस चिलम

को अपनी मण्डली में वापस ले गया। पटवारी ने फिर उसी चरण को दोहराया, 'आइए माणिकचन्द कहिये शरीर तो सुखी ?"

माणिक ने रङ्ग देख दङ्ग हो कर पूछा, " जी, सब आपकी कृपा है, आप तो चैन से हैं ?"

"दीन विप्र के हेतु, क्या लाये क्षत्रिय भेंट ?" दोहे का एक चरण बना पटवारी जी ने प्रश्न किया'—

माणिक ने पहिले ही से जड़ काटते हुए कहा, "मैं गरीब भेंट सौगाद कहाँ से लाऊँ ? मुझे तो अपना ही पेट भारी पड़ रहा है।"

"एम० ए० हो कर मित्र वर, खोटे बहाने मत करना।
लाहौर तुम लूट लाए हो, विप्र की भेंट अवश्य करना।"

एकाएकी पटवारी जी के मुख से इन दो पद्यों के निकल पड़ने से उनके आनन्द का पारावार न रहा। इतने में एक वृद्ध भङ्ग की एक प्याली लाया। "जय नीलकण्ठ" कह कर पटवारी जी उसको चढ़ा गये। फिर उन्होंने हुक्का पीना शुरू किया।

पटवारी जी ने कहा, " आग लगे ऐसे एम० ए० होने में, जिसमें धन का व्यर्थ व्यय होता है, स्वास्थ्य बिगड़ता है, और शरीर क्षीण हो जाता है। फल क्या हुआ कि महीने दिन बीस रुपये मिले।"

"भया व्यर्थ यौवन, गया व्यर्थ जीवन।
भयी व्यर्थ मेहनत, गया व्यर्थ में धन—हा हा हा।"

"क्यों सच है न माणिकचन्द !" इसी दरमियान में चरस और गाजे की चिलम आई।

लाने वाले ने कहा, "गुरू जी, गङ्गाजमनी रङ्गत है"

"गङ्गाजमनी हाथ में तो,सरस्वती तुम्हारे साथ में, बम्भ मेरे।" पढो रङ्गत का एक पद ललकार कर पटवारी ने दम खींचा। आसपास के चिलम की ताक में खड़े हुए लोगों ने खूब धोम मारी, "वाह कविराज जी, जीओ प्यारे भोलानाथ आनन्द रक्खे।" उसके बाद भक्तजनो में पस्तादी गई।

एक एक पद पर पटवारी जी धूएँ को बाहर फेंकने और खों खों, ठों ठों करते हुए बोले, "बेटा माणिक, धन यौवन खोया, यह कविता कैसी हुई?"

माणिक ने खूब हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, "एक एक अक्षर उसका सच है महाराज, अतिशयोक्ति का तो नाम ही नहीं। देखिये न यह मण्डली अपना जीवन कैसा सार्थक करती है? मैंने एम० ए० ही पास कर के कौन सा शेर मारा? जैसे का तैसा ही रहता तो भी अच्छा होता।"

"करो चिन्ता को, दूर चढा लो भांग का लोटा,
हाथ की फेंक दो कलम, व घूमो बाध कर सोंटा।"

काव्य छन्द के दो पद पटवारी ने मिला कर कहे और चटपट एक लोटे को जिसमें थोडी भाँग थी माणिक के आगे धरी।

माणिक चन्दने हाथ जोड कर कहा "मुझे तो आप क्षमा करें। मैंने तो आज तक कभी भी भाँग नहीं पी है। भविष्य में भी पीनेका विचार नहीं है।"

भूदेवने उपदेश दिया—कि "ज़रा भी संशय मत करो, यह शम्भू की बूटी है, न पीनेपर वे कोप करेंगे।"

माणिकने उत्तर दिया—"आप सत्य कहते हैं, पर मैं तो सदाशिव महादेव को भी भाँग पीने से रोकने वालोमें एक हूँ। वे भी भाँग पीना छोड दें तो अत्युत्तम।

पंडित जीने इस पर लाल लाल आँखें कर अंग्रेज़ी शिक्षा की आलोचना करते हुए कहा —

'वह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,
हममें, हमारे देश के प्रति, द्वेषन्नति की मूल है।
हममें विदेशी भाव भरके वह भुलाती है हमें,
सब स्वास्थ्य का संहार करके वह रुलाती है हमें ॥ १ ॥
होती नहीं उससे हमें निज धर्म में अनुरक्ति है,
होने न देती पूर्वजों पर वह हमारी भक्ति है।
उसमें विदेशी मान का ही मोह-पूर्ण महत्त्व है,
फल अन्त में उसका वही दासत्व है दासत्व है ॥ २ ॥'

[मै० गुप्त]

इसका यह कारण नहीं है, माणिकने वह बात उड़ा दी और कहा, " नहीं महाराज, बल्कि मेरी छाती में दर्द है, डाक्टरने मुझे इस कारण मना किया है।"

लोटे की भंग आपही उड़ाकर, तुलारामने लावनी के ढंग के दो पद ललकारे—

"बढ़ गई नास्तिकताई जगत में भारी,
तृतीय नैन थी प्रलय करो त्रिपुरारी।"

एक चरण हिन्दी और एक गुजराती का सुन माणिकचन्दने हँसते हँसते कहा "वाह वाह भूदेव, आप तो हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें पारंगत हैं।

"अरे बेटा, गुरु महाराज के सामने तो सातों कलमें हाथ बाँध कर खड़ी रहती हैं। इतनेमें एक अफीमचीने आगे आकर एक अफीम की गोली का बावाजी को भोग लगाया। माणिक के सामने ही क्षणभर में वह गोली तो गुरुजीके पेट में जा समाई। एक बार जोरसे खखार कर, फिर होश...

ने अब माणिक की परीक्षा लेने की तैयारी की। आधा दोहा कहते हुए प्रश्न कियाः—

पाठ पिङ्गल का पढकर, है किया कभी काव्य।"

"जी हाँ, थोड़ी बहुत आप बीती बातें लिखी तो हैं, पर उनको आपके आगे कहना लखपतिको चार पैसे की भेंट करना है।" माणिक की इस बात से पटवारी का दिमाग आसमान मे चढ गया।

"माणिक तव कवितान सो, हमहु करहिं रसपान।"

"जैसी आप की इच्छा।" माणिक ने जब अपनी छुट्टी होते नहीं देखा तब उसने कहा कि पंजाब में उर्दू भाषा अधिक प्रचलित होने के कारण मेरी कविता भी उसी जबान मे है:—

कोई नहीं है हद सितम बेहिजाब की;
तालीम यूनीवर्सिटी खाना खराब की।
माना उसूले इल्म पे है जिन्दगी का हस्र;
किस काम जब हो जीस्त मुशाबीह हबाब की।
मिहरे पिदर से बेहतर उस्ताद का है ज़ोर,
लेकिन न इतना जिस से हो सूरत अजाब की।
तड़के पढो, सवेरे पढो, रात को पढो,
हत्ता के कभी आए न नौबत खाब की।
गुर वाले मिडिल से बचे सौ मुश्किलों से हम,
पूछो न हम से सूरतें इस इज्ज़ते खाब की।
एन्ट्रेंस फर्स्ट आर्टस में पीसी हैं चक्कियां,
ना गुफ्ता बह है हालत पेचों ताब की।
जुगराफिया रेयाजियों तारीखों फलसुफा,
माजून फरसुफा है हमारे सबाब की।
सौ मुद्दत से था पेश ए आबा सिपाहगरी,
एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी खराब की।

माणिक चन्द की कविता से भूदेव खूब प्रसन्न हुए और उन को धन्यवाद दिया—

"आयु कीर्ति व यश बल, बाह माणिक कविराय"

पर दूसरा चरण न सूझने से दोहा अधूरा ही रह गया।

तत्पश्चात् माणिक ने हाथ जोड़ कर घर जाने की आज्ञा माँगी और घर आया। घर में सास बहू का पुराण चल ही रहा था। यह देख वह मन ही मन खाक हो गया और अपने कमरे में चुपचाप चला गया। ब्यालू का समय हुआ। माणिक के पेट में भूक तो थी ही नहीं। यदि नहीं खाता तो माँ कहती है कि बहू को दो कडो बात कही सो पति को अनाज ही नहीं अच्छा लगा। अतः माणिक ने नाम के लिये दो कवर खा लिये और घर में जा सो रहा। दूसरे दिन वह सब से भेंट मुलाकात कर के विदा हुआ। घर का अन्धेर खाता देख उस का दिल जल भुन कर खाक हो गया था। देश की कुप्रथाओं पर उस को खूब क्रोध आया। जिस से उसको आरोग्यता को भी धक्का लगा। ट्रेन ही में ज्वर रूपी भूत ने उसका पल्ला पकड़ा। बस वह कम्मल ओढ कर डिब्बे ही में पडा हुआ थर थर काँपने लगा। उसके लाहौर पहुचने के समय पारा एक सौ चार डिगरी चढ गया था। लाचार होकर उसने एक चिट्ठी अपने मालिक के यहाँ और एक अपने मित्र के पास भेजी।

जरवानू की आठ दिन से यह हालत थी की मानो उसकी कोई अमूल्य वस्तु खो गई हो। समाचार पत्रों में भी अपोलो सम्बन्धी कोई समाचार नहीं आते थे। यदि तत्सम्बन्धी कोई सम्बाद रहता तो भी केवल इतना ही कि, "सहायनार्थ अन्य स्टीमरें गई हुई हैं।" उसको समयानुकूल सहायता मिली या नहीं, उसमें से कोई बचा या नहीं; या सब किसी को

दिये वह जहाज समुद्र के पेंदे में जा लगा, आदि कोई भी समाचार नहीं मिलता। न जाने माणिक को देख, जर कैसे धैर्य धारण करती थी उसके चले जाने पर इस नवयौवना की गति और दशा में एक विचित्र प्रकार का फेरफार हो गया है। यदि उसके पास खुरशेद जी का खेलवाडी बालक न होता तो उसकी आरोग्यता में भी खलल पहुंचता। थोड़ी देर बाप बेटी में बातें हुई, पर चिट्ठी के समाचार जानने पर जर का कमल सा चेहरा एकाएक मुर्झा गया। पिता के मन में खेद न हो, इस कारण अपने मन के विकार उसने मन ही में दबा रखे। एदल जी ने माणिक को एक चिट्ठी लिखी कि वह एक महीने आराम करे और उचित औषधि का सेवन करे। डाक्टर वाछा को भी लिख दिया कि वे माणिक की भली प्रकार ध्यान पूर्वक दवा कर। माणिक को खर्च के लिये एक गिन्नी भी भेज दिया। माणिक चन्द्र ने अपने ऐसे दाता और दयालु सेठ के लिये क्या धारण की होगी, यह लिखने की अपेक्षा ध्यान में उत्तम रीति से आ सकती है।

माणिक के अपनी जन्म भूमि अमोटा से विदा होने पर, मां और बेटी दोनो हाथ धोकर गरीब रुक्मिणी के पीछे पड गईं। त्राहि त्राहि पुकारती बिचारी रुक्मिणी अन्त में क्षय रोग का शिकार बनी। महीनो से खुराक घट गई थी, दिनों दिन शरीर क्षीण होता जाता और अशक्ति बढती जाती थी। तथापि काम काज का भार तो घटता ही न था। प्रत्युत मां बेटी की ओर से अधिकाधिक काम लेने की पैरवी चालू थी। एक दो दिन गोविन्द को ऐसा जान पडा कि रुक्मिणी शरीर से कुछ घट रही है। उसने डरते हुए प्रेमदेवी से पूछा, "क्या कारण है ?" चिढी हुई सिंहनी की तरह प्रेम

वो बोली, कुछ पत्थर थोड़े ढोने पड़े हैं।" पाँच हाथ के घूंघट से सिर से पैर तक ढके रहने के कारण गोविन्द वहू का मुंह तो देख नहीं सके, तो दवा दारू किस बात की करें? इसका फल यह हुआ कि बिचारी रुक्मिणी आखिरकार खाट से लग गई। कुछ दिनों तक उसको काढ़ा और चूर्ण दिया गया। पर उससे क्या होता है? निरुपाय गोविन्द ने समधी के यहाँ पत्र लिखा। वे लोग आकर अपनी भली चंगी भेजी हुई लड़की को डोली में डाल कर घर ले गये।

माणिक की बीमारी से जर के हृदय में एक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। वह आलबम के चित्र देखने देखते उसको खुलाही छोड़, कार्यवशात् भीतर के कमरे में गई उसी समय बम्मन वहाँ आ पहुँचा, और आलबम को खुला देख उसको टेबुल पर से खींच लिया। देखते देखते वह जर के पास जा पहुचा और उससे पूछने लगा, "फूफी जी, यह किस की फोटो है।"

"अरे पागल, उसको इधर ला।" जर ने झट उसको ले कर बन्द कर दिया।

"नहीं हमको बताओ यह कौन है?"

"और किस की, एक पारसी की है।"

"हूं! यह तो बड़ा तस्वीर है, देखें, मुझे फिर दिखाइए।" कहते कहते बम्मन ने जर की साड़ी पकड़ ली।

जर आलबम खोल, उसको अपनी गोद में बैठा, और उस की बटैया लेकर बोली। "ले, देख।"

"यह इस पर नाम किस का लिखा है?"

जर लाज सेमुस्कुराती हुई बोली, "अरे बेटा नाम और किस का होगा, तस्वीर वाले का ही तो।"

बम्मन दुलार में दोनों पैर हिलाता हुआ बोला। "फूफी ज आपके पैरों पड़ता हू, मुझे बताइए इसका क्या नाम है ?",
जर ने लाज और सकोच से लाल हुये मुख से अपने प्रेम पात्र का नाम लिया। "इनका नाम · नाम तो माणिक जी है, बस।"

बालक ने उसी भोलेपन से पूछा। "और इनके पिता का नाम ?"

"अर्देशर" इतना कह कर जर ने आलबम तकिये के नीचे रख दिया और बम्मन को खेलाती खेलाती बाहर ले गई। बालक बम्मन भी फोटोवाली बात भूल गया।

बारहवाँ प्रकरण।

परीक्षा का फल।

अकबर के समय की एक यह बात प्रसिद्ध है कि एक समय अकबर बादशाह ने अपने चार वजीरों की बुद्धि परखने के लिये चार बकरे तौला कर एक एक को दे दिया। उनका हुक्म यह था कि "एक महीने के बाद सब को अपना अपना बकरा दरबार में लाना होगा, पर बकरा तौल में घटने या बढने न पावे, इसका पूरा ध्यान रखना होगा, नहीं तो सख्त सज़ा मिलेगी।

एक वज़ीर अपने बकरे को सुबह और शाम तौलता था वजन बढता तो खुराक कम कर देता और घटता तो खुराक बढा देता था। दूसरा वज़ीर बकरे की खुराक रोज़ बदलता

था। आज हरी घास है तो कल सूखी। एक दिन यदि बाजरा देता तो दूसरे दिन उपवास कराता। तीसरा वजीर बकरे को खूब खिलाता पिलाता और उसको खूब दौड़ा दौड़ा कर उससे भर पूर काम लेता था। बीरबल अपने बकरे को दिनभर खूब खिलाता और शाम को उसे एक शेर के पिंजरे के आगे बाँध देता था। दिनभर में बकरा जितना खा पी कर बढता था उतना ही रातमें वह शेरके भय से घट जाता था, इससे उसका वजन इतने का उतना ही बना रहता। अन्त में बीरबल ही का बकरा समतौल रहा।

यही स्थिति आजकल अपने देशके विद्यार्थियोंकी है। इधर खा पीकर विद्यार्थी तैयार हुए कि उधर परीक्षा रूपी व्याघ्रने उनका खून ऊपर का ऊपर ही चूस लिया। आजकल हिन्दुओंके सिर पर शिक्षाका भूत सवार है। सब माँ बाप की यही इच्छा रहती है कि जैसे बने वैसे लडका जल्दी जल्दी परीक्षाएँ पास करता चला जाय। सगाई और विवाह भी परीक्षा के सर्टिफिकेट पर ही निर्भर रहने हैं। प्राचीनकाल में जन्म-पत्रिकाएँ और जन्मकुण्डलियाँ मिलाई जाती थीं। उनके स्थान पर अब सर्टिफिकेट देखे जाते हैं। जहाँ प्राचीनकाल में कुल और वंश पूछे जाते थे, वहाँ अब पास और फेल का प्रश्न होता है। नौकरी, चाकरी काम-धंधा, गति-अवगति सब विश्वविद्यालय की सनद परही अवलम्बित हैं। पैसे वाले के पुत्र रोना रोया करते हैं कि गरीब के लडके हमसे अधिक मेहनत करके बाज़ी मार ले जाते हैं। गरीबके लडके यह गडबडी मचाते हैं कि पैसे बिना हम उच्च शिक्षा कहाँ से प्राप्त करें ? उधर मुसलमान चिल्लाते हैं कि हम में हिन्दुओं से कम शिक्षा है, इधर हिन्दू लोग यह हाय मार रहे हैं कि समुद्र-यात्रा का

शास्त्र निषेध करता है, अतएव सिविल सर्विस परीक्षा भा-
में हो और उसकी शर्तें कुछ ढीली कर दी जायँ।
लोगों का यह रोना है कि लम्बी धोती वाले नौकरी का
भाव बिगाड देते हैं। बस, दसो दिशाओं में परीक्षा पास
करना और प्रारब्ध बेच पराई नौकरी करना, यही हाय हाय
सब को लगी है। बंगाली अलग हो, दला के बावले बने हैं।
उनका यह प्रण है कि यदि जहन्नुम में भी परीक्षा हो तो उस
को भी अवश्य पास करना, तब अन्न जल करना। हिन्दुओं
की तो बात दूर रही, पर अंग्रेजो की तो रूह रूह बंगालियों
के नाम से ही कांपती है। शिल्पविद्या का नाश हुआ कारी-
गरी कारागार में और हुनर हिमालय को गये। व्य-
वसाय कुछ हुआ, रोजगार गाड हीं है। बस मोक्ष की बारी को
नौकरी ही में है और वह भी सरकारी नौकरी में,
सरकार की जान गोरी, नीति गोरी, रीति गोरी, प्रीति गोरी
सब गोरा ही गोरा अर्थात् इनकी नौकरी भी गोरी। इस
गोरी पर यदि काले मोहित हो जाए तो इसमें आश्चर्य या
नवीनता क्या? यदि सरकारी गोरी नौकरी काले का तिर-
स्कार करके गोरे को ही वरमाला पहिनाये तो उसमें कसूर
किसका?

अब सरकार निकाल देती है, धक्का मारती है, अर्द्ध चन्द्र
कार देती है, इस आशय के प्रस्ताव पास करती है कि इस
नौकरी पर काले का अधिकार नहीं है तथापि लोग मुँह के
बल गिरते हैं और अपने मुँह की खाते हैं। इतने पर भी लोग
उधर से अपना मुँह नहीं मोड़ते। इन सब झगड़ों का नतीजा
क्या? इस तरह एस० ए०, और बी० ए० एफ० ए० और एम०
ए०, जी० ए० और सी० ए० आदि को एकत्र कर के हिन्दु-

रखतो क्या उनका अचार डालेंगे ? माता पिता के तुल्य सरकार के घर की प्रतिच्छाया, आभा भी गोरी होती है, यहाँ काले व्यर्थ में सफेदी पर स्याही करके क्या कर सकते हैं ? यदि ये अपना मुँह खोलते हैं तो पीछे से घोल पडती है, अमलदार लोग और अधिकारी वर्ग तोबडे सा अपना मुँह बनाते हैं ।

परीक्षक महात्माओं की तो गति ही निराली है । ये लोग कठिन से कठिन प्रश्न खोज कर आजकल के विद्यार्थियो के समक्ष रखने ही में अपनी विद्वत्ता और महत्ता समझते हैं । परीक्षको का मुख्य कर्त्तव्य तो विद्यार्थियो का पूरा ज्ञान जानना है । किन्तु आजकल इसके स्थान पर उनको क्या नहीं आता यही जानने में उन्होने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है । वे चुन चुन कर ऐसे प्रश्न करते हैं जो विद्यार्थियो को बिल्कुल व्यर्थ जँचते हैं । उनमें विद्यार्थी ऐसी भूल में पड जाते हैं कि उनका जीवन मिट्टी में मिल जाता है ।

जहाँ तक हो सके विद्यार्थी लोग फेल हों, और चौरासी योनियो में भटका करें ऐसे ही प्रयत्न के सम्बन्ध में प्रश्न सरकार की तरफ से होते हैं । परीक्षा की कापियाँ किस योग्यता से जाँची जाती हैं, यह तो आप पढ ही चुके हैं । विद्यार्थी मरें या जीएँ इसकी परवाह परीक्षक को काहे की, यदि वे ऐसा करें तो उनकी नानी ही मरे ।

"परीक्षा तेरा सत्यानाश हो" ऐसा कहने वाले अनेक विद्यार्थी मिलेंगे । परन्तु "आप ऐसा क्यों कहते हैं ?" यह पूछने वाला कोई विरला ही विद्यार्थी होगा । इसका कारण क्या ? सन् १८३३ ई० में जब हिन्द-सरकार की ओर से शिक्षा सम्बन्धी अनुरोध इँग्लैण्ड भेजे गए थे, उस समय यह किसी के भी ध्यान में नहीं आया था कि इसका परिणाम

कि हिन्दुस्तान के बालक इस प्रकार लैलेमजनू हो जायेंगे। प्रतिवर्ष यूनीवर्सिटी की टकसाल से सैकडो कलदार सिक्के निकलते हैं। इनमें से कितने सिक्के दुनियाँ में प्रचलित होते हैं सो जानने योग्य है। अभी तक यूनीवर्सिटी ने बहुत थोड़े ऐसे विद्यार्थियों को उत्पन्न किया है जिन्होने प्रसिद्धि पाई हो। महात्मा रानाडे ने शिक्षा के इस खरीते की, उसकी रीति, शिक्षणपद्धति आदि पर बडे महत्व की विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। पाश्चात्य देशो में विद्यार्थी वर्ग जब परीक्षा देकर नहाते हैं तब उनके चेहरे लालबिंब रहते हैं। परन्तु यहां में स्थिति बिल्कुल ही विपरीत है। यहां के विद्यार्थी जब परीक्षा दे चुकते हैं उस समय उनके चेहरे पर स्याही छाई रहती है मालूम पडता है, कि मैात के मुह से लैाट कर अभी आ रहे हैं। उनकी स्थिति ठीक वैसी ही रहती है जैसी एक अस्थिपिंजर युक्त मुरदे की। आजकल की शिक्षा ने कितने कालीदास, भवभूति, बराहमिहर, धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत, व्यास वाल्मीकि वामन, मोरोपंत, तुकाराम, ज्ञानदेव, प्रेमानन्द, नृसिंह, सूरदास सुन्दरदास, राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ, बापूदेव या सुधाकर को उत्पन्न किया है? छापा–तिलक वाले साधु तो अनेक मिलते हैं, पर सच्चा साधु एक भी भाग्यही से मिलता है। उसी प्रकार विद्या के प्रेमी, जिस पर सरस्वती की कृपा हो और जिसने अपनी पढाई को सार्थक किया है। ऐसे तो दोही चार विद्यार्थी यूनीवर्सिटी की टकसाल से बाहर निकलते हैं।

शारीरिक सम्पत्ति के विषय की तो बात ही न पूछिए। देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक यह पुकार हो रही है कि देश का कल्याण करो, कल्याण करो, किन्तु कल्याण

करने वालों को देखिएगा तो लिलिपट* के निवासी भी इनकी अपेक्षा जबरदस्त मालूम होंगे। एक सुशिक्षित बी० ए० एल० एल० बी० घर में बैठा तमाशा देखेगा। यदि दो चार अफगानों ने आकर उपद्रव मचाया हो, बाजार लूटा हो, स्त्रियों की इज्जत ली हो और लोग चिल्ला रहे हों। शहर में हजारों आदमी के रहते भी, इन जँगलियों का सामना करने को किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ेगी। भीम की गदा हनुमान की हुंकार, अर्जुन का गाँडीव, घटोत्कच का वेग, कुम्भकर्ण का आहार आदि को चाहे पुराणों की गप्प कहिए या कवियों की सूझ, इस से हमें कोई मतलब नहीं, पर जिन्होंने शिवा जी की तसवीर में उनका बलिष्ट शरीर, आबदार नेत्र और उग्र चेहरा देखा है, उन में से क्या कोई कहेगा कि ऐसे मनुष्यने देशके लिये कमर नहीं कसी थी? मुगल सेना जिस को शैतान कह कर पुकारती थी, वह बाजीराव पेशवा, जब भूखा होता तो कच्चे ही चने चबा जाता था। सदाशिव ने जिसने अफगान दुर्रानी की छाती चीरने का प्रण किया था, पानीपत के युद्ध में एक ही वार में सात अफगानी सिपाहियों को काट डाला था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला जब हाथी की पूछ पकड़ कर खड़ा हो जाता तब क्या मजाल थी कि हाथी एक कदम भी आगे बढ़ा सके। बारामती की सवारी में तँबू में विराजमान, माधोराव पेशवा पर जब एक मदोन्मत्त हाथी दौड़ता हुआ आया, उस समय एकोजी राव पाटन करने अपनी कटार के एकही वार से हाथी की चार अँगुल सूँड काट डाली थी। क्या यह सब भी परीक्षा

*Gullivers travel नामक उपन्यास में लिखा है कि लिलिपट के निवासी छः इन्च लम्बे होते थे। अत इनकी ताकत का अनुमान आसानी से हो सकता है।

ही का परिणाम था ? आजकल की परीक्षा से ऐसी शक्ति कभी भी नहीं आ सकती। सैन्डो और करीमबख्श को जिन्होंने देखा होगा वे कह सकते हैं कि जब तक शारीरिक सम्पत्ति प्राप्त नहीं होगी, तब तक वर्तमान शिक्षा का फल भीख माँगना ही होगा। जल्दी जल्दी परीक्षा देकर लोग पञ्चतत्व में मिलने की तैयारी करते हैं। इसके अतिरिक्त और वे कर ही क्या सकते हैं ? न देश आबाद न पेट ही गरम !

यदि सच पूछा जाय तो आजकल नवयुवक विद्यार्थियों की तो परीक्षा ने जड ही काट दी है। सबों को एकही ओर फेरा है। विद्या, कला, चातुरी व्यापार वाणिज्य, शारीरिक सम्पत्ति आदि सम्पादन करने के मार्ग तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नजर ही नहीं आते। सच कहा जाय तो यही देखने में आता है कि विद्यार्थियों के आगे मृत्यु का दरवाजा खोलकर उन्हें नाना प्रलोभन दिखाए जा रहे हैं।

पश्चात्य देशों का हवा-पानी, शिक्षा प्रणाली, शिक्षा के उद्देश्य, व्यापार, सरकारी नौकरियों का प्रबन्ध, लोगों की शारीरिक स्थिति, और व्यायाम के नियम आदि सब भिन्न हैं। तथापि वहाँ की रीति-भाँति की पूरी नकल यहाँ देखने में आती है और दिनों दिन, एक एक कर के, नियम के नाम पर अनेक नई अडचनें उपस्थित की जा रही हैं। उसमें विशेषता यह है कि वहाँ के नियम विशेष कठिन बना कर यहाँ प्रयोग में लाए जा रहे हैं और यहाँ जिन विषयों की शिक्षा दी जाती है वे बहुधा निरुपयोगी होते हैं ! जिस किसी ने अंग्रेजी की चार पाच किताबें पढ़ीं कि वह अपने धर्म को तुच्छ समझने लगा। राम जाने किस जादू के प्रभाव से, निराकार भगवान को मानने वाले भारतवासियों को साढ़े तीन

मन और पाँच सेर का ईसु बेटा कहाँ से और किस प्रकार स्वाभाविक सिद्ध हुआ। पुस्तकों की ढेर का तो हिसाब ही नहीं मिलता। एक परीक्षा समाप्त हुई की पसेरी भर पुस्तकें भी बासी हुई। दिमाग तो पीछे थकता है पर पुस्तकों को ढोते ढोते हाथ पहिले ही तोवा तोवा पुकार उठते हैं !!

मा बाप को रात दिन एक यह भी चिन्ता ग्रसे रहती है कि भले चंगे लड़के दिनों दिन गले क्यों जाते हैं ? वे लड़कों की दवा करते हैं, डाक्टरों का उपचार करते हैं, प्रसिद्ध दवाएँ पिलाते हैं शरद ऋतु में उड़द के लड्डू, शालिम पाक, या मेथी पाक का सेवन कराते हैं, पर असर कुछ भी नहीं होता। शरीर बढ़ने की बात तो दूर रही, वहाँ तो कद भी घटता जाता है। उनकी स्वाभाविक वृद्धि रुक जाती है। साधारणतया युवा अवस्था आई कि चश्मे की आवश्यकता पड़ी। गद्दह पचीसी बीती न बीती कि बालों की स्याही गायब। ऐसी अवस्था में उनके सन्तान यदि बेढंगे या अशक्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? भारतवर्ष में धीरे धीरे बाँस के बराबर से हाथ के बराबर और फिर बिलस्त के बराबर की प्रजा उत्पन्न होगी। छोटा शरीर, कम हिम्मत, छोटे विचार और अन्त में छोटी अवस्था—सब कुछ छोटा ही छोटा होने की संभावना नजर आती है।

तेरहवाँ प्रकरण

मृत्यु-शैय्या

माणिक का पिता प्रतिदिन अपने घर में कलह पुराण सुनता था। उस पर कभी कभी मनन भी करना, पर उसका कुछ प्रभाव नही पडता था। किन्तु उसका पुत्र तो चारही दिनों की मनोव्यथा से शारीरक संकटो का शिकार बन गया। डाकृर साहब ने अपने बहनोई और भाजी के मुलाहजे से तथा माणिक के स्वयके परिचय के कारण उसके उपचार में कोई बात उठा न रखता था। डाकृर की खास देख रेख में दवा होती थी, तथापि रोग का वेग न रुका। "मरज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।"

बुखार, खाँसी, कै और पेट की पेचिस इन चारों ने एक साथ ही उस दुर्वल पर चढ़ाई की। उस की अशक्ति भी अपनी पराकाष्ठा को पहुच गई थी। कभी कभी वह गाफिल भी हो जाता था। तृषा के कारण गले में काँटे पड गए थे। शरीर की एक एक हड्डी में दर्द, पैदा हो गया था। डाकृर विचारा कहाँ तक चल सकता है? जब रोग ही असाध्य हो गया तो उसका क्या चारा और दवा का क्या दोष? डाकृर वाछों इसकी प्रकृति को जान गया था। इतने पर भी वह कमर कस कर इसका उपचार करने लगा। फिर भी स्थिति में कुछ अन्तर नहीं पडा 'फूटी की बूटी कहा'?

घटे घटे भर पर जर का आदमी आता, और 'वही हाल है' यही उत्तर ले कर जाता॥ उस दयालु वाला को माणिक के लिये कितना प्रेम था यह तो पाठकों से छिपा नही है। माणिक

तेरहवाँ प्रकरण

मृत्यु-शैय्या

माणिक का पिता प्रतिदिन अपने घर में कल्ह पुराण सुनता था। उस पर कभी कभी मनन भी करता, पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पडता था। किन्तु उसका पुत्र तो चारही दिन की मनोव्यथा से शारीरक सकटो का शिकार बन गया। डाकृर साहब ने अपने बहनोई और भाजी के मुलाहज़े से तथा माणिक के स्वयके परिचय के कारण उसके उपचार में कोई बात उठा न रखता था। डाकृर की ख़ास देख रेख में दवा होती थी, तथापि रोग का वेग न रुका। "मरज बढता गया, ज्यों ज्यों दवा की।"

बुखार, खाँसी, कै और पेट की पेचिस इन चारों ने एक साथ ही उस दुर्बल पर चढाई की। उस की अशक्ति भी अपनी पराकाष्टा को पहुच गई थी। कभी कभी वह गाफिल भी हो जाता था। तृषा के कारण गले में काँटे पड़ गए थे। शरीर की एक एक हड्डी में दर्द पैदा हो गया था। डाकृर बिचारा कहा तक चल सकता है? जब रोग ही असाध्य हो गया तो उसका क्या चारा और दवा का क्या दोष? डाकृर वांछा इसकी को जान गया था। इतने पर भी वह कमर कस कर इसका करने लगा। फिर भी स्थिति में कुछ अन्तर नहीं पडा। वृटी कहा'?

घटे घटे भर पर जर का आदमी आता, और 'वही हालत यही उत्तर ले कर जाता॥ उस [illegible] माणिक के

लिये वह बहुत ही दुःखी और चिंतातुर रहती थी। उसे माणिक को एक वार अपनी आँखो से देखने की बडी उत्कंठा हुई पर शायद पिताजी को किसी प्रकार का वहम हो, इस विचार से उसने अपनी इच्छा को दबा रखा। पिता जी को किसी प्रकार का वहम होगा, यह विचार जर के मन में आज ही प्रथमबार उत्पन्न हुआ था। जर जब माणिक का पक्ष लेती, उसके लिखने पढने के काम में उसे सहायता देती, और खुले आम उससे बातचीत और हसी ठट्ठा करती, उस समय तो उसको स्वप्न में भी यह विचार नहीं आया था कि पिता जी शक करेंगे, तो फिर आज ही ऐसा विचार क्यों उत्पन्न हुआ, सो तो ईश्वर ही जाने।

"क्या मेरा दरियाव दिल पिता मेरे प्रति ऐसा नीच विचार करेगा ?" मनही मन बडबडाती हुई जर अपनी बैठक में इधर उधर घूमने लगी, "किसके लिये ? अरे इस दान-हीन माणिकचन्द के लिये !" इतना कह वह एक हाथ कमर पर और दूसरे की ऊगली गाल पर रख विचार सागर में गोते खाने लगी। इस समय का उसका भाव किसी चतुर चित्रकार द्वारा चित्रित होने योग्य था। "कुछ नहीं अब कल," इतना बडबडा वह अपने सोने के कमरे में चली गई।

दूसरे दिन दोपहर को एक बजे डाक्टर ने आ कर जर से कहा, "अब माणिक एक ही दो दिन का पाहुन है।" इस समाचार ने जर के हृदय पर ऐसी चोट पहुचाई कि वह एकायक घबराकर अपनी कुर्सी पर लडखडा पडी। जरने गद्गद् स्वर से शावकशाह से पूछा, "क्यों मामाजी, क्या कोई ऐसी-दवा नहीं है जिससे इस ग्रेजुएट की जान बच जाय?"

शावकशाह ने अपनी भांजी जर के माथे पर हाथ फेरते

हुए कहा, "बेटी जर, अपने भरसक तो कोई भी बात इसके लिये उठा नही रक्खी है, और अन्तिम घडी तक कोशिश होती ही रहेगी, आगे ईश्वर की जैसी इच्छा, मुझे स्वयं इस बालक पर बहुत प्रेम है। तुम्हारे पिता इसकी बुद्धि पर फिदा हैं,और वृद्ध वैरामजी तो दिन में चार बार आदमी भेज कर पुछवाते हैं कि माणिक की तबीयत कैसी है। यह लड़का हमलोगो से बहुत हिलमिल गया है। आगे इसका भाग्य। इससे अधिक हम लोग कर ही क्या सकते हैं?"

जर ने हमदर्दी दिखाते हुए कहा,"मामाजी, आपको मेरी कसम है, आप वहीं जाइये। मैं भी पिता जी की आज्ञा ले कर एक घण्टे में वहाँ आती हू। ईश्वर इसको आरोग्य करे। मुझे इसका बहुत खयाल है। बिचारे का विवाह भी हो गया है।"

शावकशाह अनारकली की ओर बढे और जर भी धीरे २ अपने पिता के पास जा कर कहने लगी, "पप्पा, मामा जी अभी आप ये से कह गये हैं कि माणिकचन्द की कोई आशा नहीं है। यदि आपको किसी भाँति की अडचन न पडे तो मैं अन्तिम बार जा कर उस बिचारे की सेवा कर आऊँ। फिर दूसरे लोग भी अपने को इस बात की बदनामी का टीका नहीं देंगे कि एक सुशिक्षित नैाकर की बीमारी की हालत में उसे देखने भी नहीं गये। क्यों मैं ठीक कहती हू न?"

एदलजी अपनी बेटी के इस उदार विचार पर प्रसन्न हो, उसको आज्ञा देते हुए बोले, "खुशी से, प्यारी बेटी, देखना अगर दे रुपये खर्चने भी पडें तो पीछे मत हटना ईश्वर न करे कि स्थिति निराशापूर्ण हो, नही तो उसके मा बाप को तार दे देना और मेरे पास भी आदमी भेजना। मैं स्वयम् आऊंगा, जाओ, खुशी से जाओ, मामाजी वहाँ हैं, दूकान बन्द होने के

बाद नैरामजी को भी मैं वहीं भेजूंगा। कोचवान को गाडी जोतने के लिये कहलाओ और लडके से कहो कि चाह तैयार करे। इस समय एक क्षण भी खोने का मौका नहीं है।"

"मैं अपने पिता के इस दरियाव दिल पर हजार बार अपने को न्यौछार करती हू" कहती हुई जर प्रसन्न हो कर अपने कमरे में गई और झटपट साडी बदल कर बाहर आई। फिर न जाने क्या सूझी कि चट किवाड खोल एक स्मेलिंग साल्ट की शीशी निकाल अपने जेब के हवाले की और लडके को हुक्म दिया कि एक तपेली चाय जल्द तैयार करके माणिक के घर ले आए। फिर गाडी पर सवार हो वह पाँच मिनिट में माणिक के घर पहुची। चारो ओर के लोग आश्चर्य करते थे कि 'यह अप्सरा इधर कहाँ जा रही है।' नौकर माणिक का घर बता, गाडी ही में वापस चला गया। जर ने सन्ध्या को गाडी लाने का हुक्म दिया और चाह भेजने की ताकीद की।

जर धडकते हुए दिल से और थरथराते हुए पैर से ऊपर चढ़ी। माणिक एक खाट पर मूर्छित दशा में पडा था। डाक्टर बाबा उसकी नाडी पकड चिन्तातुर बदन से घडी देख रहे थे। जर आते ही माणिक की खाट के सामने जा खडी हुई। उसका पवित्र और दयालु हृदय माणिक की दुर्दशा देखते ही व्याकुल हो गया।

थोडी देर बाद माणिक के होठ साधारण रीति से हिले और उसके उस विशेष स्मित हास्य का दर्शन हुआ जिसमें उसके होठ बडी विचित्रता से झुक जाया करते थे। उसकी काली भौंहें भी धनुषाकार चढ गईं। इस दृश्यने न जाने जर के विचार में क्या उलट फेर कर दिया कि वह तो चक्कर खा कर, पवन के झकोरे से कोमल डंठल की तरह जमीन पर लोट गई। बाबा

और माणिक के नौकर ने मिलकर उसको एक टूटी फूटी आराम कुर्सी पर बिठाया। नौकर धीरे धीरे उसके चेहरे पर पंखा झलने लगा और डाक्टर वाछाने उसके जेब से रुमाल निकाला तथा उसके ऊपर 'कोलोन वाटर' छिड़क उसको सुघाने लगा। पाँच मिनिट में जब जर होशमें आई तो कुछ लज्जा और साहस से कहने लगी, "मामा जी आप मेरी कुछ चिन्ता न कर।" फिर दोनों उठ कर रोगी की खाट के पास आ बैठे। वाछा की कुर्सी पैताने और जर की सिरहाने थी।

दया की मूर्ति जर निःसंकोच माणिक के माथे पर अपना नाजुक हाथ फेरते हुए बोली, "क्या सोचते हैं, मामा जी, क्या यह विचारा बच जायगा ?"

वाछा ने तिपाई पर से दवा की शीशी उठाते हुए कहा। "यह मौत और जिन्दगी के बीच में झूल रहा है। अगर आज का दिन टल गया तो कुछ आशा की जा सकती है।"

करीब एक घन्टा बीत गया, पर स्वर्ग के साधनों को सिद्ध करने में लगे हुए शरीर में चैतन्यता नहीं आई। इसी बीच में वाछा और जर ने दो बार उसका मुह खोल कर उसे दवा पिलाई पर निरर्थक। छाती धुक धुक करती थी और श्वास चल रहा था, परन्तु बेहोशी ऐसी छाई हुई थी कि एक एक क्षण पर जर की चिन्ता बढती जाती थी।

जर ने अपने रूमालसे माणिक के चेहरे पर की मक्खियाँ उडाते हुए कहा, "मेरे पास बहुत तेज स्मेलिंग साल्ट है, मामा जी क्या उसको भी सुघा देवें।"

"हाँ, हाँ," कह करडाक्टर ने हाथ बढाया और जर ने रज से शीशी निकाल कर दे दी। इसने तो अपना पूरा असर दिखाया। माणिक घबडा कर कुछ काँपा और थोड़ी ही देर बाद उसने

करवट भी बदली। "अब इसका दिल ठिकाने से काम करने लगा" डाक्टर आशापूर्ण वचन बोले। इतने में माणिक की पलकें भी कुछ उठीं। वह शीशी फिर उसके नाक के आगे रखी गई। बहुत थोड़े समय में कँपकँपी खा कर उसने अपनी आँखें खोल दीं। पर अभी उसकी जीभ तो बन्द ही थी। इस लिए बोला नहीं जाता था। वह किसी को पहिचान भी नहीं सकता था। पांच सात मिनिट के बाद उसकी जबान खुली और उसने पागल की तरह बड़बड़ाना शुरू किया। वह चारों तरफ आँखें फाड़ फाड़ कर देखता और मिल्टन तथा शेक्सपियर की कविता के स्फुट पद मनमाने तौर से बड़बड़ाता था। कभी उर्दू कवि का तो कभी फारसी कवि का, और कभी संस्कृत के काव्यों का उच्चारण करता हाथ पैर पछाड़ता था। आँखों को भी कभी खोलता और कभी बन्द कर लेता था, घबराहट बहुत ही बढ़ गई। दम पर दम ताली पीट कर वह यही कहता, "एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी खराब की !" इन शब्दों को सुनकर बाछा मुस्कुराते थे और जर मन ही मन खाक होती जाती थी।

चाय आई। जर ने खाट पर बैठकर माणिक के सिर को अपनी कोमल जाँघों पर रखा और उसको चाय पिलाने लगी। आधा गिलास चाय पेट में जाने पर माणिक की बड़बड़ाहट कुछ कम हुई। पाव घन्टे के बाद थोड़ा दूध और दो चिम्मच आसव, ये दोनों मिला माणिक के मुख में दवा छोड़ी गई। इस चमत्कारी दवा के पेट में पहुचते ही, फिर बड़बड़ाहट शुरू हुई। अब तो माणिक खाट पर खड़ा होकर भागने की कोशिश करने लगा। जर माणिक को रोकने की बहुत चेष्टा करती, पर वह एक ही झटके में उसके कोमल हाथों

को झटक देता था। एकाध बार तो उसके झटके से जर को कुछ आघात भी हुआ पर इस सहृदय दयामयी ने अपनी भौंह तक न बिगाड़ी। इतने में ही नीचे किवाड़ी किसी ने खटखटाई। नौकर नीचे जा यह खबर लाया कि माणिक के गांव के दो आदमी बाजार में उसकी बीमारी का हाल पा उनको देखने आए हैं। डाक्टर ने कहा, "अभी वह बेहोश है और यहां भीड़ भाड़ करने की कोई जरूरत नहीं है।" नौकर ने नीचे जाकर यह जवाब दिया। पर वे, इस बात पर बिल्कुल ध्यान न देते हुए, धड़ाधड़ ऊपर चढ़ आए। डाक्टर बिचारा अंग्रेजी में बड़बड़ाता ही रह गया।

इन दोनों अतिथियों में से एक तो दीवान चन्द नाम के माणिक के जाति बन्धु थे और दूसरे महापुरुष तुलाराम जी पटवारी थे। ये लोग किसी कार्यवशात् लाहौर आए थे। खोजने पर नीचे के दूकानदार से माणिक की बीमारी का पता लगा, तब वे ऊपर देखने के लिये आए। इन लोगों ने तो मन में यही समझा होगा कि बिचारा माणिक अकेला पड़ा होगा पर यहाँ तो एक अप्सरा उसके सिर को अपनी गोद में रख उसे दवा पिला रही थी। इतना ही नहीं, एक अंग्रेज डाक्टर भी उसकी सेवा सुश्रूषा में वहाँ तैयार था। दोनों ने यह कौतुक देखा और एक कोने में जा भूमि पर पलथी मार बैठ गए। महात्मा तुलाराम जी का भक्त मन जर की सुन्दर सलोनी मूर्ति पर पानी पानी हो गया। पर जर का प्रभावशाली चेहरा ऐसा तेजस्वी था कि तुलाराम जी के नेत्र उस पर ठहर ही नहीं सकते थे और न उनको इतनी हिम्मत ही पड़ती थी कि वे आँख उठाकर आँख भर उसको देख ही लें। थोड़ी देर ये बैठे रहे। इसी समय में जर ने सुराही में से

दवा निकाल माणिक को चम्मच से पिलाना शुरु किया। दवा पिला कर उसने रुमाल से उसका मुंह पोछ डाला। तुलाराम जी की इच्छा हुई कि मैं भी बीमार पड़ूं और यह नाजनी मेरी सेवा-सुश्रूषा करे। पर कुदरत ने यारी न बख्शी। कर ही क्या सकते थे ? भीतर ही भीतर खाक हो रहे थे। अन्त में उन्होंने इस प्रकार बात छेडी.—

"श्रीमती यह हिन्दू का बालक है, अन्तिम समय इसका कोठा भ्रष्ट मत कीजिये। यह तो गंगा जल पिलाने का समय है इस समय तो इसके मुह में तुलसीदल और सोना रखना चाहिये।"

नर्स ने नाक भौं चढा कर कहा, "खैर होगा।" फिर डाक्टर क्रुद्ध होकर बोले, "यदि आप लोग सीधी राह यहां से चपत न होइयेगा तो आपको अपमानपूर्वक बिदा करना पड़ेगा इस लिये अब आप कृपा कीजिये।"

लाचारी थी कर ही क्या सकते थे। बिचारे अपना सा मुह लेकर नौ दो ग्यारह हुए। "भैया, यह समय जाने का नहीं है, भले ही दो घडी की देर हो। लडका आ किनारे आ लगा है, इतनी दूर आये हैं और हालत आँखों से देखी है, भला ऐसी हालत में इसको लकडी के सुपुर्द किये बिना कैसे चल सकते हैं ?"

दीवानचन्द ने कहा, 'आपका कहना तो ठीक है।" लोगों को यदि इसका पता लग जायेगा तो बदनामी का ठ कुरा मुफ्त में अपने सिर पर फूटेगा। चलो यहीं बैठे, परन्तु महाराज जी, यदि यह खाट से उठ खड़ा हुआ तो बिना प्रायश्चित किये पंगत में नहीं लिया जायगा क्योंकि इसका कोठा अपवित्र हो चुका है। भाई, यह धर्म की बात है, इसमें तो सगे बाप को भी नहीं छोड़ा जायगा।

पटवारी जी ने भी सुर में सुर मिलाते हुए कहा "खूब कही, जान जाए तो भले जाए, पर धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। यह तो भ्रष्ट हो ही चुका अब तो इसके घर भर का न्योता काटना ही पड़ेगा। क्या देख कर भी आँखों में धूल झोंक लेंगे ? क्यों, उस नाजनी की चटक मटक देखी थी न ?"

तुलाराम और दीवानचन्द के जाने के प्राय. एक घन्टे बाद माणिक ने ध्यान पूर्वक आँखें खोल कर देखा कि उसके लक्षाधिपति सेठ की पुत्री उसके सिर को अपनी गोद में रखे हुए उसे दवा पिला रही है और रूमाल से मक्खियाँ उड़ा रही है। जरके इस व्यवहार से वह उसका सदैव के लिये ऋणी हो गया। उसने बोलने की अनेक चेष्टाए की, पर आवाज गले से बाहर न निकली। अन्त में हृदय की उर्मियोंने अश्रुधारा का रूप धारण कर नेत्र द्वार से निकलने का प्रयत्न किया, और यह प्रयत्न सफल भी हुआ। आँसू का प्रवाह उसकी साड़ी पर से उसके पैर पर जा गिरा। परन्तु वह दृढ चित्त चतुर बाला इससे न तो जरा भी डगमगाई, न कम्पायमान हुई, उलटे दया और प्रेम से अपने हाथों से उसके आँसू पोछने लगी। माणिक ने धीरे धीरे अपने शरीर भर की शक्ति एकत्र कर ऊँचा मुँह करके कहा "मेरी धर्म की बहिन, मेरे सकटों में सच्ची सहायता करने वाली भगिनी, आपका कल्याण हो, आप खूब फूले फलें।"

माणिक के होश में आने से जर को जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन यह लेखनी करही नहीं सकती। मनुष्यत्व अथवा हमदर्दी इसी का नाम है। ईश्वर प्रत्येक घर में ऐसी पुत्रियों का अवतार दे और घर को शोभा दे यही मेरी प्रार्थना है।

प्राय डेढ़ घन्टे के बाद फिर वे दोनो, अनिमन्त्रित आग-

न्तुक ऊपर आए और घर में घुसने के लिये बहुत फाके कूटे, पर कुछ सिद्धि नहीं हुई। अन्त में उन लोगों ने अपना रास्ता पकड़ा और रात की गाड़ी से अमेठा के लिये रवाना हो गए माणिक की अवस्था सुधरने की थोड़ी बहुत आशा अब सब के मन में हो गई।

चौदहवाँ प्रकरण

काश्मीर का प्रवास

काश्मीर का प्रवास करके लौटे हुए एक यात्रीने अपने ग्रन्थ में अपने उद्गार इस प्रकार लिखे हैं। अत्युत्तम होने के कारण वे पाठकों के जानने के हेतु यहां उद्धृत किये जाते हैं —

"श्री कामाक्षा तीर्थ और आसाम देश के दुर्गम दुरारोह भूधर शृंग, दुर्गम वन, तालाब, झरने आदि से युक्त अलौकिक, प्राकृत शोभामयी विधाता की लीला-भूमि को देख चकित चित्त ऐसा लुब्ध हो गया था कि वहाँ से चले आने के उपरान्त दीर्घ काल तक हृदय पर चित्रित उस प्रदेशका चमत्कारी चित्र अष्टप्रहर आंखोंके समक्ष नाचा करता था, और मन रूपी पक्षी उस स्थान में विचरने के लिये निश दिन उत्कंठित रहता था।"

"अनेक भाषाओं के विविध ग्रन्थों के पठन और श्रवण से मन में ऐसी लालसा हो आई कि तुषारधारी और नगर-राज-कुमारी वह स्वर्णोपम काश्मीर नगरी तो अवश्य देखनी चाहिये कि जिसके यशगान में क्षेमेन्द्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर, छविलभट्ट, कल्हण, जैनराज, श्रीवरराज और प्राज्यभट्ट आदि

कवीश्वरों ने भारत की सुरस वीणा में अत्युत्तम पद गाये हैं, जिसको दिल्लीश्वर यवन बादशाहों ने बिहिश्त (स्वर्ग) की उपमा दी है, जिस भू स्वर्ग की शोभा अवलोकन करने को यूरोप और अमेरिका जैसे सात समुद्र पार के देशों से, प्रतिवर्ष विपुल धन व्यय कर, नाना प्रकार के कष्ट भोग प्रियजनों का वियोग सह अनेक प्रवासी आते हैं, और जिसको प्रसिद्ध डाक्टर निव्स तथा डाक्टर एबट आदि ने स्वर्ग का पद प्रदान किया है, उसी काश्मीर देश को देखने की मेरे मन में इच्छा हुई। परन्तु ऐसा अवसर मिलना ही महा दुर्लभ था। अन्त में अनुकूल अवसर और प्रसङ्ग मिले ही। धन्य है वह सर्व शक्ति सम्पन्न जगदीश्वर कि जिसकी अनुकम्पा से आशा के प्रयास विना अनायास एक ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ कि जिससे मेरा काश्मीर का प्रवास निश्चय हो गया।"

प्रिय पाठकगण! काश्मीर देखने की इस प्रवासी की तरह सबको इच्छा होना स्वाभाविक है, परन्तु सबको वैसा प्रसङ्ग मिलना असम्भव है। खैर, इस समय हम लोग इस वार्ता के नायकों के साथ साथ काश्मीर के कितने ही स्थानों का अवलोकन करेंगे, जिससे थोड़ा बहुत सन्तोष तो हृदय में अवश्य होगा। इसमें कोई शंका नहीं है। चलिये तब आगे बढ़े और काश्मीर का अवलोकन करें।

शीतल समीर की सुगन्धित लहरें शरीर में लगने से आनंद देतीं और रोग को हर लेती थीं। झेलम नदी का स्वच्छ और निर्मल जल ऐसा मालूम होता था कि बिल्लौरी पत्थर जमीन में बैठाया गया हो। न उसमें वेग था और न लहरें ही उठती थीं। अर्थात् झेलम अपना उच्छृङ्खल स्वभाव छोड़ कर सर्वथा शान्त बन गई थी। कोसों तक मालूम पड़ता था कि पानी को

चादर बिछा दी गयी है, और वह चादर ऐसी सुन्दर और साफ़ है कि उसमें एक जगह भी सिकुडन या सल का नाम नहीं। पानी के इस सरपट मैदान में एक सुशोभित डोंगी— मुग्धा सामान्या स्त्री के समान नृत्य करती हुई दृष्टिगोचर हुई इसमें तीन मनुष्य बैठे थे। पीछे दो और डोंगियाँ थी जो इस तरह आ रही थीं जैसे नाचने वाली के पीछे रहने वाले समाजी। पहिली डोंगी में बैठे लोग, मालूम पडता था, नसीम बाग की तरफ जा रहे थे। नदी के दोनों किनारे घने वृक्षों से सुशोभित थे। फल के भार से वृक्षों की शाखाएँ जमीन सूँघ रही थी। फल देखने में जितने सुन्दर थे उतने ही स्वादिष्ट, खाने में भी थे। दूसरे इन फलों का जीवनकाल केवल कुछ घण्टों ही का होता था। यहा के मनुष्य भी भाग्यवान थे जो ये फल लम्बी आयुष के नहीं होते थे। नहीं तो, बम्बई और कलकत्ता के व्यापारी उनके वश का नामोनिशान भी न रहने देते और वहाँ के निवासी तो उन फलों का स्वाद भी न पा सकते। जब तक सत्यानाशी रेल वहा नही पहुचती तब तक तो गनीमत है। यदि वहाँ तक रेल पहुची तो जिस प्रकार राली ब्रादर्स ने हिन्दुस्तान में से अन्न का दाना चुरा लिया है उसी प्रकार कोई पाली ब्रादर्स पैदा हो कर फलों का सत्या-नाश करेंगे। इस बात को ब्रह्मवाक्य की तरह अक्षरशः सत्य जानना। यदि फल बिगडेंगे तो बरफ या मधु में रख कर या और किसी प्रकार से उनको बाहर भेजे बिना न रहेंगे।

डोंगी के तीन यात्रियों में से एक लम्बा और भरे शरीर का मनुष्य था। उसका पहनावा अंग्रेजी था। सिर पर स्मोकिंग कैप (टोपी) थी। आंखों पर सोने की कमानी का चश्मा कसा था। मूछें लम्बी लम्बी थीं, गाल भी भरे थे। देखने में

एक यूरोपियन या यूरेशियन-सा मालूम पड़ता था। वह एक आरामकुर्सी पर बैठा था। पास ही एक तिपाई भी पड़ी थी। उस पर गरमा गरम चाह का एक प्याला, एक रकेबी में ताजा मक्खन और एक में घी में तली हुई पावरोटी रखी थी। बगल में पड़ी हुई दूसरी कुर्सी पर दो एक अंग्रेजी समाचारपत्र और एक अंग्रेजी उपन्यास पड़ा था।

दूसरे यात्री ने भी अंग्रेजी पोशाक पहिनी थी, पर हाफ कोट के एवज में उसने एक लम्बा कोट पहिना था। सिर पर इसने एक थान का फेटा बाँध रखा था। देखने से मालूम होता था कि इसकी सात पीढ़ी में भी किसी को साफा बाँधने का शऊर न था। यदि इसने इस साफे के बदले पारसी चाल का फेटा बाँधा होता तो लोग इसको पारसी ही समझते। यह भी एक आराम कुर्सी पर पड़ा था। सामने तिपाई पर एक चाह का प्याला और राजतरंगिणी नामक काश्मीर के इतिहास का गुजराती अनुवाद, पड़ा था। इस व्यक्ति के मुख का रंग बिल्कुल फीका, शरीर दुर्बल, परन्तु मुख मुद्रा आरोग्य-सूचक देखने में आती थी। देखने से मालूम होता था कि यह अभी बीमारी ही से उठा है।

तृतीय व्यक्ति, वही नवयौवना, गौरांगी, सुरूपा, कुमारी थी। उसके शिर पर काश्मीर के बहुमूल्य दुशाले का रूमाल लपेटा था। नारंगी रंग की रेशमी साड़ी उसके युवावस्था के शरीर पर सोने में सुगंध का काम कर रही थी। साड़ी के नीचे अंग्रेजी चाल का एक गुलाबी पोलका (चोली विशेष) था। पोलके में की जरी की बूटियाँ साड़ी को पार कर दर्शक के हृदय तक को छेदने में समर्थ थीं। पैर में रेशम के काम के मखमली जूते शोभायमान थे। पटन के काज में गुलाब के फूल की एक

अर्ध-विकसित कली खोली हुई थी। मालूम पडता था कि वह उसके गुलाबी गाल के रंग से शर्मा कर मुर्झा रही है। इनके रंग रवैया देख कर मल्लाह लोग यह निश्चित नहीं कर सके कि ये लोग किस जाती के हैं। पहिला प्रवासी देखने में यूरोपियन मालूम पडता था पर उसके मुह में चुरुट न थी, यह भी एक आश्चर्यजनक बात थी। दूसरा प्रवासी एक बाबू जान पडता था, पर इस बाबू की ये लोग इतनी सेवा-सुश्रूषा क्यों करते हैं, यह बात उनको और भी हैरत में डाल रही थी। एक मल्लाह ने अपनी काश्मीरी भाषा में इस प्रकार इस रहस्य के प्रति अपना अनुमान प्रकट किया—

"भाई, मेरे ध्यान में तो आता है कि यह कोई अमीरजादा है। यह लडकी भी किसी काश्मीरी ब्राह्मण की मालूम होती है जो सदा के लिये यहाँ से बाहर निकल भागी है। यह अंग्रेजी पढी लिखी है और जान पडती है कि इस अमीरजादे को अपने चंगुल में फंसा लिया है। यह अंग्रेज इसकी रियासत का मनेजर जान पडता है।"

दूसरे मल्लाहने भी इस कथन का समर्थन करते हुए कहा, "हो सकता है, लखनऊ और इलाहाबाद में बहुत से काश्मीरी जा बसे हैं। अंग्रेजी राज्य में नंगे सिर घूमना कुछ आश्चर्यजनक तो है ही नहीं। इस साहब के साथ तो इसका बाप बेटी का नाता समझ पडता है और सम्भव है कि लडके से इसकी आँख लड गई हो।"

तीसरा बीच ही में बोल उठा लडका बडा होशियार है। "देखो अंग्रेजी कैसी गिटपिट गिटपिट बोल लेता है, जैसे साहब ही की औलाद हो। यह पुतली इनकी ऐसी सेवा करती है जैसे दाई। मेरे ध्यान में आता है कि यह अमीरजादा अभी

बीमारी से उठा है और इस डाक्टर और दाई को ले कर हवा पानी बदलने आया है। पर यह महामाया इसको चौरासी के फेर में डाले बिना नहीं रहेगी। है भी दई को सँवारी हुई।"

इस प्रकार बात चीत में लगे हुए मल्लाह नाव खेते जा रहे थे। तीनो मुसाफिर अपनी अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहे थे। उनकी बात चीत निराले ही ढंग की थी।

इतने ही में प्रथम प्रवासी ने जलपान कर के हाथ धोते हुए कहा "सामने वाली पहाड़ी पर नजर कीजिए। यह जो मधुर सुगन्ध आ रही है वह वहीं के फूलों की है। यह सुगन्ध चमेली के फूलो की सी लगती है, पर वास्तव में यह चमेली की नहीं है। ये फूल बोए या सोचे बिना कुदरत के खेलवाड के नमूने हैं। एशियाई कवियो ने माशूक की जुल्फों के साथ इनकी तुलना की है। हकीकत में ये माशूक की जुल्फे ही हैं। रेशम को शर्माने वाली इनकी मुलायमियत और चटकीलापन हैं और उत्तमोत्तम कस्तूरी का मात करने वाली इसकी मस्त सुगन्ध है। इस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम लोग वेनिस में सैर कर रहे हैं। पेड़ो की समानता तो गज़ब की हैरत में डालती है। इन्हें देखकर यही प्रतीत होता है, मानो प्रकृति के भेजे हुए माली ने नाप जोख कर फरमायशी पेड़ लगाए हो। इन्हीं सब दृश्यो ने अंग्रेजो के दिल को मोह लिया है। देखिए, सामने के मैदान में कैसी अच्छी प्रयोग-शाला बन सकती है। यह देखिए इस मैदान में का बाग़, इसे तो प्राकृतिक वनस्पति शाला ही कहना चाहिए। वाह! कैसा सुहावना दृश्य है, मानों स्वर्ग ही उतर आया है।"

पंजाबी प्रवासीने कहा "कुदरती उदारता ऐसी ही होती है। सामने दृष्टि डालिए, देखिए उधर सब स्त्रियाँ नंगी नहा रहीं

हैं, मालूम पड़ता है कि परियों और हूरों का समूह कोहेकाफ से घूमने को इधर उतर आया है। यदि इन लोगों के सुन्दर सुडौल शरीर पर 'गौन' पहिनाया जाय तो क्या ये मेम साहिबा से किसी तरह भी कम नज़र आएँगी ? पर निर्धनता ! यदि यूरोपियनों के समान मनमाने सुख इनको मिलें तो ये यहीं स्वर्ग बना दें।"

श्री प्रवासी ने अपने कोकिल स्वर से सबों को अपनी ओर आकर्षित कर कहा, "हा, हा, माणिक चन्द, दो चार लियाँ यहाँ से ले चलिए और दो चार मद्रास से मँगाइए, बाद सबों को गौन पहिना कर कहिए कि ये हिन्दुस्तान की सुन्दरियाँ हैं, फिर देखिए कैसा आनन्द है ?"

माणिक,—"हिन्दुस्तान के प्राचीन वेदान्तियों ने मुलतान और लाहौर की जलती हुई लू में न्याय और अध्यात्म शास्त्रों की क्या छानबीन की होगी ? ऐसे मनोरम्य स्थानों में किस प्रकार उन्होंने अपने को काबू में रखा होगा और कैसे ऐसे असाधारण विषयों का ज्ञान सम्पादन किया होगा ? लोग कहते हैं कि पंजाब में कोई भी महात्मा नहीं हुए हैं। यह सच है, हों भी कहाँ से ? जहाँ निरन्तर अग्नि वर्षा होती हो, शरीर जलकर खाक होता हो, और मन मोमबत्ती की तरह सदा जला करता हो वहां शान्ति और अभ्यास कहाँ से हो सके ? वर्षा-ऋतु में भी बुरे हाल और शरद्-ऋतु में तो हाथ पैर अकड़कर लकड़ी हो जाते हैं। ऐसी हालत में यदि कोई शरीर पर काबू रखे, तो कैसे और किन साधनों से ?"

प्रथम प्रवासी ने कहा "यू आर राइट" यदि संसार भर के प्रत्यक्ष नरकों की गणना करनी हो तो अफ्रिका, अमेरिका और हिन्दुस्तान का अधिक भाग छोड़ सब अच्छी जगहें हैं।

यदि यह काश्मीर न होता तो हिन्दुस्तान भी अच्छी जगहों में गिना जाता।

डोंगी चली जा रही रही। एक के बाद दूसरे नए नए स्थान नज़र के सामने आते थे। इतने में जर ने शीशी में से एक खुराक दवा निकाल कर माणिक से कहा, "लीजिए यह एक खुराक दवा पी जाइए और दुशाले को पैर पर डाल लीजिए। आप लगे इस पुस्तक में इस में क्या लिखा है कहती हुई जर ने माणिक के हाथ से किताब छीन कर टेबुल पर पटक दी।'

दवा पी कर मुंह पोंछते हुए माणिक ने कहा "जरबान्, इसमें काश्मीर का प्राचीन इतिहास लिखा है। हिन्दी भाषा में भाग्यही से ऐसी पुस्तकें मिलती हैं। इसका मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है और इसके प्रणेता कल्हण पंडित हैं। इस ग्रन्थ में कही कही तो तिलस्मातों और चमत्कारों की खूब ही चर्चा की गई है और यही ग्रन्थ का जीवन है। अस्तु संस्कृत कवियों की यह पुरातन रीति है, अतएव यह क्षम्य है।

पानी की सतह पर डोंगी नाच रही थी। वह एक विशाल मैदान के पास पहुची, जो चारों ओर से पहाडियों और झाडियों से आवृत्त था, इसी कारण उसकी शोभा दिन दूनी और रात चौगुनी हो रही थी। माणिक को इस भूमि के देखते ही इतना आनन्द हुआ कि वह एकाएक उठ बैठा और अपने मन के उद्गार प्रकट करने लगा, "अहाहा, कैसा रमणीय स्थान है! यदि ईश्वर मुझे धन दे तो मैं यहाँ पर एक स्कूल की स्थापना करूँ और बालकों को उचित शिक्षा दिलाऊँ। आधी मील की दूरी पर एक कन्या पाठशाला भी स्थापित करूँ और चतुर्दिक एक चहार दीवारी भी उठवा दू। स्थापित पाठशाला में

मैं धर्म के झगड़ों को छूने तक नहीं दूँगा। संस्कृत और अरबी की शिक्षा को तो मैं घर से पहिले ही विदा दे दूँगा। जिसको धर्म की शिक्षा के झगड़ों में पड़ना हो और पड़े हुए कराहना हो उनको चाहिए कि वे अपना दूसरा रास्ता देखें। मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि फारसी दरवाजे के भीतर पैर भी नहीं रखने पायगी। क्योंकि अब इन भाषाओं से बेड़ापार नहीं होने का है। इनके बिना हिन्दू-मुसलमान वा पारसी किसी की भी गाड़ी रुकी नहीं रह सकती। आरम्भ ही से अंग्रेजी भाषा की बाँह पकड़ना अधिक लाभकारी प्रतीत होता है। प्रारम्भिक और मिडिल की परीक्षाओं का तो मूलोच्छेद कर डालूँगा। भूगोल इतिहास, गणित, तथा रेखा गणित सब की शिक्षा अंग्रेजी में दूँगा। दो बोर्डिंग हाउस (छात्रालय) की स्थापना करूँगा। एक में विद्यार्थी और दूसरे में शिक्षकों के रहने की व्यवस्था करूँगा। बालकों के लिए एक दाई रक्खूँगा, जो माता की तरह सब बालकों को पालेगी। बड़ों के निवास की देख रेख का काम एक अंग्रेज निरीक्षक के हाथ में दे दूँगा। शारीरिक शक्ति के वृद्ध्यर्थ एक विशेष प्रयोगशाला और अखाड़ा खोलूँगा।"

श्री प्रवासिनी ने ताना मारते हुए कहा, 'क्यों नहीं, अब भी आगे पढ़ो नहीं सूझेगी। क्या हिन्दू लोग अपने लड़कों को वहाँ भेजेंगे? उनको तो अपने घर के झगड़े, और उनके लड़कों को नारी के कपड़े पहिने गुड़वा गुड़िया के विवाह आदि से ही कहाँ फुरसत कि वे अपने लड़कों को आप की पाठशाला में भेजें?'

"शेख चिल्ली के विचारों में गोते खाते हुए माणिकचन्द्र ने कहा। "झखमार कर वे स्वयं भेजेंगे। मास्टर भी मैं अँग्रेज ही रक्खूँगा, जिसमें उन लोगों का उच्चारण भी शुद्ध हो। अल्पशिक्षितों को तो मैं मुफ्त में भी अपने यहाँ न रक्खूँगा।"

पन्द्रहवाँ प्रकरण

द्वेषाग्नि

संसार में जितनी पीली और चमकती हुई वस्तुएँ हैं सब सोना ही नहीं है, श्वेत वस्तु रूपा नहीं है और मनुष्याकार सब व्यक्ति मनुष्य ही नहीं हैं, कितने कवियों का यह खास अभिप्राय अक्षरश: सत्य है। यदि हम ध्यान से देखें तो एक एक पैर पर इसका अनुभव इस संसार में होता है। कवि शिरोमणि और ससार के पूर्ण अनुभवी श्री भर्तृहरि का "येतु घ्नान्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।" यह महावाक्य हमको एक एक क्षण पर, पद पद पर याद आता है। इस समय हमें भी वैसे दो महापुरुषों—विघ्न सन्तोषी सज्जनों—के साथ परिचय करना है। चलिए उनको भी देखें।

यात्रा में ज़र ने अपने साथ दूसरे दो पारसी युवकों को भी ले लिया था। ये दोनो उसके दूर के सम्बंधी और इस समय एदलजी के नैाकर थे। एक का नाम अरदेशर विलायती था और दूसरे का नाम पेस्तनजी पस्ताकिया था। अरदेशर की उम्र लगभग २५ वर्ष की थी। दिखाव में वह एक पूरा यूरोपियन मालूम पडता था। इसी से इसका 'विलायती' नाम पड़ा था। यह बम्बई विश्वविद्यालय का एक ग्रेजुएट था। पेस्तनजी विचारा मेट्रिक ही पास था। एफ़ ए० में चार बार माथा मारने पर भी पास न हुआ। अवस्था भी तीस तक पहुच चुकी थी, पर अब भी इतना शऊर नहीं आया था कि "आठछठे" कितना हुआ जल्दी बता सके। दोनों अपरिचित स्वभाव के थे। इनमें आपस में खूब बनती थी। पर दूसरो के साथ तो

इनके सदा बारहवें चन्द्रमा रहते। जब से माणिक पदलजी के यहां रहा और इसने अपने मालिक तथा देवी समान मालिक की बेटी की कृपा प्राप्त की, तब से यह उनकी आखों में खूब खटकने लगा। परन्तु भले पदलजी के सामने उनका कोई चारा न लगता। जबसे काश्मीर की सैर मे डाक्टर वालों ने माणिक को अपने साथ नाव में बैठाया और अपनी गाडी में साथ घूमने ले जाना और अरदेशर तथा पेस्तन को नौकरों की नाव या गाडी में बैठने का हुक्म दिया तब से तो इनकी क्रोधाग्नि और द्वेषाग्नि और भी भभक उठी। उनकी मानसिक कुढन की कोई दवा न थी। जिस समय माणिक अपने स्कूल सम्बन्धी विचार व्यक्त कर रहा था, उस समय इन दोनो में दूसरी नाव पर इस प्रकार बातचीत हो रही थी।

अरदेशर-"क्या कहें न पेसी, इस बुड्ढे की अक्ल पर पत्थर पड गये हैं। न मालूम सब जरथोस्ती मर गए जो अब यह इस यहूदक हिन्दू पर अधिकाधिक प्रेम दिखाता है। इस लडकी के भी कौतुक मुझे कुछ अच्छे नही मालूम पडते। शैतान की औलाद इस माणिक ने न जाने कैसा जादू बाप बेटी पर कर दिया है कि वे इसकी मुट्ठी में हो गए हैं, यहाँ तक कि वह सेठ की गाडी में और सेठ के घर में मालिक बनकर बैठे और हम लोग नौकरों की तरह रहें। धिक्कार है! क्या नौकरी की आबरू खोने के लिये? अब हम लोगों की इज्जत ही क्या रही? सच कहना पेसी।"

पेस्तन,"एदू! मुझे तुमसे कहीं अधिक इस बात का ख्याल है, पर किसने कहा और किससे नहीं। किसी भी प्रकार से इस शैतान का पैर अपने घर में से निकले, ऐसी कोई चाल चलनी चाहिये।"

पेस्तन पदल जी की दूकान का पुराना अनुभवी आदमी था। अरदेशर भी बी० ए० पास था। इन दोनों को सौ सौ रुपये माहवारी मिलते थे। परन्तु चिच रे माणिक को एम० ए० पास होते हुए भी कुल बीस रुपए मिलते थे। इनको उस से द्वेष का कोई विशेष कारण तो था ही नहीं, परन्तु अपनी दुर्जनता दिखाने के लिये, पदलजी और जर के माणिक पर अधिक प्रेम दिखानेपर ये उससे द्वेष करते। दुर्जनोंकी महिमा गाते हुए एक कवि ने कहा है,"मन में करुणा न होनी, कारण विना दूसरों के साथ विग्रह करना, परधन और पर नारी की इच्छा करनी,अपने इष्ट मित्र या बन्धुओं की वृद्धि को देख न सकना,आदि गुण दुर्जनोंमें नैसर्गिक रीति से वास करते हैं।" इस वाक्य में कितनी सत्यता है यह अरदेशर और पेस्तन जी के उदाहरण से पाठकों को प्रत्यक्ष हो जायगा। पदल जी, बैरामजी जर और डाक्टर वाछा के दिल में जितनी उदारता नजर आती है उतनीही अनुदारता और असहिष्णुता अरदेशर और पेस्तनजी के मन में समाई हुई है। पाठकों के लिये यह कोई नई बात नही है। पारसियों में जितनी उदार, दानी और परमार्थियों की विपुलता है, उतनी ही मिथ्याभिमानी, अपने आगे किसी को कुछ न समझने वाली, द्वेषी, और कृपणों की न्यूनता नही है। गाँव में गोशाला होनी ही चाहिये। पर खेद इतना ही है कि इस वर्ग के लोग, पारसियों के अङ्गरेजी पढे लिखे नवयुवकों में अधिक पाये जाते हैं। अङ्गरेज अपने को नीचा मानते हैं और उसके विरुद्ध पुकारते हैं। वे दूसरों को भी नीचा मानने में जरा भी आनाकानी नहीं करते। उनकी स्थिति ठीक ऐसी ही है जैसी लडकी को कहे और बहू को कान हो।"

अरदेशर और पेस्तन ने माणिक की बुराई करने में कोई बात उठा न रक्खी, पर जब तक ईश्वर, एदलजी और जर की उस पर कृपा दृष्टि थी तब तक उनका कुछ भी किया न हो सका।

सोलहवां प्रकरण

जापान और उसका इतिहास

अब हम जापान की तरफ मुड रहे हैं, अत उस देश के इतिहास का यहाँ कुछ दिग्दर्शन कराना आवश्यक होगा। यद्यपि हमारी वार्ता का जापान के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि उसकी कुछ विवेचना करने की तीव्र इच्छा को मैं रोक नहीं सकता, आशा है कि विज्ञ पाठकगण मुझे इस साहस के लिये क्षमा करेंगे। इतने पर भी जिन पाठकों को इतिहास से बिकुल नफरत हो वे थोडे पन्ने उलट डालें और जहाँ से वार्ता का सम्बन्ध मिलता है वहीं से बाँचना शुरू करें।

जापान एक द्वीपपुञ्ज है, यहाँ के पर्वत विशेषतर ज्वालामुखी हैं। इसी कारण यहाँ बहुधा भूकम्प आदि का जोर रहता है। ईसवी सन के २८६ वर्ष पूर्व एक ऐसा भारी भूकम्प आया था कि यहाँ एक स्थान पर भूमि ऊपर को उठ आई थी, जो आज कल फूजी पर्वत के नाम से विख्यात है। इसकी ऊँचाई १२००० फीट से भी अधिक है। दूसरे स्थान पर पृथ्वी के नीचे धँस जाने से एक तालाब बन गया था, जिसको अभी भी लोग 'बीवा तालाब' के नाम से पुकारते हैं। इस तालाब की लम्बाई ६०

मील और चौडाई २० मील है । इस देश में छोटी छोटी वेग से वहने वाली नदियाँ अनेक हैं। यहाँ जङ्गल भी बहुत हैं।

जापान में सोना, चाँदी, तावा, लोहा, कोयला तथा पत्थरों की असंख्य खानें हैं। इस कलाकौशल और यंत्र-विद्या के जमाने में जापान ने कोयले और लोहे की खानें की बदौलत ही इतनी उन्नति कर पाई है । कुछ काल पूर्व, जापानवाले स्टीमरों को विलायतवालो से ख़रीदते थे और उनको बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे। एक स्टीमर के आते ही कितने साहसी जापानियो ने क़ूद कर अपने हाथो ही उसे चलाने का प्रयत्न किया था । जब वह चलने लगा तो उसको खड़ा करना कठिन हो गया था । अन्त में बायलर की अग्नि खतम हो जाने पर वह आप ही आप खड़ा हो गया । एक वह समय था और एक समय आज का है कि जो चाहे सो पोर्ट आर्थर पर खड़ा हो कर जापानी स्टीमरों के समूह को देखे । उसमें एक छोटे से छोटा लकड़ी का टुकड़ा भी जापानी भूमि का ही निकलेगा। उसका चलाने वाला या उसमें काम करने वाला प्रत्येक आदमी आप को जापानी ही मिलेगा। सभ्य संसार जापान की स्टीमरों को देख कर आश्चर्यित होते हैं।

इस समय जापान की जन संख्या ५२२०१००० से भी अधिक है । मनुष्य-गणना करने की रीति जापान में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इतिहास देखने से यह पता लगता है की ईसवी सन् से ८६ वर्ष पूर्व, कर लगाने के लिये मनुष्य गणना की गई थी। जापान देश के लोग भी बहुत वर्षों तक अभागे भारतवर्ष की ही तरह अन्य देशो के लोगो को राक्षस समान समझते थे । यहाँ तक कि उनसे भेंट करने में भी बहुत सकुचाते थे। वे स्वयं परदेश नही जाते थे और पर

देशिरों को भी अपने यहाँ नहीं आने देते थे। जापान की भूमि के उपजाऊ होने के कारण उनकी प्रत्येक आवश्यकता वहीं पूरी हो जाती थी। सब से पहिले मार्कोपोलो नाम के एक यूरोपियन ने सन् १२६५ में जापान का थोडा वृत्तान्त लिखकर प्रकाशित किया था।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में व्यापार और साहस में प्रसिद्ध, पुर्तगाल वालों ने जापान से व्यापारिक नाता जोडा। उनकी देखा देखी सुफेन (स्पेन) के लोग आए और फिर डच लोगों ने भी अपना हाथ बढाया। एक शताब्दी के बाद डच लोगों ने हालैंण्ड के बादशाह के पास पत्र भेजा कि एक बडी सेना भेज कर जापान के बादशाह को गद्दी पर से उतार देना चाहिए जापानियों को इसका पता लग गया और सन् १६२४ में चीन और डच वालों के अतिरिक्त अन्य सब परदेशी जापान छोडने के लिये बाधित किए गए। इस से डच वालों को बहुत नीचा देखना पडा। नागासाकी नाम के एक छोटे टापू में वे कैद कर दिए गए और उनकी देख रेख के लिये जापानी सिपाहियों का सख्त पहरा बैठाया गया। डच प्रतिनिधि को वर्ष में एक बार जापान के बादशाह के सम्मुख उपस्थित होना पडता था। उस समय में जापान का बादशाह स्त्रियों की तरह सदा परदे में रहता था। उस डच प्रतिनिधि को जापान के राजा की मर्यादा कायम रखने की लिये उनको साष्टाग दण्डवत्-प्रणाम कर के घुटने के बल बाहर आना पड़ता था। जापानियों ने दो सौ वर्ष तक इस प्रकार अपने देश का द्वार विदेशियों के गमनागमन के लिये बन्द रखा। अन्त में सन १८५३ की चौदहवीं जुलाई को अमेरिका के प्रेसिडेंट का पत्र लेकर कामोडोर पेरी नाम का एक सरदार जापान के बादशाह के पास आया।

अमेरिका वाले यह चाहते थे कि उनके जो जहाज जापान की तरफ जायँ, उनसे जापान वाले मित्रभाव रखें और चीन से अमेरिका जाने वाले जहाज जापान में कोयला पायें। इसी के लिये उन्होंने कामोडोर पेरी को जापान भेजा था। पेरी को जब यह पता लगा कि राजा और अन्य देश के दूतों का पत्र-व्यवहार नागासाकी के सरदार के द्वारा ही हो सकता है, तब वह एक सर्दार को पत्र दे कर चला गया और जाते समय यह कह गया था कि इस पत्र का उत्तर लेने मैं एक वर्ष के बाद आऊंगा। जापान के राजा ने जब यह बात सुनी तो वह बहुत चिन्तातुर हुआ। उसने सबो को यह आज्ञा दी कि सब सूर्यदेव (अमतरेसु) से प्रार्थना करें कि वे विदेशियों को अपने से दूर ही रखें। दूसरे वर्ष पेरी जहाज लेकर आया और उसने जापान में थोड़ी दूर तक रेल और तार का प्रचार किया। यह देख कर जापानी जितने आश्चर्यित हुए उतने ही प्रसन्न भी हुए। फलतः अमेरिका वालों के लिये उन्होंने दो बन्दर खोल दिए। यह देख कर यूरोप के दूसरे राजाओं ने भी अपने दूत भेजने शुरू किए। सन् १८६८ में अंग्रेजों ने लार्ड एलीन को जापान भेजा। जापानी सरकार ने इन लोगों के लिये भी कई बन्दर खोल दिए और उनके एक प्रतिनिधि को जापान में रहने की आज्ञा भी दे दी।

पेरी जब पहिले पहिल जापान में आया था, उस समय वहाँ के राजा तथा वहाँ की प्रजा सब विदेशियों को अपने देश में आने देने के और उनको अधिकार देने के सर्वथा विरुद्ध थे। उन लोगों का यह कहना था कि हमारा देश तो देवताओं का निवास स्थान है, यहाँ म्लेच्छों का क्या काम है? खैर, प्रत्येक देश में किसी नियत संख्या में दूर दर्शी लोग तो होते ही हैं, उसी प्रकार जापान भी उनसे खाली न था—यद्यपि उनकी संख्या

बहुत कम थी, तथापि समय के अनुसार उनके उपदेश विशेष लाभकारी सिद्ध हुए। इन थोड़े से बुद्धिमानों ने यह अनुमान कर लिया था कि इन नवागन्तुक परदेशियों का आगमन लाभकारी होगा। नवयुवकों ने भी उनके कथनानुसार उसी समय से विदेश यात्रा आरंभ कर दी। इस से जापान में भयंकर कोलाहल मच गया। जो 'लकीर के फकीर' थे वे विदेशियों के आगमन और जापानी नवयुवकों के विदेश-गमन से बहुत खिन्न हो गये थे। उनकी खिन्नता की मात्रा यहाँ तक बढ़ गई थी कि उन्होंने प्राय: पचास विदेशियों को अपनी क्रोधाग्नि में बलि चढ़ा दिया और यूरोपियन प्रतिनिधियों के कितने घर गोला बारूद से उड़ा दिये। जो जो जापानी विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त कर के आते थे उनको वे घृणा और धिक्कार की दृष्टि से देखते थे। जो जापानी पहिले विदेश से शिक्षा प्राप्त कर के आए थे, उन्होंने जापान के दिन फेर दिये—ऐसा कहा जाय तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी। गो कि डाक्टर और बारिस्टर होना पाप नहीं है, पर न जाने क्यों अपने देशी भाई हाथ धो कर इसके पीछे पड़ गए हैं। इस से हमारे देश की उन्नति कभी नहीं हो सकती जापानियों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है उसी प्रकार की शिक्षा से लाभ हो सकता है।

जापानी अभी तक कामोडोर पेरी के नाम का मानपूर्वक उच्चारण करते हैं। चरू की खाडी के पास के एक गांव में पेरी का स्मारक बनाया गया है और जापानी लोग पेरी को ही अपनी उन्नति का हेतु मान उसकी इज्जत करते हैं।

जापानियों के पुराण के अनुसार जापान का बादशाह भारतवर्ष के प्राचीन राजाओं की तरह सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ है। परन्तु वे जिस प्रकार अंग्रेज़ चन्द्र को स्त्रीलिंग

मानते हैं, सूर्य को देव न मानकर देवी की तरह पूजते हैं उनके मत के अनुसार पहिले सात देवता स्वर्ग से आकर पृथ्वी पर बसे थे। ये ही अन्य सब देवताओं के जनक कहे जाते हैं। वर्तमान राजा भी उसी वंश का है। इन लोगों के हिसाब से प्रथम राजा जिम्मू सवी ईसन् के ६६० वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसी समय से इनके संवत्सर का आरम्भ हुआ है। इस समय ईसवी सन् १९२२ चलता है और उनके सवत्सर की संख्या २५८१ है। तब से आज तक जापान के सिंहासन पर १११ राजा और ११ रानियां बैठीं। इन राजाओं और रानियों में कितनों ने १४१ से १४३ वर्ष तक की आयु भोगी है। यह जापानियों की दन्त कथाओं के आधार पर कहा जाता है।

वर्तमान जापानी लोगों का मूल निवास-स्थान यह नहीं है। यहां के मूल निवासी आइनो जाति के लोग थे। वे सर्वथा जंगली ही थे। ई० सन् से पूर्व २६० से २१६ तक आइनो जाति वालों पर दक्षिण दिशा से लगातार चढ़ाइयाँ होती रहीं। इन चढाई करने वालों में चीनी, मलायन, मयपूयन और कुछ कोरियन थे। अन्त में इन सबों की मिल कर एक जाति बन गई जो अब जापानी के नाम से पुकारी जाती है। जापान शब्द भी चीनी भाषा का है। उसका अर्थ 'उगता हुआ सूर्य' (the rising sun) होता है। वहाँ के लोग अपने देश को "दाइनियन्न" अथवा 'निपन्न' तथा 'निहन' भी कहते हैं।

अनेक लोगों का यह अभिप्राय है कि जापान की सभ्यता नई है। उन्होंने यह सभ्यता अंग्रेजों से प्राप्त की है। यदि सच पूछा जाय तो जापानी लोग प्राचीनकाल ही से सभ्य चले आते हैं-ये कुछ नवीन सभ्य नहीं हैं।

सत्रहवां प्रकरण

जापान तथा उसका इतिहास (अनुसधान)

जापान के बादशाह मिकाडो कहे जाते हैं। इस शब्द का अर्थ 'बड़ा फाटक' है। जापान के बादशाही प्राचीन काल ही से सादे वस्त्र धारण करते आये हैं। उनका भोजन भी सादा ही होता है ईसवी सन् ११६० से जापान में दो प्रकार के राजा राज करने लगे। दूसरे प्रकार का राजा 'शोगन' के नाम से लोगों में प्रसिद्ध था। यह (दो राजा होने का प्रथा) सन् १८६७ तक रही। राजा को वे लोग देव समझते थे। रानी और प्रधान के अतिरिक्त किसी को भी उनका दर्शन नहीं हो सकता था। यदि किसी को किसी विशेष कारण से उनसे मिलने की आज्ञा मिलती, तो राजा स्वयं खर और पर्चे की गद्दी पर पर्दे में बैठ कर बात चीत करता। था राजा भूमि पर पैर नहीं रखता था। उसके उतारे हुये कपड़े जला दिए। जाते थे। जिस थाली में राजा एक बार भोजन कर लेता था वह दूसरी बार काम में नहीं आती थीं। राजा का सत्य पद तो 'मिकाडो' का ही था। तथापि दूसरे राजा के होने का यह कारण है कि दसवीं शताब्दी के अन्त में पूर्व दिशा के जंगली लोग टोली बांध कर धावा मारने लगे। इन लोगों को दबाने के लिये बड़े बड़े सरदार नियुक्त किए गए थे। ये 'टाइटरो' और 'मिनमोटा' के नामों से प्रसिद्ध थे। ये सरदार बड़ी बड़ी पदवियां प्राप्त करने के लिये आपस में चढ़ाव ऊपरी करने लगे। दसवीं शताब्दी के अन्त में इस विग्रह ने बड़ा ही भयंकर रूप धारण किया। राजा

से होकर न निकले। सीतला से बचने के लिये टसी रखने की रिवाज निकाली गई। फौज के अफसर तथा राज कार्मचारियों को यह आज्ञा दी गई कि वे ढीले-ढाले कपडे पहिनना छोड़ें और पश्चिमियों की तरह कपडा पहिना करें। आज्ञानुसार उन लोगोंने घरमें पुरानी चाल के और कामकाज पर अँग्रेजी कपडे पहिनना शुरू किया। सिपाहियों की वर्दियां भी अंग्रेजी ढंग की बनाई गयीं।

राज्य की लगाम राजाने अपने हाथ में ले ली। अपनी सहायता के लिए राजाने तीन राज-मन्त्री नियुक्त किये और एक काउन्सिल स्थापित की। सन् १८७५ ई० में सब प्रान्त के गवर्नर टोकियो में एकत्र हुए और सार्वजनिक हितकी चर्चा छिडी तीन वर्षके बाद भिन्न भिन्न प्रान्तों में अलग अलग सभाएं स्थापित की गयीं और सब गवर्नर अपने अपने प्रान्त के टैक्स और मालगुजारी आदि विषयोंपर आपही विचार करने लगे। जो लोग लिख पढ सकते थे वेही सभा के सभासदों के चुनाव के समय अपना मत दे सकते थे। साथ ही यह शर्त भी थी कि मतदाता कमसे कम १५) रुपये कर देता हो। प्रत्येक मतदाता को एक कागज के टुकड़े पर अपना नाम तथा जिसके लिये मत दिया गया है उसका नाम लिख, मुकर्रर किए हुए बक्स में उसे छोडना पडता था। प्रान्तिक राज सभाओं के स्थापित करनेका यह उद्देश्य था कि जनता क्रमश राजसभा (पार्लमेन्ट) द्वारा शासित करने के योग्य हो जाए। पार्लमेन्ट की स्थापना करने की प्रतिज्ञा मिकाडोने सन् १८६८ में ही की थी। मिकाडोने जब देखा कि लोग प्रतिनिधि सभा-द्वारा शासन करने योग्य होते जाते हैं, तब उसने सन् १८८१ में यह सूचना निकाली कि सन् १८९० में मुख्य राजसभा (पार्लमेन्ट)

की स्थापना की जायगी इस पार्लमेन्ट में प्रजा की ओर से प्रतिनिधि भेजे जा सकते हैं और इंग्लैंड की तरह इस सभा के दो विभाग होंगे। दोनों विभागों की पृथकता के लिये राजाने धनी और विद्वानों को लार्ड आदिकी पदवी प्रदान करना शुरु की। सन् १८८५ में मन्त्री आदि का पुराना पद उड़ा दिया गया और केबिनेट अर्थात् राज मन्त्रियोंके एक काउन्सिलकी स्थापना की गई। व्यर्थ के ८००० अधिकारी पद रद्द कर खर्च कम कर दिया गया। नवीन पद पर भी वेही नियुक्त हो सकते थे जो विद्या, ज्ञान और बुद्धि बल के कारण प्रख्यात हो चुके थे। सन् १८८५ के फरवरी मासमें न्यायालय स्थापित किए गए और न्यायाधीश तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इसके पूर्व वहाँ न्यायालय न थे। और न नियमानुसार न्याय ही होता था। एक फ्रांसीसी ने नियम बनवा कर प्रयोग में लाए गए। जब यूरोपियन वहाँ आ कर रहने लगे तब वे जाप नी न्यायाधीशों के समक्ष पड़े रहने में विरोध करने लगे। शिक्षित जापानियों ने इसकी भी व्यवस्था कर दी। अनेक यूरोपियन न्यायाधीश नियुक्त किए गए। इसी वर्ष दूसरे सम्प्रदाय वालों को पीड़ा देने की, जनता को चिट्ठियों के पढ़ने की, बोलने और लिखने की रोक आदि सब अनाचार दूर कर दिए गए। यह सब फेरफार इतनी शीघ्रता से हुआ कि लोग इस परिवर्तन को 'भूकम्प' के नाम से पुकारते हैं।

अठारहवाँ प्रकरण

जापान मे पार्लामेन्ट

जापान में सन् १८९० में पार्लामेण्ट की भी स्थापना हो गई। इसके दो विभाग हैं–एक तो उन लोगों की जो पीढ़ियों से प्रतिष्ठित और विख्यात हैं। ये जीवन पर्यन्त के सभासद होते हैं।

सभा के सभासद तीन प्रकार के होते हैं, एक राजघराने के, दूसरे वे जो विद्या, बुद्धि और ऐश्वर्य के प्रताप से राजा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, और तीसरे वे जो जागीरदारों की तरफ से नियुक्त होते हैं। इन सभासदों की अवस्था तीस वर्ष से कम की न होनी चाहिये। ईसाई सभासद(क्रिश्चियन) भी इसमें सम्मिलित हैं।

आरम्भ में इस नई शासन प्रणाली से लोगों ने उकता कर एक घार उपद्रव मचाया था। एक वर्ष तक तो लोगों ने राजा के सब प्रस्तावों का विरोध किया। सन् १८९१ में राजा ने पार्लमेण्ट बन्द करने की घोषणा की दूसरी बार जब सभासदों का निर्वाचन होने लगा तब फिर लोगों ने उपद्रव मचाने की चेष्टा की। परन्तु इसके बाद कोई उपद्रव नहीं हुआ है। सब काय शान्ति पूर्वक हो रहा है।

व्यापार, उद्योग, तथा जल, पुलिस, सेना, शिक्षा आदि विभागों का प्रबन्ध अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। इस विषय पर यदि अलग लेख लिखा जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है।

जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जापानियों के

साथ अङ्गरेजों का सम्बन्ध हुआ, उसी प्रकार उससे भी एक शताब्दी पूर्व भारतवर्ष से भी उनका संयोग हुआ था। अब यह प्रश्न उठता है कि जापानी लोग उन्नति के शिखर पर पहुंच गए और क्यों भारतवासी जहाँ के तहाँ हो सड़ रहे हैं ? मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इसके दो कारण हैं। एक तरफ सोनार दोषी है तो दूसरी ओर सोने का भी दोष है। कुछ तो गोरांगों की भारतवर्ष को जहाँ का तहाँ रहने देने की नीति और कुछ भारतवर्ष की "रुपीर की फकीरी" है। जापान स्वतन्त्र और भारत परतन्त्र है। जापान के कन्धे पर विदेशियों का जूआ स्वप्न में भी नहीं पड़ा, और भारतवर्ष के हजारों वर्ष से गुलामगिरी का भार ढोते ढोते घट्ठे पड़ गये हैं। जापानियों को यदि सामना करना पड़ा तो अपने ही देशबन्धुओं का। भारत को सन्ताप पहुंचाने में उसकी सन्तति का भी कुछ कम भाग नहीं है, तिस पर विदेशी लुटेरों की चाल, राजा और व्यापारियों की दुर्नीति ये लोग विदेश से जो कुछ सीख कर आते हैं उसका खुले तौर से प्रयोग कर सकते हैं किन्तु यदि भारतवासी गोला बारूद बनाने की कोशिश करें तो उस को आम तौर से सजा दी जाय। जापानी स्वदेश की वस्तुओं से जहाज बनाता है, तो सर्कार उसकी सहायता करती है, यदि भारत ऐसा करे तो सरकार उस पर कर बैठा दे। केवल काले गोरे रङ्ग होने के ही कारण इतना उलट फेर हुआ है। अपनी व्यथा किससे कहें ? जापानी विदेश से शिक्षा प्राप्त करके आयें तो उनको ऊँचे ऊँचे पद मिलते हैं, भारतवासी यदि शिक्षित हो जाँय तो उनको (रङ्ग के कारण) अर्द्धचन्द्राकार मिलता है। जापान के पदाधिकारी स्वदेशी (जापानी) ही होते हैं परन्तु भारतवर्ष के अधिकारी विदेशी होते हैं। जापान

में स्वदेश की दशा सुधारने के लिये सभा हो तो पुलिस उसमें भाग लेती और मदद करती है, भारत में यदि ऐसी सभा की जाय तो पुलिस हाथ पैर जकड देती है । जापान में राजद्रोही देशद्रोह कहाता है, भारत में देश द्रोह भले करे, पर राजद्रोहही के नाम ही बडा घर तैयार है । जापान की व्यवस्था तो देश के अनुकूल है पर भारतकी व्यवस्था राजा के अनुकूल है । इस प्रकार की अनेक कच्चाइयाँ तो सोनार की हैं, अब सोने की खराबी देखिए ।

जापानी यदि विलायत हो आए तो देशबन्धु उनकी दावत करते हैं और अच्छे अच्छे पदार्थ उनको खिलाते हैं और भारतीय यदि विलायत हो आये तो लोग उनसे अदावत करते हैं यहाँ तक कि यदि वह पंगत में बैठ कर भोजन करता हो तो लोग वहीं से उसको अर्द्ध चन्द्राकार प्रदान करेंगे । जापानी परदेश से हुनरकला सीख कर अपने देशी बन्धुओं को सिखाता है, और भारतीय परदेश से जो कुछ सीख आता है उसके जरिये वह, अपने देश से भीख मँगवाता है । जापानी अपने देशोद्धार के लिये परदेश जाते हैं और भारतवासी मौज और शौक के लिये परदेश जाते हैं । जापानी परदेश से नम्रता सीख आते हैं, और भारतवासी अपनी बडाई कराना सीख आते हैं जापानी परदेश में स्वदेश को नही भूलते, और भारतवासी विलायत में स्वदेश की कुछ भी परवाह नही करते जापानी परदेश से लाने में तत्पर रहते हैं, जब कि भारतवासी परदेश में दाता बनते हैं । जापानी अपने पूर्वजो पर श्रद्धा रखते हैं किन्तु भारतवासी अपने बाप दादे को गधे से भी बदतर समझते हैं जापानी अपने धर्म के कट्टर हैं, जिस किसी के साथ बैठ कर खाने में अडचन नही समझते । भारतीयो का

धर्म कच्चे सूत के तार की तरह है । खाते पाते यदि दूसरी विरादरी वाला छू ले तो वह तुरन्त टूट जाता है । जापान का राजा परदा प्रणाली को त्याग बाहर निकल आया, पर भारत वासी की स्त्री परदा त्याग दे तो उसका पति उसकी नाक ही उड़ा दे । शोगन ने देशोन्नति की वेदी पर राजपद को भी मिकाडो के हवाले कर दिया, पर भारतवासी जाति की सरदारी के ऐसे तुच्छ अधिकार के लिये जान तक लेने-देने को तैयार हो जाते हैं । जापानी देशबन्धुओं से मान पाना श्रेयस्कर समझते हैं, और भारतवासी राजा ही से मान पाने के लिये स्वाहा होने जाते हैं । जहाँ जापानी देश के लिये जान हथेली पर लिये घूमते हैं, वहाँ भारतवासी देश को रसातल पहुचाने के लिये ही सदा कमर कसे खड़े रहते हैं । जापानी जहाँ जायगे अपने देश-धर्म को नहीं छोड़ेंगे किन्तु भारतवासी त्रिकाल में भी देश और धर्म का ख्याल नहीं करते ।

इन सब बातों को एक तरफ रख, अब जापानी धर्म पर एक दृष्टि डालनी चाहिये क्योंकि अपनी वार्ता से उसका भी कुछ सम्बन्ध है । सभी जापानी बौद्ध धर्म के मानने वाले नहीं हैं । बहुतों का यह मत है कि बौद्ध धर्म ही जापानियों की उन्नति का बाइस है । पर बात यह नहीं है, जापानियों का बौद्ध से भी प्राचीन धर्म शिण्टो है । इस धर्म की कोई पुस्तक या शास्त्र नहीं है । इस धर्म की मुख्य बात राजा की पूजा है क्योंकि वे सूर्य-वंश में उत्पन्न हुए हैं जापानी सभ्यता का मूल चीन है, और चीनियों का प्राचीन धर्म पितृ श्राद्ध है । इस धर्म पर बौद्ध धर्म कुछ भी प्रभाव न जमा सका-यहा तक कि जिन्होंने ईसाई मत स्वीकार कर लिया है वे भी श्राद्ध किया से नहीं चूकते । जापान पर कनफ्युशियस, बौद्ध और ईसाई तीनों धर्म की पुट

चढी है, पर पितृ-श्राद्ध की प्रथा पर कुछ भी अघात नहीं पहुंचा है। सुशिक्षित जापानी अपने पूर्वजों के स्मारक के आगे नित्य शिर झुकाते हैं। प्रत्येक घर में पूजा के दो स्थान होते हैं। एक 'कामीदान' और दूसरा 'बुतसुदान' कहलाता है। 'कामीदान को सूर्य देवी (अमतरेसु) का पवित्र स्थान कहते हैं। इसकी पूजा का कारण यह कहा जाता है कि जापान के सम्राट् इसी से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे स्थान पर, जिसको 'बुतसुदान' कहते हैं, पित्रों के नाम, उनकी अवस्था और मरण-तिथि लिखी रहती है। इस स्थान की सेवा नित्य तो होती ही है, पर महीने में एक दिन और वर्ष में तीन दिन १३ जूलाई से १६ तक विशेष रूप से होती हैं। इस धर्म के तीन मन्दिर हैं। एक आइसी में 'दाइजिंग' नामका, दूसरा राज महल में 'काशी कोडोकोरो' नाम का और तीसरा 'कामादाना' जो प्रत्येक घर में होता है। प्रत्येक जापानी 'दाइजिंग' और 'काशी कोडोकोरो' की यात्रा जीवन में एक बार करना अपना धर्म समझता है। राजमहल में तीन डेरे हैं—एक में एक आरसी रहती है जो सूर्यदेवी का स्थानक (प्रतिनिधि) माना जाता है, दूसरे में राजा के पूर्वज और तीसरे में भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा होती है। जापान में भी सहस्र भुजावाली देवी है, जिसके मुख भी अनन्त हैं। 'इसको 'कन्नानन अर्थात् दया की देवी कहते हैं।

बौद्ध धर्म जापान में इस प्रकार प्रचलित हुआ कि सन् ६५० ई० में कोरिया के राजा ने मिकाडो को एक बुद्ध की मूर्ति तथा बौद्ध धर्म की अनेक पुस्तकें भेंट कीं। प्रधानों ने अन्य धर्म की मूर्ति और ग्रन्थ रखनेका विरोध किया इससे मूर्ति एक दरबारी को देदी गयी। उसने एक बौद्ध मन्दिर की स्थापना

की। कितने दिनों के बाद देश में बडी भारी महामारी फैली। लोगों ने इसका कारण यह निश्चय किया कि बौद्ध धर्म की स्थापना से ईश्वर क्रुद्ध हुआ है। अत: मन्दिर गिरा दिया गया। इससे देश में इतनी खलबली मच गई कि अन्त में फिर से मन्दिर बनवाना पड़ा। कोरिया से बौद्ध उपदेशक तथा साधु आने लगे और बौद्ध धर्म का इतनी शीघ्रता से प्रचार हुआ कि कई शताब्दियों तक जापान का मुख्यधर्म बौद्धधर्म ही रहा। तथापि शिण्टो धर्म निर्मूल नहीं हुआ था। शिण्टो-देवताओं के साथ में बुद्धदेव भी पूजे जाने लगे। हवा फिर बदली। सैकडों वर्ष के बाद फिर शिण्टो धर्म का ज़माना आया। बौद्ध धर्म का पाया उखड़ गया और शिण्टो धर्म की धाक जमी। कनफ्युशियस मत को भी जिसने थोड़ा बहुत अपना चक्र जमा लिया था, नारियल-सुपारी मिली। टोकियो में का कनफ्युशियस मन्दिर इस समय नुमाइश की तरह काम में आता है।

हमारे मुल्क में जिस प्रकार परमेश्वर के गोती पादरी लोग मुक्ति प्रदान करने आये, उसी प्रकार सन् १५४६ में उनके चरणारविन्द जापान में भी पधारे थे। ईसा के नाम से मुक्ति और दूसरों के नाम से बन्धन इस उपदेश से जिस प्रकार अपने यहाँ के चमार साहब बन जाते हैं, अथवा गोरी चकोरी के पीछे धर्म का शिकार जिस प्रकार खेला जाता है उसी प्रकार जापान में भी फ्रान्सिस जेवियर ने अपना रंग फैलाया। लगभग छ लाख इसके फेर में आ गये। अब लोग चकराये कि क्या यह राक्षस देश भर को हड़प कर जायगा ? इस पर राजा ने यह घोषणा निकाली कि कोई भी विदेशी धर्म प्रचारक यहाँ उपदेश न दे, यदि ऐसा करते हुए वह पकड़ा जायगा तो परलोक भेज दिया जायगा, हज़ारों ईसाई जीते जी आग में

लपेट कर ज्वालामुखी के मुख में स्वाहा कर दिए गये। राजा की आज्ञा थी "कोई भी ईसाई जापान में आने का साहस न करे, यदि ईसाइयों का भगवान भी जो स्पेन का बादशाह है, इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो उसका भी सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।" चार हजार पादरी भिन्न भिन्न प्रान्तों से, पकड़ कर कारावास में रखे गये। सन् १८७० ई० से १८७३ तक यह धर पकड़ खूब हुई थोड़े दिनों के उपरान्त लोगों में विरोध भाव दूर हो गया और ये सब कैदी मुक्त कर दिये गये। फिर हवा का रुख ऐसा बदला कि एक दम भ्रातृभाव ने सबको घर दबाया, यहाँ तक कि सन् १८९० ई० में पार्लमेन्ट के तीन सौ सदस्यों में से, जिन्होंने जापानी नागरिकता स्वीकार कर ली थी, तेरह ईसाई भी थे। उन तेरह सदस्यों में से एक तो सभापति तक हो चुका था।

उन्नीसवाँ प्रकरण

अस्पताल।

आज जापान को एक नदी के किनारे एक तख्ते से बँधा हुआ किसी विदेशी का एक शव मिला है। उसको देखने के लिये बहुत सी जनता एकत्र हुई है। थोड़ी ही देर में एक डोली आयी। उसी में उस शव को रख बड़े अस्पताल में भेज दिया गया। सहायक सर्जन ने अपने बड़े अधिकारी को खबर की। उसने जवाब दिया, "कपड़े उतार कर पेट का पानी निकालो, मैं अभी आ पहुँचता हूँ।" यह कारवाई हो ही रही थी कि वह आ पहुँचा। उसने बहुत छान बीन की, नाड़ी देखी पर कुछ पता न चला।

हरगी धड़कना नहीं था । प्राण हैं या निकल गए यह भी निश्चित नहीं होता था । बिजली की पेटी मँगाकर उससे गरमी दी गयी, मुंह में दवा और ब्रान्डी दी गयी । इस प्रकार बहुत देर तक देख भाल कर, अपने आदमियों को उसकी देख रेख करने की आज्ञा कर के, डाक्टर चला गया । दूसरे दिन नागरिक रोगियों से छुट्टी पा वह फिर उस मृत प्राय शरीर के पास गया । उसकी हालत देख वह फिर उपचार करने लगा । कई बार उसको यह शंका हुई कि यह अभी जीवित है । परराष्ट्र विभाग के सभी एल्चियों को उसने टेलीफोन से खबर दी कि कृपा कर के आवें और बतावें कि यह किस देश का आदमी है । तीसरे पहर सब जुटे । अंग्रेज ने उसका रंग रूप देख कर यह निश्चय किया कि यह अंग्रेज नहीं है, जर्मन ने कहा कि यदि यह जर्मन होता तो इसका सिर इस प्रकार का न होता तुर्की ने यह कहा, यह ईरानी हो सकता है क्योंकि हमारे यहां ईरानी सरकारी-पदाधिकारी हैं, अमेरिका वाले ने कहा यह यहूदी भी हो सकता है, फ्रांसीसी ने यह अनुमान किया कि यह काश्मीरी हो सकता है । साराश यह कि कोई भी छाती ठोक कर ठीक ठीक न बता सका । उसके शरीर पर से उतारे गए कोट पतलून से भी कुछ पता न लगा । अन्त में सब उसके सचेत होने पर यह विषय छोड़ अपने अपने घर गए ।

चौथे दिन उसकी नाडी ठीक ठीक चलने लगी, श्वाँस भी क्रम से चलने लगा । डाक्टर का मन प्रसन्न हुआ कि परिश्रम वृथा नहीं गई । दो दिन और बीतने पर उसने आँखें भी खोलीं और टुकुर टुकुर देखने भी लगा । काजी और साबुदाना भी थोड़ा सा पीया । डाक्टर को इसका परिचय प्राप्त करने को बड़ी खलबली पड़ी थी । इतने पर भी रोगी की जीभ नहीं हिलती

थी–बोलने की चेष्टा करता पर वह बोल नहीं सकता था। हाथ में इतनी शक्ति कहाँ कि वह लिख सके? डाक्टर ने विचार किया कि इस विषय की चर्चा करने से शायद उसकी टूटी फूटी आवाज निकले। अतएव उसने बराबर प्रश्न पूछने आरंभ किए। विदेशी कान से सुन सकता था इस से वह हाँ या नहीं का जवाब सिर हिला कर देता था, कभी कभी वह ऐसी शक्ल बनाता कि उस से साफ जाहिर होता था कि वह इन बातों से ऊब गया है। सुधरे हुए जापानी को तो अंग्रेजी का ज्ञान था ही। बस वह सब बातें उसी भाषा में पूछता। विदेशी भी अंग्रेजी समझता था, पर वह लाचार इतने ही से था कि उसकी जीभ हिलती डुलती न थी, डाक्टर ने उसकी मातृभूमि पूछने के उद्देश्य से सब मुल्कों के नाम लिये। बहुत देरी पर इंडिया के नाम पर उसने 'हाँ' कर सिर हिलाया। इसके बाद डाक्टर ने हिन्दुस्तान का मानचित्र मँगाया और विदेशी का हाथ पकड़ कर उस पर फेरना शुरू किया। बम्बई पर विदेशी ने हाथ रोका और पलक के इशारे से भी अपने को वहीं का रहने वाला बताया। डाक्टर ने उसी दम ब्रिटिश एलची को टेलीफोन द्वारा बुलाया और उनका आदमी उनके हवाले किया। ब्रिटिश एलची ने नियमानुसार डोली मँगवायी और उसको ब्रिटिश लेगेशन में भेज दिया। सरकारी खर्च से उसकी दवादारू होने लगी। दूसरे दिन जापानी समाचार पत्रों में यह ख़बर छप गयी कि किसी डूबे हुए जहाज का एक ब्रिटिश सरकार की प्रजा का आदमी लाइफबोट के एक तख्ते के साथ यहाँ किनारे लगा है, इसका शरीर सुधरता जाता है, पर जबान बन्द है। बम्बई का रहने वाला है, जात बिरादरी का पता नहीं लगा है रूटर के एजेन्ट ने यह समाचार तार द्वारा हिन्दुस्तान में

भी भेज दिया था। यहाँ भी कई समाचार पत्रों में यह सम्वाद छपा था।

अब एक नये अध्याय की ओर चलिए। इस सम्वाद को एक जापानी स्त्री ने पढ़ा जो इंगलेण्ड जाकर अंग्रेजी और फ्रैंच भाषाएं सीख आई थी और जिसको हिन्दुस्तान देखने की भी बड़ी उत्सुकता थी। उसको किसी हिन्दुस्तानी की अर्द्धांगिनी होने की बड़ी लालसा थी, क्योंकि उसने बौद्ध धर्म के लिये तनमन और धन सब कुछ अर्पण कर दिया था। उसकी यही इच्छा थी कि महात्मा गौतम बुद्ध की जन्मभूमि में ही अपना जीवन व्यतीत करूँ। और उसी भूमि में उत्पन्न हुए किसी की दासी बनकर रहूँ। इन विचारों ने उसके मनमें ऐसी गहरी जड़ पकड़ ली थी कि जापान उसको नरक समान दीखता था। जापान में भी लैला-मजनू का एक जोड़ा हो चुका है। घर घर उनके प्रेम की चर्चा और तारीफ होती है। उस जोड़े का नाम गोम्पा जी और कोमराश्की था।

दैव योग से इस स्त्री का नाम भी कोमराश्की था। अतएव वह अपने से पूर्व वालों से किसी कदर भी प्रेमरस में उन्नीस होना नहीं चाहती थी। ठीक है, अंग्रेजी कायदे कानून से सभी अपने अपने मनके मालिक हैं। जब कोई भूला भटका भारतवासी जापान में पहुँचता तो यह उससे मिलती और अपने मनके विचार उससे कहती। पर अभी तक किसी भारत वासी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी ज्यों ही इसको एक हिन्दुस्तानी के जापान में आने की खबर लगी कि यह ब्रिटिश एलची से आज्ञापत्र लेकर उस रोगी के पास पहुंची। वह शान्त भाव से एक कोचपर सोया हुआ अपने देशका स्वप्न देख रहा था। कोमराश्की उसको देखते ही प्रफुल्लित हो गयी।

उस नवयुवक का रंग गोरा आँख नाक सुडौल, और मुँह गोल था। उसने तो मन ही मन उसके साथ विवाह करने का पक्का विचार कर लिया हृदय से वह उसकी होकर घर आई। घर में भी वह असाधारण सुखी थी। मा, बाप, भाई, बहिन कोई भी न था। लाखों के नकदी सिर्फ बैंक में जमा थे। जर जमीन और घर आदि का किराया भी भरपूर आता था। यदि कोई कमी थी तो वह केवल एक सुन्दर सुशिक्षित पति की ही। आज का देखा हुआ जवान उसकी आँखों में गड गया था। वह घर में घूमती हुई यह विचार करती थी कि सब माल मिलकियत बेचकर नकदी कर लूगी और सब रकम हिन्दुस्तान ले जाकर वहीं घर बार बनवाऊगी, बुद्धदेव की जन्मभूमि पर फूल चढाऊंगी बौद्धधर्म के उपदेश और व्याख्यान दूगी, अपने पति को भी बौद्धमतानुयायी बनाऊगी और उसको किसी की नोकरी न करने दूगी।

यह नवयौवना विदुषी थी। थोडे ही समय से जापान विश्वविद्यालय में पाली और संस्कृत का शिक्षा आरम्भ हुई थी। इसने पाली का उत्तम और संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस मधुरभाषिणी की मानसिक शक्ति ऐसा थी मानो फोनोग्राफ!! जो कुछ सुना या देखा वह पत्थर की तरह इसके दिमाग में बैठ गया। दूसरे जो कार्य वर्षो में सम्पादन करे। उसको यह महीनो ही मे पूरा करती। जिस बात के पीछे यह पडती उसका अन्त किए बिना चैन न लेती। ऐसी तो यह परिश्रमी थी। भिन्न भिन्न भाषाओं को सीखने की उसको बहुत इच्छा थी। और बहुत करके उसकी यह इच्छा फलीभूत भी हुई थी। वह अच्छे अच्छे समाजो में व्याख्यान देती थी। समाचारपत्र और पत्रिकाओंमें लेख भी भेजती थी। उसका

मुख्य उद्देश्य इन लेखों और व्याख्यानों में भी "दबे हुए बौद्ध धर्मका जीर्णोद्धार कर संसार भर में उसका प्रचार करना" ही था। उसे हिन्दू को बौद्धमतावलम्बी बनाने की तो धुन सवार हो गई थी। उसके विचारों को देखकर लोगों ने उसको 'चक्रे वाली' का उपनाम दिया था।

परदेशी की स्थिति दिनोदिन सुधरती जाती है। कोमरास्की ने भी उसको अपने दाँतो के नीचे दबाया है। देखें दो चार दिन में उसकी क्या हालत होती है।

बीसवां प्रकरण

जाति की पचायत

हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य का प्रथम लक्षण जाति है ऐसा कहते जरा भी अनुचित नही मालूम होता। इसमें आपस के विरोध तथा दलबन्दी की सीमा ही नही होती। पचो को गरीबो को कुचल डालने में जरा भी दया ओर पैसो वालों के पाप पर परदा डालते ईश्वर का कुछ भी भय नहीं होता। दूसरो के छिद्र प्रकाशित करने में तो इन्हें बडा ही आनन्द आता है। ये अपनी चेर मुह में थप्पड खाकर भी लज्जित नही होते। ऊंची नीची सभी जातियो में यही खराबी है। अमीर, सरदार और मुफ्तखोर ये ही लोग इसमें आगे चढ़कर काम करते हैं। इनको फुरसत मिली कि आपस में माथा फोडने की तदबीर सोचने लगे। लुच्चो के तो ये सहायक होते हैं। ऐसे व्यापारियो के पुत्र भी जात बिरादरी में

उस नवयुवक का रंग गोरा आँख नाक सुडौल, और मुह गोल था। उसने तो मन ही मन उसके साथ विवाह करने का पक्का विचार कर लिया हृदय से वह उसकी होकर घर आई। घर में भी वह असाधारण सुखी थी। मा, बाप, भाई, बहिन कोई भी न था। लाखों के नकदी सिर्फ बंक में जमा थे। जर ज़मीन और घर आदि का किराया भी भरपूर आता था। यदि कोई कमी थी तो वह केवल एक सुन्दर सुशिक्षित पति की ही। आज का देखा हुआ जवान उसकी आंखों में गड गया था। वह घर में घूमती हुई यह विचार करती थी कि सब माल मिलकियत बेचकर नकदी कर लूगी और सब रक़म हिन्दुस्तान ले जाकर वहीं घर-बार बनवाऊगी, बुद्धदेव की जन्मभूमि पर फूल चढ़ाऊंगी बौद्धधर्म के उपदेश और व्याख्यान दूगी, अपने पति को भी बौद्धमतानुयायी बनाऊगी और उस को किसी की नौकरी न करने दूगी।

यह नवयौवना विदुषी थी। थोड़े ही समय से जापान विश्वविद्यालय में पाली और संस्कृत की शिक्षा आरम्भ हुई थी। इसने पाली का उत्तम और संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस मधुरभाषिणी की मानसिक शक्ति क्या थी मानो फोनोग्राफ!! जो कुछ सुना या देखा वह पत्थर की तरह इसके दिमाग में बैठ गया। दूसरे जो कार्य वर्षों में सम्पादन करें उसको यह महीनों ही में पूरा करती। जिस बात के पीछे यह पड़ती उसका अन्त किए बिना चैन न लेती। ऐसी तो यह परिश्रमी थी। भिन्न भिन्न भाषाओं को सीखने की उसको बहुत इच्छा थी। और बहुत करके उसकी यह इच्छा फलीभूत भी हुई थी। वह अच्छे अच्छे समाजों में व्याख्यान देती थी समाचारपत्र और पत्रिकाओंमें लेख भी भेजती थी। उसके

मुख्य उद्देश्य इन लेखों और व्याख्यानों में भी "दबे हुए बौद्ध धर्मका जीर्णोद्धार कर संसार भर में उसका प्रचार करना" ही था। उसे हिन्द को बौद्धमतावलम्बी बनाने की तो धुन सवार हो गई थी। उसके विचारों को देखकर लोगों ने उसको 'चस्के वाली' का उपनाम दिया था।

परदेशी की स्थिति दिनोदिन सुधरती जाती है। कोमरास्की ने भी उसको अपने दाँतों के नीचे दबाया है। देखें दो चार दिन में उसकी क्या हालत होती है।

बीसवां प्रकरण

जाति की पचायत

हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य का प्रथम लक्षण जाति है ऐसा कहते जरा भी अनुचित नही मालूम होता। इसमें आपस के विरोध तथा दलबन्दी की सीमा ही नहीं होती। पचों को गरीबों को कुचल डालने में जरा भी दया और पैसो वालों के पाप पर परदा डालते ईश्वर का कुछ भी भय नहीं होता। दूसरों के छिद्र प्रकाशित करने में तो इन्हें बडा ही आनन्द आता है। ये अपनी चेर मुह में थप्पड खाकर भी लज्जित नही होते। ऊंची नीची सभी जातियो में यही खराबी है। अमीर, सरदार और मुफ्तखोर ये ही लोग इसमें आगे बढ़कर काम करते हैं। इनको फुरसत मिली कि आपस में माथा फोड़ने की तदबीर सोचने लगे। लुच्चों के तो [illegible]
एक [illegible] जैसे [illegible] के पत्र भी जात

धन-कुबेर हो अपनी खिचड़ी अलग ही पकाते हैं। "नहीं ऐसा तो नहीं होना चाहिये, इसने तो उसके साथ बैठकर पानी पिया है, यह तो जाति से अलग किया जाना चाहिये" आदि झगड़े नित्य लगाये रहते हैं। ऐसे ऐसे मूर्खानन्द जो चाहें सो करें और जाति के माथे नहायें कोई पूछने वाला नहीं। इनके लिये किसी ने कहा है कि—

किञ्चित न्याय न जानत हैं, झगरा सुनि के मन में सुख पावें,
चोर की ओर करे हठ सो, शठ शाह के हाथ न गोला धरावें,
आपनो अग कलक भयो, निकलक के अग कलक चढावें,
नर्क परे तिनके परसे, परपच करे अरु पच कहावें ॥ १ ॥

प्रात काल आठ बजे दीवानचन्द पटवारी जी के पास आकर साष्टाग प्रणाम कर बैठा। महाराज भी पूजापाठ से निवृत्त होकर वात करने बैठे। अभी तक कोई भी भावुक भक्त आया न था एकान्त था। गाजे की पुडिया खोल उसमें से चार पांच कली धोने के लिए उनको देते हुए, धर्मात्मा महाराज बोले,"क्या विचार है दीवानचन्द। पृथ्वी अब रसातल को जाना ही चाहती है। देखिए, कहां सूय कुलापन्न क्षत्री का पुत्र, और कहाँ पारसी के हाथ का भोजन। शिव! शिव-शिव!" दीवानचन्द—"इस अंग्रेजी राज्य में दुनिया डूब जायगी, महाराज, इस टोप वाले ने तो एकामयी कर डाला, अब धरती भार कैसे सहेगी?"

महाराज ने निमक मिर्च लगा के कहा,"जब वेहोश पडा था, खैर, तब की कोई नहीं पूछेगा। पर होश में आने पर भी उसने तो 'नहीं, नहीं' कहा।"

दीवानचन्द,—"अरे भाई साहेब, चेतन और अचेतन कैसा? कोठा तो आखिर भ्रष्ट हुआ ही न? भगवान तो बैठा

हुआ सब देखता है। आजकल के लडको ने सब आचार-विचार एक कोने में रख दिया है और आजकल के पढे लिखों ने तो भ्रष्टाचार कर डाला है।"

तुलाराम,—"वाह वाह, आचार-विचार तो मेरे गुरु जी पालते थे, किसी दिन भी मुसलमान भिस्ती ने मशक का पानी गैया को नहीं छोडा है। कोसो दूर स्वयं जाकर उस को पानी पिला लाते। धोए बिना लकडी उन्होने कभी चूल्हे में नही लगाई। दूध तक को छाने बिना कभी उन्होंने नहीं पिया है। एक दिन इनके दारू का पात्र एक फकीर से छू गया उसी दम उन्होने बाजारमें जाकर उसको बदलवा लिया।"

दीवानचन्द ने डरते डरते पूछा "क्यो महाराज, साधू लोग दारु पीएं तो पाप में न पडे ?"

तुलाराम,—"अरे मूर्ख शिरोमणि ! जोगी जनो को पाप कैसा ? जानते नही हो 'समरथ को नहिं दोष गुसाई' क्योकि 'न्याय नियम सब रंक को, समरथ को सब माफ।'

"सत्य कहते हैं, बाबा जी !" कहते हुए गँवार दीवान चन्द ने चिलम सुलगा कर हाथ में दी। महाराज ने दम लगाया और दीवानचन्द को चिलम दी।

तुलाराम ने गधे को इस प्रकार पाठ पढाया, "एक दिन किसी यूरोपियन ने महाराज को दारू खरीदते देख पूछा कि वैल तुम साधु होकर दारु कैसे पीता है ? महाराज ने वही दारू की बोतल दे मारी और उसका दूध कर के दिखा दिया।"

दीवानचन्द आश्चर्यसे,"किरिया बड़ी चीज है,देखिए अपने रिखी ही को। सतजुग में वे मास खाते ही न थे और जहां उस पर हाथ फेरा कि वह सजीवन हो जाता था। तो क्या इनकी देखा देखी अपने भी वैसा करें ? नहीं वैसा अपने नहीं कर सकते।"

चिलम रखते हुए तुलाराम ने कहा "न भूतो न भवि-ष्यति। चलो फिर हम लोग इस लड़के के पिता से इसकी बीमारी का हाल कहें।"

बिगड़े हुए दीवानचन्द ने कहा "जरूर, और उससे इसके धर्म भरसता (धर्म भ्रष्टता) की बात भी कहें। यदि कल सवेरे आकर कहीं यह पंतग (पंगत) मे बैठे तो अपने भी पाप के भागी होएं।"

तुलाराम,—"ठीक है।"

खिलाड़ी तुलाराम ने स्वयं माणिक की बात किसी से न कही थी। वह यह मजे मे जानता था कि सलाई लगाकर अलग हो जाने से गोविन्द से पाच-पचीस खाने को मिल ही जायगा फिर 'वर मरो या कन्या मरो' उसके बाप का क्या जाता है? दीवानचन्द मूर्ख था, पर बिरादरी में वह गोविन्द को बढ़ती देख नहीं सकता था, यह बात तुलाराम से छिपी नही थी। तुलाराम उसको होली का नारियल बनाने की चाल चल रहा था। पोशाक से सज धज कर आगे आगे महाराज जी और पीछे पीछे दीवानचन्द जी मटकते हुए गोविन्द के घर की तरफ़ बढ़े। गोविन्द बिचारा हुक्का भरे हुए रुक्मिणी की बीमारी से चिन्ताकुल हो विचार सागर में गोते लगा रहा था। इतने ही में दोनों यमदूत वहाँ आ पहुँचे।

गोविन्द ने उठकर स्वागत करते हुए कहा, "आइए महाराज! आइए, प्यासे के पास कूआ आया है!" 'आज क्या है कि यह ब्राह्मण का बच्चा यहाँ आया है, और तो कभी नही आया था' यह मन ही मन विचारता और आश्चर्य करता हुआ वह बोला, "कहिए महाराज, आज इधर कैसे भूल पड़े।"

आसन पर बैठते हुए भूदेव बोले "गोविन्दराम, मैं भ

दीवानचन्द के साथ लाहौर गया था। बाजार में भाई साहेब ने हम से कहा कि हमारा माणिक यहीं कहीं रहता है, चलो उससे मिल ले, क्योंकि घर पर जाकर उसका समाचार कहना होगा।"

"ठीक ही है, भाई साहब हम तीसरी या चौथी पीढ़ी में मामा फूफा के भाई होते हैं, हमारे लड़के की चिन्ता इनको क्यों न हो ? इसमें आश्चर्य ही क्या है ?" यह कहते हुए गोविन्द ने अफीम की डिब्बी निकाली और कुसुम्बा बनाने की तैयारी की।

भूदेव ने डिब्बी मे से एक सुपारी के टुकड़े बराबर अफीम उठाते हुए कहा, "अरे इसी तरह थोड़ी थोड़ी दे दीजिए, कुसुम्बे का खटराग कहाँ कीजिएगा।" इसके बाद दीवान चन्द ने भी अफीम की एक डली खाई और फिर बात आगे चली, "लड़का बहुत बीमार मालूम पड़ता है। ईश्वर उसका भला करे।"

गोविन्द ने व्यग्र होकर पूछा, "तब मैं आज ही जाकर लाहौर से उसको ले आऊँ ?"

तुलाराम—नहीं, अब तो अच्छा होता जाता है। यहां नैसे डाक्टर कहाँ मिलें, तिस पर यह अंग्रेजी पढ़ा लिखा। भाई अपनी देशी औषध इसको कहां पसन्द आवे ? पर लड़के ने तो कुल को—

गोविन्द—क्या कहा महाराज क्या कहा ? रुक क्यों गए ?

दीवान चन्द—आपको दुःख होगा, मुझसे न पूछिए।"

गोविन्द (घबड़ा कर)—"पर हुआ क्या ? भाई टेवा, तू तो मेरा सम्बन्धी है। तू ऐसी बातें कड़ी भी कहेगा तो क्या मुझे बुरा लगेगा ?"

दुष्ट दीवान चन्द ने उत्तर दिया "बुरा क्यों लगेगा!
लीजिये, मैं सब कहता हूँ कि आपका लड़का वह गया है—"

फिर उसने गोविन्द से सब हक़ीक़त खूब नमक-मिर्च लगा
कर कहा। गोविन्द का चेहरा तो एकदम उतर गया। वह
बिरादरी के बखेड़ो से पूरी तरह वाकिफ था। दो चार सौ
पर पानी फिरेगा, नाक कटेगी और शत्रु गाल बजावेंगे, इन्हीं
सब विचारों से वह बिचारा घबडा कर हाथ पसार कर क्षमा
माँगने लगा। प्रपंच पटु पटवारी ने उसको चुप रहने के लिये
आँखों से इशारा किया और दीवान चन्द को साथ ले वहाँ से
राही हुआ। उसके चले जाने के बाद गोविन्द ने एक सीधा
पाँच रुपये नकद, एक माशा चरश, दो आने का गाँजा, सब
मिला कर करीब दस रुपये का माल पटवारी जी के पास भेंट
स्वरूप भेजा और दूसरे पहर स्वयं उनके घर गया। उन्होंने यह
उपाय बताया कि यदि दीवान चन्द का मुँह किसी प्रकार
बन्द कर दिया जाय तो अभी भी कुछ बिगडा नहीं है। बिचारा
गोविन्द उसके घर दौड़ा गया। पुत्र मरणशैया पर पडा है
उसको छोड कर जाँत-पाँत के नाम रोने को वह बिचारा गो-
विन्द दीवान चन्द के दरवाजे पर धक्का खाने गया।

गोविन्द ने उस गवाँर की डाढी पर हाथ फेरते हुए कहा
"देव भैया! आप मेरे सगे हैं इस समय आपके हाथ में मेरे
कुल की लाज है। माणिक जैसा मेरा लडका है, वैसा ही वह
आपका भी है। लडका यदि नालायकी करे तो क्या माता
पिता को भी उसके साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये?
उसकी तरफ देख कर आप इस बात को दबा दीजिए।"

दीवान चन्द—देखो गोवा! क्या तुमने मेरी जमा मारी है?
तुम तो हमारे ही हो। परन्तु यह जात-पाँत की बात है, गाँ

। अपवित्र करना, तो इस शरीर से न हुआ न हो सकता है।

गोविन्द—"लो, तब मैं इसकी तरफ से अभी प्रायश्चित र आता हूँ। मेरी नाक काटने से गङ्गा में कौन सी वृद्धि हो यगी ?"

दीवान चन्द ने गोविन्द के नरम पड़ने से और भी ताव से ा, "तो क्या मैं तुम्हारे लड़के के लिये बिरादरी में झूठ बोलूं ?

"देवा भाई, भाई साहब, अभी आप से कौन पूछने आया यदि आप इस बात को जहाँ की तहाँ रहने दें तो कैसा ... हो। मेरे लड़के की तरफ ख्याल करो मैं अपनी पगड़ी तुम्हारे पैरों पर धरता हूँ। दवा में भी क्या कोई छूत होती है ?" यह कहते हुए गोविन्द ने उस पापी की गोद में अपनी पगड़ी रख दी।

"आप अपने घर जाइए, सब अच्छा ही होगा।" यह उत्तर गोविन्द को दीवान चन्द ने विदा किया। पर कुत्ते के पेट खीर कैसे पचे ? दो ही घड़ी में तो घर घर स्त्रियों में इस पप की चो चो होने लगी।

"क्यों सुना कि नहीं, गोविन्द के लड़के माणिक ने तो पादरी सन के साथ बैठ कर खाया है।"

"अरे अंग्रेजी पढ़कर वह बह गया। देखना, अब वह किसी न को ले आएगा। जात का भय अब किसको है ?"

बात फैलते फैलते चारों ओर फैल गई। गोविन्द ने तुला-म के पैरों पर अपना सिर रखा। उन्होंने "या देवी सर्व भूतेषु ारूपेण संस्थिता" का संपुट पाठ पढ़ना शुरू किया। अन्त में बीस रुपये पर मामला तय हुआ कि बिरादरी में भृगिराज ा को झूठा साबित करेंगे।

दूसरे दिन गांव में न्योता घूमा। सब चांदी के टुकड़े ले

लेकर एकत्र हुए। तुलाराम के लिये बीचोबीच गद्दा बिछा था। बाल, वृद्ध और युवा सभी तमाशा देखने को जुटे थे। गोविन्द को बुलाया गया। उसने आकर सबसे राम राम की और एक कोने में बैठ गया।

थोड़ी देर तक तो "आप पूछिये, आप पूछिये" की तकरार हुई, फिर एक चतुर बोला, "गोविन्द। यह पञ्च गङ्गा आप से पूछती है कि आपके पुत्र ने एक पारसिन के हाथ का खाना खाया है कि नहीं ? इसके दो गवाह हैं—एक देवाराम दूसरे गुरु महाराज। आप को इस विषय में क्या कहना है ?"

गोविन्द को तो तुलाराम का बल था। वह तुलाराम ही के भरोसे खड़ा था। उसने उसके श्वान मुख में टुकड़ा रखा था वह हिम्मत से खड़ा होकर इस प्रकार उत्तर देने लगा, "जात माँ बाप है, मारे तो भी यही, और तारे तो भी यही। देवा भाई भी हमारे नाना के पक्ष के हैं। यदि जात हमको मारेगी तो इनको भी धक्का लगेगा। क्या बिरादरी से भी बढ़कर कोई है— गङ्गा का भी कोई पति है ?"

वह चतुर पुरुष जो आगे बढ़ बढ़ कर बोलता था, पूछने लगा, "तो अगरे अगरे विपराणाम् ? कहिए धर्मावतार आपने क्या देखा था ?"

तुलाराम ने खूब चेहरा बना कह कहा, "देखो भाई सत्य बोलना मनुष्य का परम धर्म है, तिस पर हमारे ऐसे के लिये तो पूछना ही नहीं। कहा भी है —

'सतिया सत्य न छोड़िये, सत छोड़े पत जाय'

जब हम और देवाभाई लाहौर गए थे, तब इन्होंने हम से कहा कि माणिक भी यहीं कहीं रहता है, चलो हम लोग उस से मिलते चलें। बहुत पूछ-ताछ करने पर घर मिला। मैं नीचे

दूकान पर एक सेवक के पास बैठ गया और देवाभाई ऊपर गए। ऊपर से आकर इन्होने कहा कि घर अन्दर से बन्द है। मैंने किवाड़ खूब पीटे पर वे खुले ही नहीं। इसके बाद हम दोनों गाड़ी पर सवार—"

इतने में देव धैर्य छोड़ बीच ही में पूछ पड़ा, "अरे भाइयो यह ब्राह्मण हलाहल झूठ बोलता है। हम दोनों जने—"

तुलाराम ने आँखें लाल कर के घुड़कते हुए कहा, "देवता, ब्राह्मण के बालक को खूब सोच समझ कर झूठा कहना। गाली बरदाश्त होगी पर अपमान नहीं सहा जायगा।"

दीवान चन्दने गरम होकर पूछा, "तो क्या मैं भरी सभा में झूठ बोल रहा हूं।"

तुलारामने पृथ्वी पर हाथ पटक कर कहा, 'सराहर,"

"धिक्कार है तुझ ब्राह्मण के चोले को। अरे—"

तुलाराम गर्जता हुआ बोला, "अरे दुष्ट पापी" तेरी पापी जीभमें कीड़े पड़ेंगे। तूने जो मुझे इतने क्षत्रियों के बीचमें धिक्कारा है उसके दण्ड में, ले यह एक तमाचा ही काफी है।" इतना कह गाल में आ कर एक लम्बा तमाचा जड़ ही तो दिया।

"अरे, इस ब्राह्मणने हाथ छोड़ा है। अच्छा, इसका मजा अभी चखाता हूं—" दीवान चन्द तमाचा खाने से आगबबूला हो गया और पास में बैठे हुए एक आदमी के हाथ से लकड़ी छीन ली और तुलाराम की खोपड़ी पर एक हाथ सच्चा जमाया। भेड़िया धसान की तरह सब लोग भागने लगे। दीवान चन्द और तुलाराम में गुत्थम गुत्था हो गई। आठ दस आदमी दोनों को छुड़ाने लगे। आखिर दोनों छूटे। गोविन्द और दूसरे दो एक तुलाराम के घाव पर मरहम पट्टी करने लगे और बाकी लोग दीवानचन्द पर कुवाग्वृष्टि करने लगे।

एक बोल उठा, "तेरा सत्यानाश हो, ब्राह्मण को इस तरह मारा जाता है ? बिचारा खून से शराबोर हो गया है।"

तुलाराम-अरे, जा बेटा, मोतिया, थाने पर जाकर फैयज महम्मद खाँ जमादार को बुला ला।

लोगोंने बीचमें पड कर कहा, "हाँ हाँ साहब जाने दीजिए इसको अपने किए का फल भुगतने दीजिए। अरे नीच दैव, तेरा मुँह काला हो अब तो ज़रा शान्त हो, नहीं तो अपने काल को बगल ही में समझ।"

अब तो दीवानचन्द के होश-हवाश उड गए, क्योंकि जल में रह कर मगर से बैर हुआ। अब कुशल कहा से होगी। थोडी देर में उसके गज़ी और भँगेडी चेलों का एक अच्छा मजमा इकट्ठा हो गया। अब तो दीवानचन्द की धोती और भी ढीली हो गई। अन्त में दीवानचन्द्रने पच्चीस रूपये देने के वचन देकर अपना पिंड छुडाया। महाराज ने भी सोचा कि आगे बढने से कुछ लाभ होने की आशा तो है ही नहीं। चलो, आई लक्ष्मी को कौन वापस करे।

माणिक की बात हवा बादल की तरह उड़ गई। गांव भर में दीवानचन्द झूठा ठहरा। पच लोग भी अपने अपने घर चले गए। जात-बिरादारी के झगडों में अधिकतर ऐसा ही परिणाम होता है। रुपये या लकडी के ज़ोर से कितने झगडे दबा दिये जाते हैं। न्याय का तो स्पर्श मात्र नही होता। ज़बर्दस्त का सेर सवा सेर का होता है और गरीब का तीन ही पावका इसी का दूसरा नाम है जातकी इन्साफ़ी या पंचायत।

इक्कीसवाँ प्रकरण

माणिक की धर्म-पत्नी

'उठो बूढ़ा सांस लो, चरखा छोडो जाँत लो,' यही बात गोविन्द के विषय में चरितार्थ होती थी। इधर वह एक पीडा से मुक्त हो कर घर आया कि भाग्य की प्रबलता से दूसरी पीडा उसके लिये तैयार थी। माणिकचन्द के लाहौर जाने के बाद उसकी स्त्री अपने नैहर जा रही थी। रुक्मिणी अब चन्द रोज की ही मेहमान थी, इसलिये उसके पिताने गोविन्द के यहाँ आदमी भेजा था कि वह आकर रुक्मिणी को अपने घर ले जाय। क्योंकि उत्तरीय भारतवर्ष में लोगों की यह धारणा है कि पुत्री अपनी ससुराल में ही मरने से सद्गति प्राप्त करती है। दुःखी गोविन्द ज्यों त्यों दो एक कवर खा कर घोडी पर सवार हो कर समधी के गाव–सगरई–की तरफ रवाना हुआ। अमेठा से सगरई कोई दस कोसकी दूरी पर है। दोपहर का चला हुआ वह ठीक संध्याके समय वहाँ पहुचा। रात में खा पी कर समधी के साथ उसने रुक्मिणी-सम्बन्धी बात चीत की; पर तमाम रात उसको निद्रा देवीने दर्शन नहीं दिया। माणिक के जो समाचार पटवारी जी से मिले थे वे अलग ही कलेजा चीर रहे थे। इधर माणिक का पत्र व्यवहार भी बन्द था। रुक्मिणी को घर लाने पर माणिक आवेगा कि नहीं यह चिन्ता उसको और भी जला रही थी। ऐसी अनेक चिन्ताओं से उस का कलेजा चलनी हो रहा था।

दूसरे दिन सबेरे नित्य कर्म से छुट्टी पा गोविन्द अपनी पतोहू को देखने गया। देशाचार के मुताबिक पतोहू का घूँघट

निकला था। खाट के पास जा शोकातुर हृदय से इसने पूछा, "रुक्मिणी, बेटा, तेरी कैसी तबीयत है ?"

पतोहू श्वसुर से बोल नहीं सकती, इस कारण या अशक्ति से रुक्मिणीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। गोविन्दने फिर पूछा, पर उत्तर न मिला। उसने दूसरी कोठरी में जाकर अपने समधी तुलसीराम से कहा कि एक डोली का प्रबन्ध कर दीजिए तो शीघ्र मैं इसको अपने घर ले जाऊँ।

तुलसी रामने अन्दर जाकर अपनी पत्नी से सलाह ली। उस बिचारी ने चौधार आँसू बरसाते हुए कहा, "अब मैं क्या कहूं ? मैंने तो अपनी हृष्ट पुष्ट बेटी इनके हाथ सौंपी थी, पर परमेश्वर जाने इस कर्कशा समधिन ने किस जन्म का बैर चुकाया है। हे परमेश्वर ! मैं फिर लड़की का लोक और परलोक सुधारने के लिये इसको ससुराल भेजती हूं। पर जैसा इसने मेरी लड़की के साथ किया है वैसा ही तू इसकी लड़की के साथ कर।"

तुलसीरामने भरे हुए गले से कहा "अपने भाग्य में यही है, इसमें कोई क्या करेगा।" गोविन्दराम तो लाख रुपये आदमी है, पर समधिन बड़ी कुभार्या निकली। यह भी नसीब हीका खेल है। ईश्वर सब का भला करे।"

डोली मंगाई गई। उसमें माता ने रुक्मिणी का अस्थिपिंजर उठाकर रखा। डोली उठी और अमोटा की तरफ चली। पीछे पीछे घोड़ी पर गोविन्दराम भी चले। तुलसीराम उनके दो पुत्र और स्त्री तथा अड़ोसी-पड़ोसी सब रोने लगे। रुक्मिणी की माता की स्थिति बहुत दयाजनक हो गई थी। रोते रोते उसने आवेश में आ अपना माथा दरवाजे पर दे मारा। उस के सिर में से खून की धारा बह निकली। माता का हृदय फट

भेजा हुआ आदमी वापस आया। उससे इस प्रकार बातचीत हुई—

गोविन्द ने बडी आतुरता से पूछा, "मगन क्या खबर लाया?"

"बाबूजी, आपके बताए पते पर गया। पर भैयाजी तो और कहीं चले गए हैं। शहर भर में भटका पर आदमजी नाम का पारसी तो कोई भी नहीं मिला।"

यह उत्तर सुनकर गोविन्द का हृदय जल कर खाक हो गया। पर करे क्या? प्रिय पाठक, मगन जैसे मूर्ख शिरोमणी अपने देश में ही नहीं हैं, काबुल में भी गधे होते हैं। यूरोप जैसे सभ्य व शिरोमणि देश में भी अनेक साक्षर मूर्ख देखने में आते हैं जो करीमभाई इब्राहीम और डेविड सासुन को पारसी जाति का बता कर लोगों में हास्यास्पद होते हैं।

तीसरे दिन सवेरे से रुक्मिणी के शरीर में कुछ तेजी आनी शुरू हुई। थोडी देर के बाद वह बातचीत भी करने लगी। आसपास के लोगों को कुछ आशा बधी। परन्तु सच पूछो तो यह अन्तिम तेज था। उसके दिन पूरे हो चुके थे।

रुक्मिणी ने धीमे स्वर से अपने सिरहाने बैठी हुई नर्स से पूछा, "बहिन, आपके भाई का कोई समाचार आया?"

"नहीं भाई के तो अभी कुछ भी समाचार नहीं आया।"

ज्यों-त्यों करके रुक्मिणी बोली, "बडी बहिन, आपके भाई आते तो अच्छा होता। मैंने उनके बहुत अपराध किए हैं। उनसे अन्तिम भेंट हो जाती तो सब अपराध क्षमा करा लेती। इस अन्तिम समय की भेंट मेरे लिए बहुत श्रेयस्कर होती। अपने पिता जी से कहकर उनको बुलवाइयेगा नहीं।"

"भाभी बाबू जी ने भाई को बुलाने को आदमी से हृदय

दूर से देखने वालोंको यह दृश्य कैसा और कितना बुरा या भला लगता है, यह पाठकों से कुछ छिपा नहीं है।

थोड़ी देर में प्राण-पखेरू उड गये पिंजरा खाली पड़ा है। स्त्रियों ने चिल्लाना और छाती कूटना शुरू कर दिया। चारों तरफ से 'हाय, हाय' के ही शब्द सुन पड़ने और हृदय वेध कर-आरपार होने लगे। थोड़ी ही देरमें यह खबर चारों तरफ फैल गई। जात की रिवाज के मुताबिक जात का, जान पहिचान और परजात की स्त्रिया सब एकत्र होने लगीं। जो आतीं सो मृतक की याद कर के छाती कूटतीं। थक जातीं तब नीचे मुंह छिपा कर रोने बैठतीं कि इतने ही में सामने से घूंघट निकाल कर एक आगे आगे रोती आती और पाँच सात उसके पीछे आतीं, तब फिर वे बैठी हुई औरतें उठतीं और कूद कूद कर छाती को पीट कर उसे तोडने के व्यर्थ के काम में लग जातीं। स्त्रियाँ एक एक को देख कर दूना राग तानतीं। नवागन्तुक दु:खिया को धैर्य तो दिलाता नहीं, उलटे मरे को याद कर के स्वयं रोने लग जाता है। यह भी एक चलन है। क्या दूसरी जात में और दूसरे धम वालों के हृदय में प्रेम नहीं है? उनके हृदय में क्या शोक उत्पन्न नहीं होता? यह तो हिन्दुओं ही में चलन है। गोकुल गाँव की पैंडा ही न्यारी।

अब पुरुष भी आने लगे। सगे सम्बन्धी सब 'अरे बहिन' 'अरे मामो' 'अरे काकी' इत्यादि शब्द उच्चारते थे। दूसरे सब 'केवल ओ ओ' का राग अलापते थे। रोना न आवे तो भी 'हूं हूं हू' का झूठा सुर मिलाना ही पड़ता था। इतना भी न करे तो लोग कहते कि यह पत्थर के कलेजे का निर्मोही आदमी है। पुरुषों में से चार जने

ने अग्नि सुलगाई मुर्दों के लिये

आप माफ करें। अपने भाई को आप बरदाश्त कीजियेगा। ओ, ओ, अरे, अब मुझसे बोला नहीं जाता–" इतना कहते कहते उसकी आँखे कुछ कुछ पथराने लगीं। क्षण भर तक अवाक रही उसके मनमें तो माणिक की रटन चल रही थी। उसके दर्शन के लिये वह आतुर हो रही थी, आजकल की सुधरी हुई औरतों की तरह वह न थी, जो एक से तो बात करती हैं, दूसरे का ध्यान और तीसरे से नजर लड़ाती हैं। क्षण भर के बाद फिर वह बोली, "श्वसुरजी से कहना कि मेरे अवगुणों पर ध्यान न दें। वे तो मेरे धर्म के पिता हैं। जैसा उन्होंने किया है वैसा और कोई भी नहीं कर सकता। अरे! सु–ह–से–अ–ब–अ–वा–ज–न–हीं–नि–क–ल–ती। अरे, अरे, आ–प–के–भाई–आ–ए! य–ह–रहे। य–हाँ–ख–ड़े–हैं। स्वा–मि–ना–थ–मु–झे–क्ष–मा–की–जि–ए अरे, अरे,—"

'इतना कहते कहते रुक्मिणी ने आँख उलट दी। दो तीन हिचकियाँ आई कि बुढ़ियोंने रोना–धोना शुरू किया। एक ने चट उठ कर गोबर और मिट्टी से जमीन लीपा, और चार-पाँच ने मिल कर उसको जीती ही घसीट कर चौक में डाल दिया। यह निन्द्य आचार हिन्दुओंमें घर घर देखा जाता है इनका ऐसा विश्वास है कि खाट पर मरने से आदमी भूत होता है इसी कारण जीते जी उसको घसीट कर चौक में सुलाते हैं न मालूम कब से यह निर्दई चाल चली है। कंठगत प्राण होने के समय रोगी को उठाने–बैठाने से अनायास नीचा ऊँचा होने से उसको कितनी तकलीफ होती होगी! यह प्रथा सर्वथा अनुचित, अयोग्य और इस लिए एकदम बन्द कर देने के लायक है। जिसके यहाँ जो रिवाज चलता आया है उसको वह बुरा नहीं लगता, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है। परन्तु

...म चाहे अमीर का हो या गरीब का। पर आजकल ऐसे ...न-पान अनेक कुपात्र दृष्टिगोचर होते हैं जो तुच्छ धनके ...भिमान से और कितने शेखी में ऐसे मौके पर सम्मिलित ...हीं हो-मानो उन नराधमों को मरना ही नहीं है। कितने ...ा इतने लुच्चे और सकुचित हृदय के होते हैं कि शव को ...ने तथा उठाने से जी चुराते हैं। जानें शव उनके पापी शरीर ...ो अपने साथ चिता पर ले जायगा। ऐसे लोग पीछे पीछे ...प मारते हुए मौज से धीरे धीरे आते हैं। हे ईश्वर, तू ऐसों ...ो ऐसे निर्जन स्थान में मार कि उनके शव को मनुष्य का ...ंध भी न लगे। सब चला चार ही पाच के सिर आ पड़ती है। ... धनी लोग अपने धन के मद में गरीब गुरबा की मौत में ...ाने के लिए सौ सौ बहाने निकालते हैं। उनके लेखे गरीब ...की मृत्यु क्या है, मानो कोई कुत्ता बिल्ली मर गया हो। उस ...की वे जरा भी परवाह नहीं करते। यदि आसपास के सगे— ...सम्बन्धी के यहा काम पड़ा तो उन्होंने अपना नोकर भेज दिया जिसमें उनकी बात बनी रहे। ऐसे मदान्ध अमीरों के यहा जब ऐसा मौका आवे तो जाति वालों को उनको उचित शिक्षा देनी चाहिए। देखा तो नहीं, पर हा सुना है कि एक सरदार थे जो अपने धन के मद में किसी के घर नहीं जाते थे, और बहुत जरूरत पड़ने पर वे अपना पुराना जूता, प्रतिनिधिस्वरूप अपने जाति वाले के घर जिसके यहा काम आता भेज देते थे। जाति बन्धु बिचारे 'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर' समझ चुप रहते। कुछ दिनों बाद उस सरदार की लड़की का ब्याह आया। बारात भी बाहर से बड़ी धूम धाम से आई। सरदार साहब ने अपनी बिरादरी भर में अपने आदमी से न्योता दिया। इसके उत्तर में सब बिरादरी वालों

खिलाई गई, और गाव के पाठशाला में छुट्टी दिला दी गई क्योंकि ये वातें पुण्य की गिनी जाती हैं। मास्टर के यहाँ पढ़ते हुए लडकों को छुट्टी दिला कर उनको उपद्रव करने का मौका देना पुण्य का कार्य गिना जाता है। उसी प्रकार गाँव के मास्टर भी ऐसे अवसरो की प्रतीक्षा किये बैठे रहते हैं जहाँ चार आने जेव के हवाले हुए कि उन्होंने लड़को को पाठशाला के बाहर हाँक दिया। वस इतना करने से चित्रगुप्त को वही में पुण्य जमा हो गया।

सामान आया रथी तैयार हुई। आठ दस आदमी स्त्रियों के आगे आकर खडे हुए, जिसमें रथी लाते या ले जाते समय वे आवेश में आकर उसको तोड न डालें। इसमें कोई आश्चर्य नही। इतनी व्यवस्था रहने पर भी जब रथी बाहर निकली तब प्रेमदेवी झटके से उसके पीछे दौडी और बाल बिखराती हुई चिल्लाने लगी, "अरे बहू, खडी रहो, लड़का आकर पूछेगा तो काला मुँह लेकर क्या जवाब दूँगी ? हायरे, हायरे !!

इस दृश्य से पत्थर भी पसीज सकता है, परन्तु यह कितना व्यर्थ और निर्थक है सो आसानी से जाना जा सकता है। धीरे धीरे ये सब बातें अब रिवाज हो गई हैं। यदि कोई सच्चे शोक से मृतक के पीछे दौडता है तो कितने केवल ऊपरी दिखाव के लिए ऐसा करते हैं। स्त्रियों की रुलाई और कुटाई की कला भी दर्शनीय होती है। मुहल्ले के फाटक तक दौडते दौडते पुरुष गए। स्त्रिया भी रोती कलपती हुई घर की ओर फिरीं। कपडों का गट्ठर बाध, सिर पर लाद वे नदी की ओर चलीं।

प्राय: सभी हिन्दू जातियों में यह एक नियम है कि ऐसे मौके पर घर पीछे कम से कम एक आदमी अवश्य आवे।

थी। एक शब्द भी फरियाद के रूपमें उसने बाहर नहीं निकाला था। मानो उसकी कुलीनता उसके सिर पर सवार हो कर यह घोषणा करती रही कि.—

"ख़ाक हो जल्के मगर उफ दिले नाशाद न कर,
दम भी छुट करके निकल जाय तो फरियाद न कर।"

प्रेमदेवी भी अब बहुत पश्चात्ताप करती थीं। ठीक है, मनुष्य के गुण उसके मरने के पीछे ही जाने जाते हैं। इधर माणिक का भी कुछ पता न था। यह कष्ट उसकी माता के हृदय में साधारण नहीं कहा जा सकता है अब वह अपनी पड़ोसिनो और पुत्री के आगे रात दिन रुक्मिणी के गुणो की चर्चा किया करती थी। पर अब वह किस काम की ?

"आगे की पीछे भई, किया न उससे हेत,
अब पछताके क्या करो, चिड़िया चुग गयी खेत।"

बाईसवाँ प्रकरण

नसीम बाग और शिक्षण क्रम

हमारे तीनों मुसाफिर सबेरे आठ बजे नसीम बाग देखने के लिये नाव पर सवार होकर रवाना हुए। उन्होंने कुछ समय तो बाग की बारहदरी में बिताया। माणिक के मन मे फिर नवीन विश्वविद्यालय--नवीन कालेज--नवीन प्रणाली का प्रारम्भिक शिक्षण-क्रम स्थापित करने की छटपटी पड़ी थी। चाय पीते पीते अपने मन के उद्गार निकाले। "अहा अच्छा हो यदि एक बड़ा विश्वविद्यालय

नौकरों के साथ अपना एक एक पुराना जूता सरदार के घर भिजवा दिया। इधर सरदार साहब के दरवाजे पर बिरादरी वालों की तरफ से दनादन जूते आ रहे हैं। वहा जूतो की एक बडी टाल लग गई और बिरादरी वालो का नाम भी नहीं। सरदार बहादुर के समधी ने पूछा कि यह क्या बात है कि अभी तक एक भी बिरादरी वाले नहीं आए, और दरवाजे पर पडापड जूते बरस रहे हैं? इस पर सरदार बहादुर बड़े लज्जित हुए और स्वयं पगडी बाधकर प्रत्येक जातिबन्धु के घर गए और सभी से बडी आरजू मिन्नत से क्षमा मागी तथा अपने यहा पधारने की नम्रतापूर्वक विन्ती की। मदान्ध और उद्दण्ड जाति वाले जब तक इसी प्रकार ठिकाने नहीं लाए जायँगे तब तक जाति की प्रथा ठीक नहीं चल सकती।

गोविन्दराम के यहाँ भी धनके अभिमानी और द्वेषाग्नि में भस्म होने वाले दो ही चार सज्जन पधारे थे। साधारण पुरुष रुक्मिणी की रथी को चटपट उठाकर स्मशान पर ले गए।

स्मशान पर अग्नि-संस्कार के बाद 'कपाल क्रिया' के नाम से होने वाली क्रिया भी अत्यन्त निन्द्य है। उत्तर आर्यावर्त में यह क्रिया बडी क्रूरता से की जाती है।

चार साढ़े चार बजे तक रही सही रुक्मिणी अग्निदेव का शिकार हो गई। लोग रोते कलपते गोविन्द के घर तक आए और पानी के कुल्ले कर अपने अपने घर चले गये। ग़रीब गोविन्द के मनमें इस समय जो दु.ख होता था उसको लिखने की शक्ति हमारी लेखनी में नहीं है। यद्यपि वह शिक्षित नहीं था, परन्तु वह समझता था कि रुक्मिणी सहनशील, नम्र और शान्त प्रकृति की थी। उसने सास ननँद के अनेक कष्ट झेले

अपने मसरफ भर सिखाया कि बस । वह शिक्षा भी इतनी कठिन कि शरीर की नस नस ढीली पड जाती हैं । किसी न किसी तरह उन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की तो आगे प्रोत्साहित करने वाला कोई नहीं । गोरी चमडी वाला यदि मूर्ख भी हो तो भी उसको हजार पाँच सौ की नौकरी तो चुटकी बजाते मिल जाती है, और काली चमडीवाला यदि पंडित भी हो, योग्य हो और गोरी चमडी से टक्कर लेने में सफल भी हो तब भी उसका भाव कोई नहीं पूछता । काले काले नाम ही लेते गोरों को जूडी आती है । ऐसी स्थिति में बताइये देश का उत्थान कैसे हो ?"

जयचान्द—" अरे आप अपने ही कालेज की बातें कीजिए, अपनी ही युनिवर्सिटी को देखिए, दूर क्यों जाते हैं ?"

-माणिक—"मेरे तो सब हवाई किले हैं । मैं यदि कालेज की स्थापना करूं तो वह वास्तव में राष्ट्रीय कालेज ही होगा । वहां से शिक्षा पाये विद्यार्थी नई नई कलायें, नए नए उपयोग यन्त्र-शास्त्र रसायन-क्रिया, पदार्थ-विज्ञान, अध्यात्म और वनस्पति-खनिज, खगोल भूगोल आदि शास्त्रों सभी में यदि नहीं तो कम से कम एक एक में तो सौ में तथा हजार में एक निकलेगा । सच्ची प्रवीणता प्राप्त कर सच्चा नाम करें और दुनियां को चकित कर सकेंगे । मेरा कालेज ऐसा होगा । हाल के शिक्षण क्रम में तो कामस्कटका के जंगल, फ्रांस की नदियां, इंग्लैण्ड के गांव, आदि सिखाया जाता है । कानपूर, कलकत्ता, करांची, दिल्ली, आगरा, और लाहौर में कौन कौन पदार्थ बनते हैं और किस भांति बनते हैं, उनका भी ज्ञान नहीं , कराया जाता अवनति पर सोच

अंग्रेजी पोशाक वाले मुसाफिर ने पूछा, "तो क्या इस ज़मीन की रजिस्ट्री करा लूँ ?"

माणिक ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा, "अरे साहेब, मेरे पास तो ज़हर खाने को भी एक दमडी नहीं है। मैं क्या कर सकता हूँ? हाँ, यदि ताता की इम्पीरियल सोसाइटी चाहे तो इसे खरीद सकती है। यह स्थान वास्तव में सरस्वती-मन्दिर—विद्यालय के लिये अत्युत्कृष्ट है। जब मैसूर के महाराज ने भूमि-प्रदान की है तो क्या वजह है कि कारमीर के महाराज न करें? पर नहीं नहीं, इनको तो नहीं देना चाहिए, क्योंकि इनके राज्याभिषेक की क्रिया लार्ड कर्जनवाण ने की है। यहाँ के अच्छे अच्छे पद और अधिकार तो गोरागों को ही देने की गुप्त व्यवस्था हो चुकी है। अब यहाँ बिचारे, अनाथ काले आदमियों को कौन पूछेगा?"

डा० बाल्डा ने माणिक से कहा, 'मिस्टर इम्तिहान चन्द, आप के विचार तो बड़े बाँके हैं। पर समझता हूँ कि थोड़े दिनों में आप पागल हो जायगे। काळेज, यूनिवर्सिटी और स्कूल को ताक पर रख कर आप वायु का सेवन कीजिए तो अत्युत्तम हो। पर आप कैसा काळेज स्थापित करेंगे और विद्यार्थियों को कैसी शिक्षा देंगे?"

"साहब, आप चाहे जितनी मेरी हंसी उडाइए, पर देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से मुझे अत्यन्त सन्ताप होता है। स्कूल में पढ़, हाई स्कूल से हो कालेज में माथा मार कर निकले ग्रामों में आप खोजेंगे तो मेरे ऐसे बहुत से चाम्मी मुर्दे आप को नजर आवेंगे—जो 'आज मरे कि कल मरे' की स्थिति में पृथ्वी पर भटकते हैं। यहाँ की सरकार परदेशी ठहरी। उसको अच्छे अच्छे विद्यार्थी उत्पन्न करने की इच्छा काहे को होगी

…थियों से अधिक को नहीं पढ़ाते। यहाँ तो पाठशाला में जितनी भेड़ भरी जा सके उतनी भर ली जाती हैं। बिचारा शिक्षक क्या करे। मरे कि बीमार पड़े ? वह कितने विद्यार्थियों पर ध्यान दे सकता है ? १०० विद्यार्थियों का क्लास, और सभी को अलिफ, बे से ले कर गुलिस्ताँ तक पढ़ाना। जर्मन पाठशाला के शिक्षकों को वेतन भी भरपूर मिलता है पर इस देश के शिक्षक तो भिखारी से भी बदतर हैं। वहाँ प्रजा को जिस प्रकार के शिक्षा की आवश्यकता है, वह उसी प्रकार का प्रबन्ध कर लेती है। विशेष ध्यान वैसी शिक्षा के प्रचार पर दिया जाता है जिससे प्रजा कलाकौशलशाली और बलवती हो। जापान में भी ऐसा ही शिक्षणक्रम है, और इसी कारण से आज जापान पचास वर्षों ही में उन्नति के शिखर के निकट होता जाता है। आप यह मत समझ लीजिएगा कि हिन्दुस्तान की प्रजा के दिमाग में भूसा भरा है। जो काम बड़े बड़े रसायनवेत्ता अंग्रेज तक नहीं कर सके उस काम को करने की शक्ति आर्यपुत्रों में है। समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा था कि बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के मुख पर किसी बदमाश ने बदमाशी से स्याही लगा दी थी। जब बड़े बड़े अंग्रेज और जर्मन रासायनिक उस स्याही को नहीं मिटा सके, तब उसको एक आर्यपुत्र ने मिटा दिया। मिस्टर गज्जर का नाम तो आपने सुना ही होगा, ठाकुर! वह एक निपुण रासायनिक हैं। उसने इतने महत्व का काम किया है। पर उसको इसके बदले में क्या मिला ? यदि कोई अंग्रेज बच्चा होता तो वह कभी का …ी आई० ई० या सी एस० आई० ई० हो गया होता और लम्बी चौड़ी … की नौकरी भी कभी की मिल गयी होती। इतना ही

के जीवन-चरित्र के तारतम्य को जानते नहीं, शालो वाहन और विक्रम के समय की खबर तक नहीं, परन्तु शेफिल्ड में क्या बनता है, मेनचेस्टर कैसे व्यापार करता है, लीप भीग के कारखाने कैसे चलते हैं, फिलाडेलफिया में कौन कौन सौदागर हैं, कोलम्बस ने कैसे यात्रा की, आल्फ्रेड और शालमैन कैसे बादशाह थे इग्लैन्ड की उन्नति कैसे हुई, वहाँ का राजतन्त्र कैसा है आदि बातो से विद्यार्थी का दिमाग ठसाठस भर दिया जाता है। इस प्रकार की विद्या सीखने से विद्यार्थी के भविष्य जीवन में किसी प्रकार की सहायता नही मिलती। आम तौर से अंग्रेज सरकार इग्लैंड के रद्दी-सद्दी अध्यापकों को लाकर यहाँ की कालेजों में भर देती है। विचारा विद्यार्थी यदि कुछ तेज और बुद्धिमान् हुआ, तो कुछ समझा और पास भी हो गया नहीं तो माथा मारते मारते आधी से अधिक जिन्दगी उसी में गँवा देता है। मैं तो अपने कालेज में हिन्द के निपुण प्रोफेसरों को रखूँगा। हाल में जैसे केवल साहित्य की ही शिक्षा दी जाती है, मैं वैसा नहीं करूँगा। मैं भिन्न भिन्न कालेजो की स्थापना करूँगा, जिससे प्रत्येक कालेज में से निपुण लोग निकलें। प्रजा को जिस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है उसी की योजना करूँगा। डाक्टर साहब आपने जर्मनी के यूनिवर्सिटी की रचना के सम्बन्ध में अवश्य सुना होगा। वहा की यूनिवर्सिटी में इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती। वहा हरेक बी० ए० और एम० ए० की दुम लगा भीख नहीं मागता फिरता। वहा की सरकार पाठशालाओं को सहायता देती है पर उस पर हुक्म नहीं चला सकती। यदि सरकार ऐसा करे तो प्रजा एक के दो कर डाले। वहा पाठशाला के शिक्षक निश्चित संख्या के विद्या-

पंजाबी ने अधिकाधिक घबड़ाते हुए कहा, "अरे साहब यह खान पान की बात है। हम लोगों में ऐसा होना बड़ा दुर्लभ है। मैं आप लोगों का छुआ पानी पीता हूँ, यदि इतना ही जो मेरी जाति वालों को मालूम होजाय तो अशुद्ध अक्षर की तरह से मेरा नाम बिरादरी में से कट जाय।"

अंग्रेजी पोशाक वाले ने कहा, 'इसका क्या मतलब ? वॉट नान्सेन्स ? क्या हमलोग भंगी चमार हैं ?"

पंजाबी ने नम्रता से कहा, "नहीं, नहीं, साहेब; यह तो अपना अपना रिवाज है। आप तो जानते ही हैं कि मैं स्वयं इन सब बातों को नहीं पसन्द करता, पर क्या करें संसार में बैठे हैं।"

स्त्री मुसाफिर ने एक नई युक्ति लड़ाते हुए कहा, "अरे भाई, तब मेरा कहा क्यों नहीं मानते ? पतलून और जाकिट पर एक लाग कोट पहिन कर ऊपर से साफा बाँध लीजिए। फिर यदि कोई जान पहिचान का होगा तो भी वह चक्कर में आजायगा। वार्तालाप भी अंग्रेजी ही में किया करो। हम लोग भी आप को माणिकजी कह कह पुकारेंगे। चलो, खट खट दूर हुई।"

जब की बताई हुई यह युक्ति सब को पसन्द आई। डाक्टर बाछा ने अपने ट्रंक में से एक कोट निकाल कर माणिक को दिया। माणिक ने जब उस को पहिना तो ऐसा मालूम पड़ने लगा कि उसने एक लिहाफ ऊपर से ओढ ली है। कहां बाछा का हृष्ट पुष्ट शरीर और कहां अपने एम० ए० नाम का विद्या की चक्की में दला हुआ अंग। जब ने झट अपना ट्रंक खोला और उसमें से एक कैंची और एक हाथ की मशीन निकाली।

... ... होगा यहीं बैठो।

हुए प्रतीत होते थे। सुन्दर पुष्प वाटिकाओं का मनोहर दृश्य और अद्भुत प्राकृतिक भाव देख कर दर्शक क्षणभर के लिये आश्चर्यमें गोते लगाने लगता है। यह स्वाभाविकही है। आस पास स्वच्छ पानी के झरने बहते थे। पानी की शीतलता बर्फ को भी मात करती थी। पानी पाचकभी ऐसा कि भोजन के बाद पीओ तो फिर भूखे के भूखे। और पत्थर भी खाया हो तो वह भी हजम। पंजाबीने जो इधर उधर देखा तो मुसलमान, पारसी और यूरोपियन से उसको दुगुने-तिगुने हिन्दू ही हिन्दू नजर आए। इससे उसने घबडा कर कहा कि, 'यहां तो मुझे खाने को मिल चुका। यहा हिन्दू अधिक हैं। इनमें से यदि कोई जान पहिचान का निकल आया तो खाने पीने का प्रश्न सबके पहिले उठेगा।"

अंग्रेजी पोशाक वाले मुसाफ़िर ने कडे हो कर कहा, "तो क्या मैं तुमको पूरी कचौरी, मोहन भोग आदि खाने दुगा। अभी तो आप कुछ ठिकाने आए हैं क्या फिर खाट सेने का इरादा है ?

पंजाबी ने घबडाते २ पूछा, "फिर इसका रास्ता क्या है ?"

अंग्रेज़ी दिखाव वाले ने लापरवाही से कहा, "उपाय किस बात का ?

'डोन्ट केयर, (निश्चिन्त रहो) किसी की परवाह मत करो, अपना काम चुपचाप किए जाव।' तुम्हारे मेल के जहां दस बीस हुए कि सब अपने आप तुम्हारे से हो जाएगे। 'हैव मारल करेज' (हिम्मत करो)। यदि इतना भी तुम्हारा किया नहीं होता पढा लिखा किस वास्ते ? हटाओ यह सब मूर्खता की बातें। क्या इसी बिसारत पर यूनिवर्सिटी और कालेज खोलोगे ? कुछ साहस करो, साहस।"

"शोभा नहीं देता ? यह और किस खुदा ने कहा ?" यह कह कर उसने ट्रंक में से दर्पण निकाल कर माणिक के मुह के आगे रख दिया। माणिक अपना मुख देखते ही आश्चर्य में लीन हो गया। मन में विचार करने लगा "यह मैं वही हू या और कोई ? दाँत और गाल की मित्रता का कब अन्त हुआ ? आँख की झाई कहाँ लोप हो गई ? चेहरे पर नूर कब आया। कपाल कब से चमकने लगा ? गालो पर लाली और वह माणिक चन्द के गालो पर—आश्चर्य"

बीमारी से उठने के बाद डाक्टर बाछा के उपर्युक्त यत्न और काश्मीर की आबोहवा तथा पर्याप्त आराम के कारण, माणिक का शरीर कुछ ठिकाने आया था। परन्तु उसने किसी दिन आरसी में अपना चेहरा देखा नहीं था। उसको काकुल वाकुल निकालने की आदत न थी। आज उसने जब आरसी में अपना चेहरा देखा तो वह फूला न समाया। और माणिक एक खलासी को लेकर जिधर बाछा गए थे उधर गए। थोडे ही समय में वे बाछा के पास जहाँ वह नसीम बाग का दृश्य खींच रहा था, हसते हसते आकर खडे हुए। बाछा ने खलासी को हुक्म दिया कि सब सामान बडी होशियारी से ठीक ठीक उतार कर के हमारे तम्बू में रख दो। मल्लाह सलाम कर के चला गया।

जरने पूछा" मामाजीयहाँअपने लोग कितने दिन ठहरेंगे?"

बाछा ने थोडे में उत्तर दिया "एकाध हफता।"

"जर हँसती हुई, मामा के कधे पर हाथ रख कर बोली, "तब तो मामा जी, आप इस माणिक शाह की एक फोटो इस ड्रेस (लिबास) में खींच लीजिए। किसी दिन इनकी माँ मुझसे मिलने आवेगी तो मैं उसको दिखाऊँगी।"

हम तो चलते हैं"। यह कह डाक्टर वाछा ने एक नौकर के हाथ में हैंड केमेरा और दूसरे के हाथ में थोडा सा सामान दिया और स्वय नसीम बाग के दो एक दृश्य लेने को नाव पर से उतर पडे। जर ने नाप लेकर कोट को कतरा और कच्चा कर के माणिक को पहिना देखा। छाती पर से अभी भी वह कुछ ढीला ढाला था। फिर उसने उस को कतर बेंत के का खडा किया।

माणिक ने दीनता से शर्माते हुए कहा, "दुर्भाग्य का मारा मैं यहां भी आप को दुख देने के लिए साथ आया हूँ। १० के अहन उपकारों का—"

जर ने कोट तैयार करते हुए कहा, "चुप रहिए चुप-इन्सान इन्सान के काम आवे इसमें उपकार और एहसान कैसा?"

इस वार कोट बिलकुल ठीक हुआ। जर ने प्रसन्न हो कर उस को मशीन पर चढाया। आधे घंटे में उसने बडे बडे कारीगर को कोने में बैठाने वाली कारीगरी से उस कोट को तैयार कर माणिक को पहिना दिया और वाछा के ट्रंक से पगडी निकाल उसके सिर पर रखी। पगडी पहिनने माणिक बहुत लज्जित हुआ। सदभाग्य से माणिक का सिर बडा होने के कारण वह पगडी उस को ऐसी ठीक ठाक हुई मानो वह उस के नाप की बनी हो।

माणिक ने शर्माते हुए कहा, "सुनो जरवान्, इस पगडी के स्थान पर आप मुझे कोई इंग्लिश केप या हैट पहिना दीजिए।"

जर—(कोप से) ओहो—फिर आप हिन्दुओं की तरह लकीर पीटने लगे।

माणिक ने रुकते २ कहा "पर यह मुझे शोभा नहीं देता

तो किसी न किसी यूरोपियन अमलदार के स्वागत ही के लिये। कदाचित् ये अब आते ही होंगे। साधरणतया और दिनों यह शान्त ही रहता है।"

माणिक ने चिन्ता करते हुए कहा, "अरे रे, अपनी सरकार यह अच्छा नहीं करती। गरीबों के लडकों को वाल्यावस्था ही में यह धर्मभ्रष्ट करती है। और इन धर्म भ्रष्ट करने वालों को यह रुपये पैसे की पूर्ण मदद देती है, और वह भी हमारे ही पैसे में से। शिव, यह कैसा अन्याय ! कैसा महान अनर्थ !! हे ईश्वर ! दया करो !!!"

घाछाने पूछा "तो फिर आप लोग जनता के हित के लिये एक फंड कर के धर्म-च्युत बालकों को क्यों नहीं अपने धर्म में मिला लेते ?"

"साहब, हमारे हिन्दू भाई इन बातों में अभी कोसों दूर हैं। धर्म के मुख्य हथियार हमारे गुरू जब वेही गहरी नींद में पड़े हैं तब अन्य संसारियों की क्या बिसारत ? वे लोग तो धर्म के नाम से महाराजों के गुरु देव के पैर में लाखों की ढेर लगा देते हैं। पर महाराज जब इन रुपयों का सार्थकव्यय करें तब न हो। वे तो गाडी घोडा चढने में, बाग बगीचे घूमने में और मजे उड़ाने में ही अपनी आत्मा का संतोष मानतें हैं। फिर उनको क्या गरज कि इधर ध्यान दें ?"

इस प्रकार की कितनी बातें कर के वे तम्बू में आए और खा पी कर अपने अपने सोने के स्थान पर चले गए।

माणिक ने शरमाते हुए कहा "अरे नहीं, नहीं,"

"ओ, नो, आई विल डू इट" वाछा ने हँसते हँसते ठीक कर के केमेरे का मुख माणिक की तरफ घुमा दिया। माणिक की इच्छा न होते हुए, उसको अपनी फोटो लाचारी से उतरवानी पडी। उसके बाद थोडी देर इधर उधर घूम कर तीनो जने अपने पहिले से ठीक किए हुए तम्बू में गए। साढे चार बजे सज धज कर तीनो आदमी वहा के एक जानकार के साथ बाग की हवा खाने निकले। थोडी देर घूमने के बाद शीघ्रगामी जर की दृष्टि दो सुशोभित नावो पर पडी। जिसमें यूरोपियन लेडिया और साहब बैठे थे और नवयुवक लडके धारीदार गजी फराक पहिले हुए आवेश में आकर डाडे खे रहे थे। जर ने सब का ध्यान उस ओर आकर्षित किया।

डाक्टर वाछाने सामने देखा और साथ में आए हुए जानकार से पूछा "ये लोग कौन हैं?"

उस जानकारने उन सब का हाल कहना शुरू किया "अमेरिकन पादरी नोल्सन के स्थापित किए हुए स्कूल के ये विद्यार्थी हैं, वे लडकियाँ कन्या पाठशाला में की विद्यार्थिन हैं। इनको दाई का काम सिखाया जाता है। जो दो बडी स्त्रिया हैं वे यहाँ की शिक्षिकाएँ हैं। कितने पादरी लडको को पढाते हैं और गांव में फिर २ कर इसाई मत फैलाते हैं। इन्होंने कितने लडके और लडकियों को इसाई मत की दीक्षा दी है। मैं समझता हूं कि नोल्सन का स्वर्गवास हो गया है और उसके स्थान पर हाल में दूसरा कोई पादरी आया है। आज बोट-रेस (नौका-दौड) है। ये दोनो नाव विद्यार्थियों के लिये स्कूल की ओर से बनवाई गई हैं। जब कभी कोई बडा आदमी यहाँ आता है तब नौका दौड होती है। आज जो इन युवकों को छोडा है

...राम हो जाएगा। इस समय वह जापान में रहने वाले ब्रिटिश ...कों की देख रेख में है।"

...र ने इस सम्वाद को बार बार पढ़ा। पढ़ने पर वह कभी आनन्दित और कभी शोकातुर हो जाती थी। कभी उसके हृदय में आशा के अंकुर उत्पन्न होते तो कभी निराशा का अन्धकार उसके हृदय में फैल जाता था। अनेक विचारों से उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। कुछ देर वह विचार कर चुप बैठ रही। फिर चिट्ठियाँ पढ़ीं और रख दीं। टेबुल पर से उसने आलबम उठाया, और उसमें से दो फोटो निकाले फिर, उनको तकिये पर रखा और उसके सामने बैठ कर नीचे लिखे अनुसार एकान्त में मन ही मन बड़बड़ाने लगी —

"अहा हा, दोनों एक ही से हैं! परन्तु एक हमारे दीन का है और दूसरा दूसरे दीन का है। एक तन्दुरुस्ती का नादिर नमूना है तो दूसरा रोगी। दोनों के चेहरे पर गम्भीरता, वफादारी, मुहब्बत और चालाँकी एक सी है। एक अदना आदमी इनको सगे भाई कह सकता है। इतनी अधिक समानता दोनों में है कि इन्सान धोखे में आ जाय, यहां तक कि दोनों के नाम भी एक ही हैं। एक पर मेरा जिगर कुरबान है और दूसरे को देखने के लिये मेरी आँखें इन्तजार कर रही हैं। एक को मैं अपना प्राण दे चुकी हूं और उसी के मिस दूसरे को देख सन्तोष करती हूं। हाय, प्रेम! ए मेरे प्यारे! अखबार में लिखा हुआ हिन्दुस्तानी तू ही हो! प्यारे माणिक तू एक महीना किस प्रकार चुप रह सकेगा? प्यारे, तेरे पास वहाँ कौन होगा? तेरी सेवा-शुश्रूषा कौन करता होगा? हे परमेश्वर, मेरे प्यारे को तू धैर्य और हिम्मत प्रदान कर! हाय मैं तो उसकी फोटो और उसका सा एक आदमी देख

तेईसवाँ प्रकरण

दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी

दूसरे दिन प्रात काल सात बजे के लगभग जब हमारे तीनों प्रवासी मेज के आगे बैठे हुए चाय पी रहे थे। उसी समय एक डाकिये ने आकर माणिक, जम्बानू, और वाछा के नाम के कितने पत्र और अखबार दिए। डाकिए को इन लोगों का पता बड़ी मुश्किल से लगा था, इस कारण उसने कुछ इनाम पाने के लिये इच्छा प्रगट की। वाछा ने जेब में से कुछ पैसे निकाल कर उसको दिए, जिसको ले, उसने सलाम कर के अपना रास्ता लिया। सब कोई अपने अपने पत्र और अखबार ले कर अपने अपने कमरे में चले गए। ज़र ने चिट्ठियों को तो अलग रखा और अखबार लेकर पढ़ने लगी। उसने पहिले रूटर के तारों पर नजर फेरी। उसमें पहिला ही तार नीचे लिखे अनुसार था —

"दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी।

जापान के किनारे पर एक हिन्दुस्तानी एक लकड़ी के तख्ते के साथ बह आया है। समुद्र की लहरों के कारण उस की ज़बान बन्द है। उसके दिमाग पर भी पानी ने असर किया है। उसके पास एक औज़ार निकला है, इस से अनुमान किया जाता है कि यह कोई डाक्टरी का काम करने वाला होगा। उसकी जात-बिरादरी का कुछ पता अभी नहीं लग सका है। बहुत खोज करने पर यह पता चला है कि वह बम्बई का निवासी है। डाक्टरों का ऐसा अनुमान है कि वह एकाध महीने में

आराम हो जाएगा। इस समय वह जापान में रहने वाले ब्रिटिश एल्चो की देख रेख में है।"

जर ने इस सम्वाद को बार बार पढ़ा। पढ़ने पर वह कभी आनन्दित और कभी शोकातुर हो जाती थी। कभी उसके हृदय में आशा के अंकुर उत्पन्न होते तो कभी निराशा का अंधकार उसके हृदय में फैल जाता था। अनेक विचारों से उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। कुछ देर वह विचार कर हुए बैठ रही। फिर चिट्ठियाँ पढ़ी और रख दी। टेबुल पर से उसने आलबम उठाया, और उसमें से दो फोटो निकाले, फिर उनको तकिये पर रखा और उसके सामने बैठ कर नीचे लिखे, अनुसार एकान्त में मन ही मन बड़बड़ाने लगी —

"अहा हा, दोनो एक ही से हैं! परन्तु एक हमारे दीन का है और दूसरा दूसरे दीन का है। एक तन्दुरुस्ती का नादिर-नमूना है तो दूसरा रोगी। दोनो के चेहरे पर गंभीरता, वफादारी, मुहब्बत और चालाँकी एक सी है। एक अदना आदमी इनको सगे भाई कह सकता है। इतनी अधिक समानता दोनो में है कि इन्सान धोखे में आ जाय, यहा तक कि दोनों के नाम भी एक ही हैं। एक पर मेरा जिगर कुरबान है और दूसरे को देखने के लिये मेरी आँखे इन्तजार कर रही हैं। एक को मैं अपना प्राण दे चुकी हू और उसी के मिस दूसरे को देख सन्तोष करती हू। हाय, प्रेम! ए मेरे प्यारे! अखबार में लिखा हुआ हिन्दुस्तानी तू ही हो! प्यारे माणिक एक महीना किस प्रकार चुप रह सकेगा? प्यारे, तेरे पास वहाँ कौन होगा? तेरी सेवा-शुश्रूषा कौन करता होगा? हे परमेश्वर, मेरे प्यारे को तू धैर्य और हिम्मत प्रदान कर! हाय, मैं तो उसकी फोटो और उसका सा एक आदमी देख कर

तेईसवाँ प्रकरण

दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी

दूसरे दिन प्रातःकाल सात बजे के लगभग जब हमारे तीनों प्रवासी मेज के आगे बैठे हुए चाय पी रहे थे। उसी समय एक डाकिये ने आकर माणिक, जग्वानू, और वाछा के नाम के कितने पत्र और अखवार दिए। डाकिए को इन लोगों का पता बड़ी मुश्किल से लगा था, इस कारण उसने कुछ इनाम पा।ने के लिये इच्छा प्रगट की। वाछा ने जेब में से कुछ पैसे निकाल कर उसको दिए, जिसको ले, उसने सलाम कर के अपना रास्ता लिया। सब कोई अपने अपने पत्र और अखबार ले कर अपने अपने कमरे में चले गए। जर ने चिट्ठियों को तो अलग रखा और अखबार लेकर पढ़ने लगी। उसने पहिले रूटर के तारों पर नज़र फेरी। उसमें पहिला ही तार नीचे लिखे अनुसार था.—

"दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी।

जापान के किनारे पर एक हिन्दुस्तानी एक लकड़ी के तख्ते के साथ वह आया है। समुद्र की लहरों के कारण उस की ज़बान बन्द है। उसके दिमाग पर भी पानी ने असर किया है। उसके पास एक औजार निकला है, इस से अनुमान किया जाता है कि यह कोई डाक्टरी का काम करने वाला होगा उसकी जात-बिरादरी का कुछ पता अभी नहीं लग सका है बहुत खोज करने पर यह पता चला है कि वह बम्बई का निवासी है। डाक्टरों का ऐसा अनुमान है कि वह एकाध महीने में

परिवर्तन होने लगे। दूसरी बार आँखें फाड फाड कर बडे ध्यान से उसने पत्र पढा और फिर कुछ देर तक चुप रही। माणिक जर का अभिप्राय जानने के ही लिये आया था, जर को यह चुप चाप बैठे देख बोल उठा, "क्यो ? इतने गहरे विचार-सागर में क्यो पड गई ।

जर ने बहुत सोच विचार कर कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या उत्तर दू ? आपको यदि मैं 'नहीं' कहती हूँ तो एक अच्छा मौका आप के हाथ से निकल जाता है, और जो 'हा' कहती हूँ तो आप के लिए चिन्ता होती है।"

माणिक ने अपने मनोभाव प्रकट किए, "मैं तो यही उचित समझता हू कि मुझे जाना चाहिए। अब मैं स्वस्थ हूँ मेरे शरीर में भी अब शक्ति आने लगी है और जापान में, मुझे दिन भर मेज पर बैठ के चक्की तो पीसनी नहीं पडेगी—यह तो किसी नवाब जादा की हवा खोरी के समान होगा। नीलामी माल देखना तो एक प्रदर्शनी देखने के समान है, और सब रकम खरीदने में भी मुझे कौन से पत्थर ढोने पडेंगे ? ईश्वर ने तो मुझे यह एक बहुत अच्छा मौका दिया है। तिसपर भी आपकी जो राय हो सो ही ठीक।"

जर विचार करती हुई चिहुँक कर बोल उठी "मुझे और कुछ नहीं कहना है।" माणिक ने जो कुछ कहा था उसका आधा भी जर ने नहीं सुना था। "मैं आप के जाने से यहाँ अकेली पड जाऊंगी। आप का साथ मुझे बहुत पड गया है, पर आप जाइए, मिस्टर माणिक चन्द यहाँ मेरा भी एक—"

माणिक ने साश्चर्य पूछा। "कहते हो, जरयानो ?"

"आज के अखबार में

अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए इस पत्र को माणिक पढ़ता जाता था और विचार सागर में गोते खाता जाता था। कभी कुछ बड़बड़ाता तो कभी चुपचाप सोचने लगता। फिर उसने पत्र उठाया और पढ़ कर यही निश्चय किया कि, "चलना तो अवश्य ही चाहिए और हो सके तो आजही, आजही जाने में अधिक शोभा है। ऐसे मालिक फिर खोजने से भी नहीं मिल सकते। इसने मुझे नौकर रखा है कि गोद लिया है? मैं यहाँ नौकरी करता हूं कि सेठाई? बीस रुपये का एक साधारण गुमाश्ता, और वह काश्मीर हवा खाने जाए। घर जाने की छुट्टी मांगू तो बिदाई के साथ जाडे के कपड़ों के जोड के जोड मिलें। उसकी पुत्री की ओर से अलग भेंट मिले। बीस के बाद एक दम सौ की तरक्की। यदि मैं एक दमड़ी मासिक पर भी इनकी नौकरी करू तो भी मैं इनसे उऋण नहीं हो सकता।" इस प्रकार बड़बड़ाते हुए उसने पत्र पढ़ा और अन्त में सोच विचार कर जर के कमरे में गया।

वह परदे के बाहर खड़ा होकर पूछने लगा। "मे आई कम इन, जरवानो?"

अन्दर से उत्तर आया, "बाई आलमीन्स,"।

माणिक अन्दर गया। जर ने उस काट छाँट किये हुए कागज़ को फाड कर फेंक दिया, और माणिक चन्द को सामने की कुर्सी पर बैठने को कहा।

माणिक—"मेरे आने से आप के ज़रूरी कार्य में बाधा तो नहीं हुई?"

जर ने भी सभ्यतापूर्ण उत्तर दिया। "बिलकुल नहीं।"

"तो कृपा कर के इस पत्र को"—जर ने पत्र लेकर उसको ... पढ़ा। पढ़ने से उसके मुख मण्डल पर विचित्र

चोवीसवाँ प्रकरण

कोमराम्की और हिन्दुस्तानी जबान

अपने महल के एक कमरे में कोमराम्की बैठी हुई है। यद्यपि उसकी अवस्था २५ वर्ष की है फिर भी वह पन्द्रह सोलह वर्ष के बाला जैसी सुकुमार है। उसका मुख अंडाकार और नाक चिपटी है। उसकी कबूतर सी पतली गर्दन और भौंरे से काले बाल थे। उसके उमडे हुए गाल और बैठी हुई आँखें ऐसी मालूम पडती थीं मानो किसी ने चीन की पुतली बना कर उस की आँखों के गढे में काच की गोली बैठा दी हो। कमरे में एक कोने में चाय की तपेली रखी हुई थी। और एक कोने में एक अंगीठी, जिसको जापानी 'हब्शा' के नाम से पुकारते हैं, बराबर सुलगा करती थी। छोटी छोटी तिपाइयों पर उत्तमोत्तम कारीगरी के हाथ के बने हुए फूलदान शोभायमान थे। कमरा भी छोटा ही सा कबूतर के दरवाजेके समान था। एक कोने में सुन्दर जिल्द की पुस्तकों का ढेर लगा था। दूसरे कोने में एक लालटेन जैसे काच के चौखटे में गौतम बुद्ध की स्फटिक की मूर्ति थी। यह मूर्ति पद्मासन में बैठी थी। इस मूर्ति पर ताजे फूल के हार चढे हुए थे। कोमराम्की प्रतिदिन इस मूर्ति को स्नान करा, फूल के हार चढा, नमस्कार कर, इसके समक्ष जप करने बैठती। यह तक पूजा पाठ किया करती। बौद्ध धर्म की ...नी। जापान में बौद्ध धर्म की तरह भिक्षु और नचिरनशु नाम की दो शाखाएं और अन प्रिय हैं। बौद्ध मत के सिद्धान्तों

निश्चय किया। वह टेबुल पर जा बैठी और यह पत्र लिख डालाः—

काश्मीर, ता० १

"मेरे दिलके करार, जिगरके मुख्तियार और प्यारे दिल्दार"

इधर महीनों से आप के कोई समाचार न मिलने से दिल बेकरार रहा। इन्तिजार में, नयनों का खप्पड बना तुम दिल्दार के दीदार की भीख दर दर माँगती-फिरती हूं। जुदाई के आग के शोले जिगर में उठते हैं और जिगर ही में समा भी जाते हैं। अपोलो—सम्बन्धी समाचार पढ़ने के लिये रात दिन अखबार देखने पर आज यह उसमें पढा कि आपोलो के किनारे एक आदमी निकला है। मेरा दिल बार बार पुकारता है कि यह आदमी हो न हो मेरा दिल्दार ही है। ईश्वर करे मेरी धारणा ठीक उतरे। इस समय मैं मामा जी के साथ काश्मीर की यात्रा में हू। पर प्यारे, तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक तुल्य मालूम पडता है। यह पत्र पहुचते ही अपनी राजी खुशी, के समाचार तुरन्त भेजकर इस जलते हुए जिगर को राहत दें। लिखना तो बहुत कुछ चाहती हूं, पर कुछ सूझता नही। दिल को निकाल कर कागज में लपेटने का काम कुछ साधारण नही है। हे दयासिन्धु! तू मेरे प्यारे को हिन्दुस्तान पहुचा और केवल उसी के आधार पर जीने वाली के शीघ्र उसकी भेंट करा। शुभम्

तेरे दर्शनोंकी चातक

'जर'

चिट्ठीको लिफाफे में बन्द कर और उसपर ब्रिटिश कौंसिल माणिकजी अरदेशरको मिले, यह पता लिख कर टेबुल में रख दिया। दूसरे दिन सब कोई गुलमर्ग रवाने हुए।

प्यारे लगे। कहीं यह लिखा था कि "यह कोई भारतवासी होगा है जो जलमार्ग से जापान देखने आया है।" सारांश यह कि जो जिसके मन में आया वही उसने लिख मारा। सोम-रानी मनही मन यह सब पढ़ कर हवाई किले बाँधती थी। कभी कभी मात्रा यहाँ तक पहुच जाती कि, वह अपने को, पागल की तरह उसको निराहिना समझ,नाचने लग जाती। हिन्दुस्तान का नकशा और हिन्दुस्तान का भूगोल तो वह सदा अपने पास रखती। उसी में देख देख कर वह भारतवर्ष के शहरों और गांवों के नाम याद करती। किस गाव में किस विषय पर व्याख्यान देना है इसका भी वह मनही मन निश्चय कर लेती। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए। एक दिन उसने किसी समाचार पत्र में यह सम्वाद पढ़ा 'जापान के प्रसिद्ध व्यापारी लगची ने अपना हाट उलट दिया है महीने की तारीख को उसकी करोड़ों की रकम नीलाम होगी। इसकी खरीद के लिये देश देश के व्यापारियों को सूचना दी गई है। सब देशों के व्यापारी अपने गुमाश्तों को भेज कर नीलामी बोली बोलेंगे ऐसी दृढ आशा है।'

अब तो, इसके पढने के बाद सोमरानी के हवाई महल और भी ऊँचे उठने लगे। उसने निश्चय कर लिया था कि आने वाले हिन्दुओं की राह देखेगी और उन सभी में से एक को पसन्द कर उसको बौद्ध मत में लाकर उसी के साथ भारत-वर्ष चली जाऊँगी। पति को भी इतना अपने कि वह पूछे बिना पानी भी न पीये। पर में तो इस बात की थी कि सभी नीलाम की इसलिये वह अकस्मात आये हुए लिये आवश्यकीय तैयारियां करने

से बहुत ही मनमाने अर्थ लगाये हैं। प्रत्येक देश में जिस प्रकार धर्म सम्बन्धी विविध शङ्काएँ उत्पन्न हुआ करती हैं, उसी प्रकार जापान में भी होता है। रमिनु नाम के एक व्यक्ति हो गए हैं। सबसे पहिले उन्होंने बौद्ध धर्म में कितने काट छाट करके एक नवीन सम्प्रदाय चलाया था। कोमगास्की इस नवीन सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी। बौद्ध मत में इसको इतनी अधिक श्रद्धा हो गई थी, कि इस अबला ने निश्चय कर लिया था-जैसा ऊपर लिख आये हैं-कि बुद्ध ऐसे महात्मा की जन्म भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य के हो साथ विवाह करूँगी। जैसे भी हो भारत वर्ष में बौद्ध धर्म की उन्नति देखने के लिये उस का चित्त आतुर हो रहा था। जिस दिन वह ब्रिटिश लिगेशन से लौटी थी, उसी दिन से वह यह मान बैठी थी कि भगवान बुद्ध ने जापान के किनारे लगे हुए पुरुष को उसी का पाणि-ग्रहण करने के लिये भेजा है। इस समय वह मावानची और चजजी नाम के अखवार पढ रही थी। यह तो जगत प्रसिद्ध बात है कि अखवार वालो को कोई भी सुनगुनी लगी कि उन्होंने राई का पर्वत बना दिया और मनमानी बाते उस पर लिख मारीं। उक्त दोनो अखवारो में सम्पादकाचार्यों ने अटकल के घोड़े दौडाने में कुछ भी उठा न रखा था। एक ने लिखा था "यह हिन्दुस्तानी कोई जासूस है, जिसने जान बूझ कर मौन धारण कर लिया है।" दूसरे स्थान पर लिखा था 'यह कोई ढोंगी मालूम पडता है जो लोगो को चकित कर रुपये चीरने आया है।' एक स्थान पर यह लिख मारा था कि 'यह कोई जापानी लेडी का आशिक मालूम पडता है, इस प्रकार अस्पताल में पड़े रहने का कारण यह है कि उसकी माशूका वहाँ उसको देखने जाती है। रहम खाती है।'

प्यारे मेरे । कहीं यह लिखा था कि "यह कोई भारतवासी होगा है जो जल-मार्ग से जापान देखने आया है ।" सारांश यह कि जो जिसके मन में आया वही उसने लिख मारा । शेमगास्की मनही मन यह सब पढ़ कर हवाई किले बाँधती थी। कभी कभी आशा यहाँ तक पहुंच जाती कि, वह अपने को, पागल की तरह उसकी विवाहिता समझ नाचने लग जाती। हिन्दुस्तान का नकशा और हिन्दुस्तान का भूगोल तो वह सदा अपने पास रखती। उसी में देख देख कर वह भारतवर्ष के नगरों और गावों के नाम याद करती । किस गाव में किस विषय पर व्याख्यान देना है इसका भी वह मनही मन निश्चय कर लेती । इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए। एक दिन उसने किसी समाचार पत्र में यह सम्वाद पढ़ा 'जापान के प्रसिद्ध व्यापारी लगची ने अपना टाट उलट दिया है महीने की . तारीख को उसकी करोड़ों की रकम नीलाम होगी। इसकी खरीद के लिये देश देश के व्यापारियों को सूचना दी गई है । सब देशों के व्यापारी अपने गुमाश्तों को भेज कर नीलामी बोली बोलेंगे ऐसी दृढ़ आशा है।'

अब तो, इसके पढ़ने के बाद शेमगास्की के हवाई महल और भी ऊँचे उठने लगे। उसने निश्चय कर लिया था कि आने वाले हिन्दुओं की राह देखगी और उन सभी में से एक को पसन्द कर उसको बौद्ध मत में लाकर उसी के साथ भारत-वर्ष चली जाऊँगी । पति को भी इतना अपने वश में करूंगी कि वह पूछे बिना पानी भी न पीये। पर सब से भारी पीड़ा तो इस बात की थी कि अभी नीलाम को चार

यह अकस्मात आये हुए हिन्दुस्तानी

कीय तैयारियां करने में तन, मन

लीन हो गई।

कुछ दिनों के बाद रोगी की जबान खुली। वह कुछ कु
बोलने लगा। ज़बान में बोलने की शक्ति आते ही उसने अप
पुराने कपड़े के विषय में पूछा, "क्या मेरे शरीर पर से कु
कपड़े मिले थे? वे कहाँ हैं?" कान्सेल की आज्ञा से एक नौक
ने दौड़ कर एक पोटली ला दी। उसको खोल कर उसने कप
तिपाई पर रख दिए। मरीज़ ने पागल की तरह खड़े होक
उन कपड़ों को उलट-पलट कर उसमें से एक अधवहियाँ औ
एक लम्बी डोरी ढूँढ निकाली। उसको वह बारबार चूमत
और आंखों से लगाता। आस पास के लोग यह कौतुक देख
चकराने लगे। डाक्टर को अब उसकी आरोग्यता की चिन
होने लगी।

डाक्टर ने उसको खाट पर बैठाते हुए कहा, "आप बैठ जाइए
यह क्या है, जिसके देखने से आप इतने अधिक हर्षित हुए है

मरीज़ ने हर्ष से कहा, "यह हमारे धर्म की निशानी
माइ लार्ड। मैं पार्सी हूं। यदि ये चीजें मुझे पीछे न मिल
होतीं तो कदाचित् मैं इस दुःख से फिर बीमार पड़ जाता।

ब्रिटिश एलची ने प्रश्न किया, "आपका शुभ नाम क्या है।

मरीज़—"माणिक जी अरदेशर, मैं आर्मी मेडिकल सर्वि
में लेफ्टनेन्ट होकर अपोलो जहाज से हाँगकाँग जा रहा था
मार्ग में बीच समुद्र में जहाज डूबने के कारण एक तख्ते
सहारे मैं यहाँ आ लगा हूँ।"

एलची ने उदास चित्त से प्रश्न किया, "आखिरकार व
गया क्या?"

यस, सर," फिर उसने थकावट से आशक्त है
प्रश्न दूसरे समय पूछने के लिये नम्र विनत

था। रूटर की एजन्सी द्वारा यह समाचार चारो तरफ फैल गया। जापानी समाचार पत्र के कालम के कालम इसी समाचार से भरे रहते हैं। लोगो ने अनुमान तो करही लिया था पर आशा के कच्चे तार के सहारे शुभ समाचार की आशा करते थे। किन्तु आशा के वे भी तार अब टूट गये।

कितनी स्त्रियाँ विधवा हुईं, कितने बालक मा बाप से रहित हुए। मा बाप बहिन, भाई मित्र और दूसरे हजारो लोग अपेलो के साथ ही शोक-सागर में डूब गए। हजारो घरो में कुहराम मच गया और बच्चा बच्चा रोने लगा। स्टीमर के मालिक के घर भी शोक छा गया। केवल माणिक जी के घर ही हर्ष और चिन्ता मिश्रित आशा की जाती थी। शेष सब डूबे हुए लोगो के सगे सम्बन्धी, हेली मेली जो स्टीमर सम्बन्धी समाचार के लिये चातक हो रहे थे, निराश हो गये। माणिक जी के देखने में तो बहुत लोग लाइफ बोट पर उतारे गए थे। पर पीछे से उनका क्या हुआ सो माणिक जी को नही मालूम था।

समाचार पत्र में यह खबर बाँचने के बाद, एक दिन कोमाको सबेरे ही से नहाने धोने और बाल संवारने में लग गई। बाल संवारने में जापानी स्त्रियाँ कितनी निपुण होती हैं, यह किसी से छिपा नहीं है केश सँवारने के बाद उसने दो तीन पोशाक पहिनी और उतारी। अन्त में एक घन्टा बीतने पर उनमें से एक पोशाक कुछ पसन्द आयी। उसके पहिनने के बाद उसने हीरा मोती से अपना शरीर लादना शुरू किया। हीरा मोती के अमूल्य अलकारों से उसकी शोभा चौगुनी हो गयी। चलते समय उसने अतर अपने रेशमी रूमाल पर छिड़क लिया और ब्रिटिश एलची के यहा पहुची। वहाँ उसने कार्ड भेजा। एलची इसको जानता था। उसने . .

उसको अन्दर आने की आज्ञा दे दी। वह बड़े ठाट बाट से अन्दर आई। एलची ने उसका उचित स्वागत किया। फिर उसके आने का कारण पूछा।

"कोमरास्की ने आन्तरिक उत्कंठा से अपने आने का कारण बताया। "मुझे उस हिन्दुस्तानी से भेंट करनी है। आप यदि उस से मेरी जान पहिचान करा दें, तो बड़ा उपकार हो।

एलची—खुशी से, चलिए, मैं भी उसी से मिलने जाने वाला था।

एलची और कोमरास्की दोनों माणिकजी के यहाँ पहुंचे। माणिकजी आज और दिनों से बहुत अच्छी स्थिति में थे।

एलचीने माणिकजी से कोमरास्की का परिचय देते हुए कहा "मिस्टर माणिक जी अरदेशर लेफ्टिनेन्ट, मैं आपसे यहाँ की एक उच्चश्रेणी की उमरावजादी से परिचय कराता हूं। यह युवती यहां के विद्वान तथा धनी-मण्डल का एक सुगंधित पुष्प है। यह अंग्रेजी, लैटिन, फ्रेञ्च, जर्मन, संस्कृत, हिन्दी और पाली भाषाओं में खूब अच्छी तरह जानती हैं। जापानी तो इनकी मातृभाषा ही है, इस भाषा में यदि यह पंडिता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? दूसरे यह बहुत अच्छी व्याख्यानदात्री और उत्तम कोटि की लेखिका हैं। जापानी स्त्रियों को इनके कारण बहुत गौरव है। मैं समझता हूं कि आप इनके परिचय से बहुत प्रसन्न होंगे। इनका शुभ नाम मिस कोमरास्की।" हाथ में हाथ मिला कर, कोमरास्की की तरफ घूम ", "लेफ्टेनेन्ट साहेब का नाम मिस्टर माणिक। इतना कह थोड़ी देर बैठने के बाद, एलची साहब ने तो अपना रास्ता लिया। ने एक कामिनी की तरह सिर नीचा कर के

उसको अन्दर आने की आज्ञा दे दी। यह बड़े ठाट बाट से अन्दर आई। एलची ने उसका उचित स्वागत किया। फिर उसके आने का कारण पूछा।

"कोमरास्की ने आन्तरिक उत्कंठा से अपने आने का कारण बताया। "मुझे उस हिन्दुस्तानी से भेंट करनी है। आप यदि उस से मेरी जान पहिचान करा दें, तो बड़ा उपकार हो।

एलची—खुशी से, चलिए, मैं भी उसी से मिलने जाने वाला था।

एलची और कोमरास्की दोनों माणिकजी के यहाँ पहुंचे। माणिकजी आज और दिनों से बहुत अच्छी स्थिति में थे।

एलचीने माणिकजी से कोमरास्की का परिचय देते हुए कहा, "मिस्टर माणिक जी अरदेशर लेफ्टिनेन्ट, मैं आपसे यहाँ की एक उच्चश्रेणी की उमरावजादी से परिचय कराता हूँ। यह युवती यहा के विद्वान तथा धनी-मण्डल का एक सुगंधित पुष्प है। यह अंग्रेजी, लैटिन, फ्रेञ्च, जर्मन, संस्कृत, हिन्दी और पाली भाषाओं को खूब अच्छी तरह जानती हैं। जापानी तो इनकी मातृभाषा ही है, इस भाषा में यदि यह पंडिता हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? दूसरे यह बहुत अच्छी व्याख्यान दात्री और उत्तम कोटि की लेखिका हैं। जापानी स्त्रियों को इनके कारण बहुत गौरव है। मैं समझता हू कि आप इनके परिचय से बहुत प्रसन्न होंगे। इनका शुभ नाम मिस कोमरास्की है।" हाथ में हाथ मिला कर, कोमरास्की की तरफ घूम कर एलची ने कहा, "लेफटेनेन्ट साहेब का नाम मिस्टर मणिक जी अरदेशर है। इतना कह थोडी देर बैठने के बाद, खैर कर एलची साहब ने तो अपना रास्ता लिया।

ने एक कामिनी की तरह सिर नीचा कर के

कहा,–"लेफटनेन्ट माणिकजी, आपकी मुलाकात से मुझे जो आनन्द हुआ है उसका वर्णन करने के लिये मेरी जिह्वा में शक्ति नहीं है।"

माणिक ने सभ्यता से उत्तर दिया। "वही दशा सेवक की भी है; ऐसे परदेश में, मुझ परदेशी की चिन्ता कर के, हाल पूछने आने वाली सुशिक्षिता अमीरजादी का एक एक कदम मेरी आँखों पर— ।"

कोमरास्की ने बात काट कर पूछा "खैर, अब आपकी तबीयत कैसी है ?

माणिकजी ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "आपकी कृपा से अब तो बहुत फुरसत है, तो भी अभी घूम फिर नहीं सकता बहुत बोलने से थक जाता हूं ईश्वर की इच्छा से थोड़े दिनों में बिल्कुल तन्दुरुस्त हो जाऊंगा।"

कोमरास्की एक सभ्य, और सुशिक्षिता युवती थी, उसने डूबे हुए जहाज सम्बन्धी कोई चर्चा छेड कर माणिक जी के हृदय को दुखाना उचित नहीं समझा। दूसरे यह प्रथम ही का मिलाप था, इससे उसने साधारण बातचीत की और शेष बातें आइन्दा के लिए छोड इस प्रकार प्रश्न किया —

"यहाँ की आबोहवा तो आपको हिन्दुस्तान से विपरीत नहीं मालूम पडती होगी ?"

माणिक जी ने धीरे से उत्तर दिया "यहाँ का हवा पानी हिन्दुस्तान की आबोहवा से भिन्न तो है, पर लाभकारी है। आपका देश एक टापू है, हवा यहाँ बाहुल्य से प्राप्त हो सकती है, पर हमारे देश में यह बात नहीं है।"

कोमरास्की—आप के यहाँ तो बहुत गरमी पड़ती है ?

माणिक—जी, हाँ, कितनी जगह तो अधिक

करने वाली गरमी पडती है। अलबत्तः हिमालय, काश्मीर, शिमला, मसूरी, आदि स्थानों में ठंढक रहती है। इन स्थानोंमें धनी लोग गरमी के दिनों में हवा खाने जाते हैं। बिचारे गरीब लोग ते। उस गरमी में भी पेट का गढा पूरा करने के लिये धूप में भुलसते हैं। मुलतान की तरफ़ तो गजब की गरमी पड़ती है।

कोमरास्की—आपकी जिन्दगी सलामत है, इस बात की खबर आपके सगे-सम्बन्धी को मिल गई होगी ?"

माणिक जीने जन्म-भूमिके स्मरणसे दीर्घ श्वाँस लेकर कहा "कल ही मैंने पत्र लिखा है। पन्द्रह दिनों में वह पहुंचेगा हो सकता है कि, अखवार पढ़ने से उनको खबर लगी हा, ब्रिटिश कोन्सल साहबने मेरा पता ठिकाना पूछा था, उन्होंने भी मेरे माता पिता के समाचार भेजे हो ते। कोई आश्चर्य नहीं।"

कोमरास्की–यदि आज्ञा हो ते।, मैं पूछूँ कि, आपकी जात क्या है ?

माणिक-जी–मैं पारसी हू। आपको मालूम ही होगा कि ईरान में मुसलमानों का राज्य होने पर, धर्म सम्बन्धी झगड़ों के कारण, हिन्दुस्तान में उतरे हुए ईरानियोंने भारत वासियों की शरण ली थी। इस समय ते। ईश्वर की कृपासे पारसी ब्रिटिश राज्य में एक उन्नत कौम गिनी जाती है।"

कोमरास्की–यदि मैं भूलता नहीं ते।, जरदस्त पैगम्बर के सम्प्रदाय वाले आतिश परस्तों में से आप एक होंगे।

माणिक—जी, आप के विचार में कुछ ही फरक है। मैं जरथोस्ती मत का ते। हू, इसमें शक नहीं; पर आतिश परस्त नहीं—बल्कि खुदा परस्त हू। हम लोग अग्नि, सूर्य, चन्द्र और

पानी को एक दृष्टि से देखते हैं। पर उनको हम लोग ईश्वर कर के नहीं पूजने बल्कि ईश्वर से पैदा भए हुए उसके प्रतिनिधि स्वरूप पूजते हैं। हम लोगों को आतिश परस्त कहने वाले मुल्ला और पादरी साहब बडी भारी भूल करते हैं। पारसी का एक एक बच्चा अपने को खुदापरस्त जानता और मानता है, जब दूसरे मजहब के मुल्ला हम को आतिशपरस्त ही सिद्ध करने में जिन्दगी गंवाते हैं।"

कोमरास्की ने अटकते अटकते पूछा, "खैर, क्या किसी जात का आदमी पारसी हो सकता है ?

माणिक जी ने मुँह बनाकर उत्तर दिया "कभी नहीं।"

कोमरास्की—ऐसा क्यों ? जो धर्म सच्चा है, उसमें दूसरे के आने से हानि ही क्या ?"

माणिक,—मेरे विचार से इसमें कोई ऐसा नुकसान तो नहीं है, पर यह एक रिवाज पड गयो है कि जहा तक बने जरथोस्ती धर्मतर को जरथोस्ती न बनाया जाए। रिवाज के आगे दलील टिक नहीं सकती। प्राचीन काल में लोग अपने मजहब के, अपने देश के और अपने धर्म ग्रन्थ के बाहर के लोगो को दूसरे, यहा तक कि दुश्मन, समझते थे। मुसलमान अपने को छोड और सबों को काफिर कहते हैं, हिन्दू दूसरों को म्लेच्छ और पारसी दरवन कहते हैं। हाल में बम्बई में धम के झगड़ो का बाजार गर्म था पर महीनो से जल के फेर में पडने से मुझे पता नही की अन्तिम फल क्या हुआ।"

कोमरास्की ने व्यग्रता से पूछा। आपके ध्यान में और भी कोई ऐसी जाति है जो विधर्मियों को अपने धर्म में नहीं लेतों ?

माणिक—हां, हा, हिन्दू अपनी जात में दूसरो को नहीं लेते, उसी प्रकार यहूदी भी। मेरा एक मित्र एक यहूदिन

बहुत ही बेतरह फ़िदा हो गया था, उसने बहुत चाहा कि वह यहूदी हो जाय, पर यहूदियों ने ऐसा नहीं होने दिया।

कोमरास्की—पर आजकल के सुधारकों ने तो सब को एक कर डालने की–जात बिरादरी के बन्धन तोड़ डालने की बहुत चेष्टा करनी शुरू की है। मैं तो इस बातको बहुत पसन्द करती हूं।

माणिक—सबसे पहिले यह विचार गौतमबुद्ध के मन में आया था। सच पूछिये तो वैसा ही होना भी चाहिए। प्राणी मात्र एक हैं। हां, कोई चार आंखो वाला या दो पख वाला हो तो वह परजात कहा जा सकता है, यह प्रश्न दूसरा है। बुद्ध जी ने जात–बिरादरी, देश परदेश सब के झगडे ताक पर रख कर अपने धर्म में सब जात के लोगों को सम्मिलित होने की खुली इजाजत दे दी थी।

बुद्ध के नाम से प्रसन्न होकर कोमरास्की ने कहा "यों तो मुहम्मद और जीसस ने भी दूसरे धर्म वालों के लिये अपने धर्म के दरवाज़े खोल दिए हैं।"

माणिक—ठीक है, पर वे बुद्ध से पाँच सौ वर्ष बाद हुए हैं। यह तो इतिहास ही पुकारता है। स्वयं ईसी ने बुद्ध के चेलों से कितना ज्ञान सीखा है, और मुहम्मद शाह ने तो जीसस के भी बाद अपना मत चलाया था। इस हिसाब से, सच पूछिये तो इन्सान की हमदर्दी का जानने वाला पहिला महात्मा बुद्ध ही था।

कोमरास्की—तब आप बुद्ध को एक सच्चा महात्मा और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त को माननेवाला अवश्य मानेंगे?

माणिक,—अवश्य, स्वयं मेरी बुद्ध पर बहुत श्रद्धा है। यद्यपि यूरोपियन पादरियों ने उनको बहुत बुरा बताया है और नास्तिक तथा जड़वादी कहा है, पर हाल की यूरोप

की खोज(गवेषण) के अनुसार लोग उनको एक महात्मा मानने लगे हैं। हमारे जरथोस्त साहब ने भी 'जन्द अवस्था' में उनकी खूब चर्चा की है।"

कोमरास्की ने हर्ष से फूल कर पूछा, "मिस्टर माणिक जी ! क्या आप जानते हैं कि जापान का एक बडा हिस्सा उस महात्मा को मानता है, जिसने इस ससार में भ्रातृ-भाव की नींव डाली थी ? खैर, आप के विचार में बुद्ध के शुभ सिद्धान्तों में कौन कौन अच्छे हैं ?"

माणिक,—यदि बुद्ध ने ईश्वर का अस्तित्व माना होता और स्वर्ग नरक को कायम रखा होता तो मैं उन्हें ससार भर के सब महात्माओं में श्रेष्ठ समझता। इस अवस्था में तो मैं उनको एक सच्चा आदमी मानता हू। जिस बात को वह नहीं समझते थे उसको उन्होंने केवल दिखाव के लिये स्वीकार नहीं कर लिया है। यह तो अपनी अपनी बुद्धि की बात है। आत्मा और परमात्मा की बात उनके ध्यान में नहीं आई होगी। उनके विचार उनके साथ। पर उन्होंने दूसरी बहुत सी बातों को सिद्ध किया है। दास-प्रथा को मिटाने वाला, प्राणी मात्र पर दया करने वाला और ऐक्य ही को परम धर्म के तौर पर प्रचार करने वाला प्रथम नर वही था।

अब कोमरास्की को मालूम पडा कि बहुत बोलने से माणिक जी थक गए हैं। इससे दूसरी बार मिलने का निश्चय कर, उनकी आज्ञा लेकर, सभ्यतानुसार हाथ मिला कर, वह वहाँ से चलती बनी। बहुत थक जाने के कारण, माणिक जी ने उस जापानी लेडी के चले जाने के बाद शान्ति से निद्रा लेने के लिये बिछौने की शरण ली।

पचीसवाँ प्रकरण

मोरगन—सम्वाददाता

ठीक सन्ध्या समय "कलकत्ता स्टेट्समैन" का सम्वाददाता माणिक जी से मिलने आया। इसके पहिले अनेक सम्वाददाता अपोलो सम्बन्धी खुलासा हाल जानने की इच्छा से धक्के खा चुके थे। माणिक जी उस हृदय भेदक घटना के स्मरणमात्र से बहुत व्याकुल हो जाता था, इससे बीमारी का बहाना करके बातें उड़ा देता था। पर 'स्टेट्समैन' से भारत वर्ष का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से लाचार होकर माणिक जी को उसके साथ बातचीत करनी पड़ी। दूसरे अपने सगे-सम्बन्धी और इष्टमित्रों का भी विचार उनके मनमें चक्कर काट रहा था—वे लोग भी पढ़कर समाचार पा लें, इस कारण से भी उन्होंने सम्वाददाता के साथ बात करनी शुरू की। वह भी संक्षिप्त लिपि में सब वृत्तान्त लिखता गया।

"मैं हौंगकौंग के लिये अपोलो में सवार हुआ। मेरी पल्टन भी इसी में थी। जहाज में कितने देशी तथा अंग्रेज़ यात्री भी थे। माल असबाब भी भरपूर था। ज़हाज़ बराबर चला जाता था और किसी को स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न था कि ईश्वर की ऐसी कोप दृष्टि होगी। स्याम की खाड़ी से होकर जहाज जब चीन के समुद्र में दाखिल हुआ तब तूफ़ान के रंग ढंग मालूम पड़ने लगे। कप्तान बहुत घबराया। थोड़ी देर बाद उसने हम लोगों को चेतावनी दी कि बड़े ज़ोर शोर से तूफ़ान आने वाला है और इसी बीचमें एक भारी दरियाई तूफ़ान का हमलोगों को सामना करना पड़ेगा।

देखते देखते समुद्र ने भयंकर रूप धारण कर लिया। एक एक लहर ऐसी जबरदस्त आती कि जहाज उसके आगे खिलौना मालूम पड़ता। कभी वह जहाज को आसमान में पहुंचाती, तो कभी नीचे पानी में दबाती। मल्लाह लोग अपने जीवन को हथेली पर रखकर इधर उधर खूब दौड़ धूप करते थे। उन्होंने तूफान का सामना करने के लिये कोई भी बात उठा न रखी थी। पर जब पवन देव और समुद्र दोनों स्थान के बाहर हुए तब किसकी मजाल है जो सामने टिक सके? हजारों गट्ठर और सैकड़ों सन्दूके उठा उठा कर समुद्र की भेंट की गई और लाखों का माल चुपचाप समुद्र को घूस के रूप में दिया गया; पर सब व्यर्थ। मालूम पड़ता था कि समुद्र ने जहाज ही पर अपनी दृष्टि लगाई है, वह और किसी से सन्तुष्ट नहीं होने का, वह उसी को हड़प करके शान्त होगा। कप्तान ने दुर्बीन लगा चारों तरफ देखा कि बचने का कहीं रास्ता नहीं है। दुर्घटना का चिह्न भी (डेंजर सिगनल) उसने चढ़ा दिया था। दुर्बीन से कप्तान को एक जर्मन और एक फ्रेंच जहाज सहायतार्थ आते हुए देख पड़े। "उन लोगों ने अपनी चाल खूब बढ़ा दी है, अब आही पहुंचते हैं" आदि कह कर कप्तान यात्रियों को धीरज दिलाता था। अपने कर्मचारियों को उसने कई आज्ञाएँ दीं। सबों ने तनमन से परिश्रम किया। पर ईश्वर की इच्छा के आगे किस की चल सकती है? लहर का एक ही आघात जहाज को उलट देने में समर्थ था। पर दूसरी ओर से दूसरी लहर आकर उसको उभाड़ देती। लाइफ बोट छोड़ गये। यात्री उन्हीं पर परमेश्वर के नाम पर उतारे गए कप्तान, इन्जिनियर और एक वृद्ध मल्लाह जहाज पर रहे। कोई लाइफ बोट इधर तो कोई उधर

जाने लगे। हमलोगों के देखते देखते उस सुन्दर जहाज़ के
समुद्र निगल गया। इसके बाद दो दिन तक हमलोग अन्न
जल बिना भटकते रहे। हम लोग बीस आदमी थे। लोचू
टापू के पास फिर हमलोगों के दुर्भाग्य से पवन देवने दर्श
दिए। एक ही झपेटे में एक चट्टान से टकराकर डोंगी चौप
गई और जीवनदाता ईश्वर ने मझे बचाकर यहाँ ला फेंका
यही थोड़े मे वृत्तान्त है। मिस्टर मोरगन! यदि मैं सब वृत्तान्
कहने लगगा तो थकावट तथा घटना के स्मरण से पुन: बीमा
पड जाऊँगा, अतएव आप इस समय मुझे क्षमा कीजिए
दूसरी बार भेंट होनेपर मैं आपको सब व्यौरेवार सुनाऊँगा।

मोरगन—इन सब संकटों मे भला आपको कोई याद भ
आता था, उस समय आपका हृदय क्या कहता था?

प्रेम के आवेश में आकर माणिक जी ने, जाते हुए मोरग
को रोककर, अपने मन का हाल कहा। "बस इतनी ही
यदि मरूँगा तो भी इज्जत-आबरू से शाहनशाह की से
में अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए। एक ईश्वर ही का सहा
था, और वही याद आता था। मैं तो यह सोचता था कि य
दीनानाथ को मेरी रक्षा करनी मंजूर होगी तो यह कोई ब
बात नहीं है, नहीं इस समय तो काल के गाल में पड़ा ही
पर उस दीन बन्धु ने केवल एकही व्यक्ति के भाग्य से मेरी
दृष्टि फेरी। हे सर्वअन्तर्यामी! न जाने इस समय उसका
हाल होगा? वह किस प्रकार अपने दिन काटती होगी?
दया सिन्धुने उसके पुण्य से मेरी रक्षा की है वही परमेश
उसको धैर्य दे। क्या कहूँ मिस्टर मोरगन, लाइफ बोट
चढ़ते समय मैंने केवल एक ही तसवीर, एक ही प्यारी फो
अपने जिगर के साथ रख ली थी। पर अफसोस, समुद्र

लहरों ने उस फोटो का भी अस्तित्व न कायम रखा । यद्यपि समुद्र की लहरें मेरे ध्यान मे से उस प्यारी सूरत को मिटाने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकतीं, पर हाय ! अफसोस ! ! मेरी एक मात्र धीरज देने वाली वह फोटो, मेरा दिल जीत लेने वाली वह तसवीर !

मोरगन ने दया से आर्द्रचित्त होकर कहा । "मिस्टर माणिक जी, आपका चित्त अत्यन्त व्याकुल नजर आता है मैं आपकी और कोई सेवा तो क्या कर सकता हू, पर हाँ, यदि आप अपने प्रेमपात्र का पता बतायें तो आप के जीवन तथा आरोग्यता के समाचार मैं आपकी माशूका के पास तार द्वारा पहुचा दू । कल जो जहाज रवाना होगा, वह हाँग कौंग के बन्दर से होता हुआ जायगा । वहाँ से यदि तार दिया जायगा तो चार दिन मे आपकी माशूका को मिल जायगा ।* यदि आपको किसी प्रकार की अड़चन न हो तो आप मुझे उसका नाम और पता बताइए ।"

माणिक जी ने गद्गद् स्वर से उत्तर दिया, "मिस्टर मोरगन, इसके लिये मैं आपका यावज्जीवन ऋणी रहूगा । उसका नाम मिस जरबानो पदलजी सौदागर केअर-आफ, पदल जी सौदागर, लाहौर, इण्डिया है मिस्टर मोरगन, आपको भी किसी का इश्क लगा है कि नहीं ? आपने भी प्रेम-पाश में फसकर ठोकरें खाई हैं कि नहीं ?"

मोरगन ने हँसते हँसते कहा, "मुझसे पूछते हैं ? लेफ्टनेन्ट माणिक जी ! भला कौन ऐसा यूरोपियन का बच्चा होगा

---

* जिस समय कथा लिखी गई थी, उस समय भारतवर्ष से जापान का तार का सम्बन्ध न था अब जापान के बराबर तार आते जाते हैं ।

जो जवानी में लैला-मजनू होने से बचा ? अब तो मक्खन और पाव रोटी के साथ इश्क करते हैं। कहा भी है कि,—

"भूल गए राग रंग भूल गई छकड़ी,
तीन बात याद रही, नून तेल लकड़ी ?"

इसके बाद, इधर उधर की थोड़ी बहुत सी बातें करके मोरगन चला गया। उसने ऐसी व्यवस्था की कि हैंग कौंग से 'स्टेट्समैन' के आफिस का तार दिया जाए और 'स्टेट्समैन' वाला उर को तार दे। यही हुआ भी।

मिस कोमरास्की माणिक जी से मिल आने के बाद पगली सी हो गई थी। वह मन ही मन विचार करती कि, "अहा कैसा सुन्दर युवक है, कैसा विद्वान् है, बर्ताव भी कैसा अच्छा है ? पारसी धर्म को छोड़ क्या यह बौद्ध मत स्वीकार करेगा ?" यह प्रश्न बराबर चिन्ता के पवन के समान उसके मन में उठता। उस बिचारी को यह खबर कहाँ कि उसने तो अपना दिल दूसरे के हाथ बेच दिया है।

माणिक जी के हृदय पर तो किसी दूसरी ही प्रेम-मूर्त्ति का साम्राज्य था उसका हृदय मन्दिर कोमरास्की से कहीं अधिक सुन्दर मूर्ति को स्थान दे चुका था। माणिक जी के नयनों में काजल या सुरमा आँजने तक की अब जगह नहीं बची थी। कोमरास्की की उन नयनों में कहाँ गुजर ? किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"जिन नैनन में पी बसे, दूजो कौन समाय;
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाय।"

छब्बीसवां प्रकरण

मगल तार

आजकल हमारे तीनों यात्रियों का काफला गुलमर्ग में पड़ा है। माणिकचन्द उर्फ हस्तिदानचन्द पहिले से अब बहुत अच्छी स्थिति में हैं चेहरे पर नूर आगया है, गाल भी सहज फूल आये हैं, आँखें गढे के बाहर निकल आई हैं। भुजा और पिंडुलियों में भो थोडा बहुत माँस भर गया है, एकाध महीना यदि और काश्मीर के जल वायु का सेवन करें तो माणिकचंद दूसरे ही माणिकचन्द हो जाएँ। पर मालिक के हुक्म के आगे उसकी क्या चले ? निरुपाय, गए विना उसकी छुट्टी न थी। अब वह दो ही चार घन्टे का गुलमुर्ग का मेहमान था। उसके लिये तो काश्मीर और जापान दोनों एक ही से थे। बल्कि जापान जाने का उसके मन में अधिक हर्ष था। यहा तक कि वह स्वप्न में भी बडबड़ाता कि, एकवार जापान अवश्य देखना चाहिए।" उसका स्वप्न अब सच्चा होना चाहता है। दूसरे के सिर जापान जाने का प्रसंग अनायास ही आ पडा। परन्तु जर से होने वाली जुदाई उसका कलेजा चीरती। जर ने उस पर थोड़े उपकार नहीं किए थे। पहिले तो उसको नौकर रखने की सिफारिश करनेवाली-उसको रोटी देनेवाली-जर ही थी। फिर उसके आफिस के काम मे उसको सहायता देनेवाली स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार देनेवाली, घर जाने के लिये छुट्टी दिलाने वाली, बीमारी में पैसे रुपये तथा दावा दारू का ख्याल रखने वाली, दवा पिलाने वाली, पथ्य देने वाली, आबोहवा बदलने के लिये यहां लाने वाली, प्रत्येक विषय में उसकी अन्तः

कारण से चिन्ता करने वाली, सच्चे मित्र का काम देने वाली, जर विना दूसरा कौन था? पालतू जानवर भी मालिक से अलग होते समय शोक प्रदर्शित करता है। यह माणिक तो आखिर मनुष्य ही था, विद्वान था, सभ्य था, और बुद्धिमान था। इस समय जर के सब उपकार एकत्र होकर उसके मार्ग में आ खडे थे। वह अपने कमरे में पडा पडा विचार करता था कि, "जर के उपकारों से मैं किस प्रकार उऋण हो सकता हूं?"

जर माणिक के साथ जो इतना उत्तम वर्ताव करती थी, उसका कारण तो पाठकों से कुछ छिपा ही नहीं है। जर माणिक से अपने प्रेम पात्र की प्रति मूर्ति की तरह बडी सावधानी से वर्तती थी। माणिक की दीनता, नम्रता और विद्वत्ता पर वह तरस खाती थी। दया और प्रेम, दोनों के मिश्रण से जर, माणिक के साथ ऐसी अच्छी रीति से वर्ताव करती कि दूर से देखने वाले अविवेकी पुरुषों को उसकी पवित्रता में कदाचित् शका उत्पन्न हो सकती थी। पर इस का सच्चा रहस्य तो आप जानतेही हैं। जर अपने कमरेमें बैठी हुई नित्य के नियमानुसार डाक की राह देख रही थी। इतने में बाहर से माणिक ने पूछा, "क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?"

जर ने अन्दर से उत्तर दिया, "बडी खुशी से," माणिक अन्दर आया और कुर्सी खींच कर जर के पास बैठ गया।

माणिक ने कहा—"जरबानो, यह मेरी आपसे आखिरी भेंट है। फिर कब होगीसो तो वही परमात्मा जाने। कल तक मुझे जुदाई का अनुभव नही होता था। पर आज उस के प्रभाव मेरे दिल पर छा गए हैं। मन मुर्झा रहा है। अनेक विचारो से दिमाग भी चक्कर खा रहा है। आपकी जैसी एक देवी के दर्शन से नित्य मेरे नेत्र निर्मल होते थे, सो वे अब

महीनों तक मलीन बने रहेंगे। यदि वे धुलेंगे तो अश्रुधारा ही से। अहाहा, इस नाचीज शरीर पर आप के जो लाखों उपकार हैं, उनका थोड़ा भी बदला चुकाने के लिये यह शरीर समर्थ नहीं है।" माणिक ने ये शब्द बड़ी गम्भीरता से कहे थे इस समय उसके मुख मण्डल पर शोक के चिह्न प्रत्यक्ष नज़र आते थे।

जर ने बीच ही में उनको रोक कर कहा, "अब उन उपकारों और कृतज्ञता की बातों को ताक पर रख दीजिए, माणिकचन्द।

माणिकचन्द ने भरी हुई आवाज से कहा, "नहीं श्रीमती आज मुझे रोकिये मत। छःमहीने की बातें एक साथही कर लेने दीजिए। आप से रत्न इस संसार में भाग्य ही से प्राप्त होते हैं। धन्य हैं आपकी माता की कोख, जिनमेंसे आप ऐसी देवी का जन्म हुआ। मैं कौन? मेरी क्या बिसात? मेरे जैसे तो आप के यहां झाड़ू देने वाले हैं।"

जर-अरे रे-आज यह कैसी बड़बड़ाहट है? क्या कुछ नशा छाना है? माणिकचन्द, डु डे यू हैव गान मैड (आज आप पागल हो गये हैं क्या?)

इन शब्दों को कहते कहते, माणिक का दिल भर आने से वह चौधारे आंसू रो पड़ा। "आइ हैव नाट गोन मैड, माई डीयर सिस्टर। बट आइ स्पीक ह्वाट इज ट्रुथ (नहीं प्यारी बहिन, मैं पागल नहीं हो गया हूं बल्कि मैं सत्य कह रहा हूं) आपके जैसी पवित्र भगिनी मुझे जन्म २ में प्राप्त हो। और मेरी मरण शय्या में मेरी माता का स्थान लेने वाली, और वात्सल्यमयी जगदंबे! मुझे पुनर्जन्म देने वाली दयामयी दुर्गे। मेरी अन्नदात्री, अन्नपूर्णे; आपका कल्याण हो। आपकी मनोकामनायें परिपूर्ण हों। आप एक के लाख हों।"

उसने गंभीर स्वर से कहा। "माणिकचन्द, आपका इस प्रकार जोश से बोलना मुझे भी रुला देगा, और इतने में कहीं मामा जी आ गये तो हमलोगों के चेहरे देखते ही, वहम का, अपनी पवित्र प्रीति पर शंका करने लगेंगे। आपके जाने से मुझे कुछ कम शोच नहीं है। मैं आपको कितना और किस प्रकार चाहती हूं, यह तो मैं और मेरे खुदा ही जानते हैं। आप तो जापान में नई नई चीजें देखने में, माल टाल खरीदने में, घूमने फिरने में अपना समय बिता सकेंगे, पर मैं अकेली यहाँ क्या करूंगी? किस तरह रहूंगी? इसकी फिकर मुझे, जिस दिन बाबा जी का पत्र आया, उसी दिनसे पड़ी है। माणिकचन्द! मेरे और आपके बर्ताव से कोई कुछ भी सोचा करे, पर मैंने जिस अपनी पवित्रता और सत्यता से आपके साथ अपना निखालिस बर्ताव रखा है, उसके आप और मेरे खुदा दो ही साक्षी हैं। मुझे तीसरे गवाह की कोई आवश्यकता भी नहीं है। भाई माणिकचन्द! मैंने इतने दिनों में आज ही आपको भाई कह कर बुलाया है, इसके पहिले भी मैं आपको भाई की ही तरह समझती थी। मुझे आज आपसे एक भेद कहना है। उसको आप अपने दिल ही में दबाए रखियेगा। अब आप जापान तो जाते ही हैं और—और—

"क्यों, बहिन अरवानो, आप बोलते २ रुक क्यों गईं? मैं आपका विश्वासपात्र माणिकचन्द हूं। आपका भाई हूं। आप के पिता का खरीदा हुआ दास हूं। पर आपका तो बिना कौड़ी का गुलाम हूं। मुझसे क्यों रुकती हैं? जापान से आप को जो कुछ मगाना हो उसकी आप मुझे आज्ञा कीजिए। यद्यपि मेरी कोई गिनती नहीं है, तिसपर भी मैं अपनी शक्ति से बाहर की सेवा भी, जो कुछ होगी, करने को आज

वाणी का एक शब्द भी मेरे लिये अमृत का प्याला हो जाएगा। बोलो मेरे भाई बोलो, वह कौन होगा ?"

माणिक इसका कुछ प्रत्युत्तर दे, इसके पूर्व ही बाहर से डाकिए के आने की खबर आई और एक सिपाही तार लेकर आया। माणिक ने अपनी रजिष्टरी चिट्ठी का दस्तखत किया और जरने तार की रसीद पर हस्ताक्षर किया । जरने बडी आतुरता से तार को खोला और उसको पढ़ा। एक बार पढा, दोबार पढा नहीं उसको अनेक बार पढा और हर्ष से गदगद होकर कोच पर बैठ गई। आँखों में से प्रमाश्रु बहने लगे। एक हाथ से आँसू पोछती और दूसरे हाथ से तार को बार बार बाँचती थी। यह वही तार था जिस को मोरगन ने स्टेट्समेन के आफिस द्वारा जर के पास भेजवाया था। उसमें यह समाचार लिखा था —

"आपको, लेफ्टेनन्ट माणिक जी अरदेशर के समुद्र में से निकलने और उनकी जबान खुल जाने के कारण, मुबारकबादी देने के लिये, हमारा जापान का सम्बाददाता हमें लिखता है"

सैकड़ों बार तार पढने के बाद जर माणिक जी की तरफ घूमी। वह उनसे कुछ कहने जाती ही थी कि माणिक का मुख देखते ही वह चिहुक उठी। इतनी ही देर में माणिक ऐसा पीला क्यों पड गया ? उसकी आँखों मेंसे अश्रुधारा बहते देख जरने व्याकुल होकर पूछा, "क्यों माणिकचन्द, चिट्ठी में क्या समाचार आए हैं ? आपकी आँखों में आसू क्यों आगए ? क्या भया भाई, खुदाके लिये जल्दी कहिए।"

माणिकने सिर ऊँचा करके जवाब देना तो चाहा, पर दुःख से गला भर जाने के कारण उससे कुछ बोला न गया। आँसू बहाता हुआ चुप चाप बैठ रहा।

माणिक ने कहा, "मुझे पत्र दीजिए, मैं आपको पढ सुनाऊँ" जरने पत्र दिया और माणिक उसको पढने लगा। पत्र के सिरे पर ही लिखा था कपडे उतार कर पत्र पढना।

"स्वस्ति श्री काश्मीर मधे भाई माणिकचन्द चिरंजीव योग्य लिखा, अमोटा से तुम्हारे पिता गोविन्दराम तथा मातु श्री प्रेमदेवी के प्रेमसहित आशीर्वाद स्वीकारना, तुमको मालूम हो कि तुम्हारी धर्मपत्नी रुक्मिणी चैत्र कृष्ण दशमी को देवलोक पधारी। यह बहुत बुरा हुआ, पर ईश्वर की इच्छा के आगे किसी की नहीं चलती, इसी से सन्तोष करना चाहिए। दूसरे यह पत्र पढते ही यहाँ चले आना। कारण कि रुक्मिणी के तेरहीं को जात का न्योता जब यहाँ फेरा गया तब गुलाब चन्द के पुत्र त्रिभुवन ने तुम्हारे विषय में यहाँ ऐसी चर्चा फैलाई है कि तुम पारसी हो गए हो, तुम पारसी के कपडे पहिनते हो और उन्हीं के साथ टेबुल पर बैठ कर खाते हो। यह उसने अपनी आँखों देखा है। अतएव बिरादरीवाले हम लोगों को जात बाहर करने को तैयार हुए हैं। अब मुझे नौकरी नहीं कराना है। मुझे जो बाजरे की रोटी जुडेगी वही खिलाऊँगा। तुम एकदम यह पत्र पढते ही चले आओ।

मि० गोविन्दराम, अभयराम

के शुभाशीर्वाद"

पत्र सुनतेही जर का मुह फीका पड गया। थोडी देर विचार करके उसने माणिकचन्द से पूछा, 'क्यों माणिकचन्द, फिर आपका जापानजाना कैसे होगा ?"

माणिकचन्द ने विचार-सागर में गोते लगाते हुए कहा, "क्या करूँ जरवानो, निरक्षरों के साथ पाला पडा है।"

को कुछ भी नहीं सूझा। वह कहती थी कि अब मैं नहीं जीऊँगी-अब मैं आपका मुह नहीं देखने पाऊंगी-अब तो मैं दूसरे जन्म में आपकी दासी होकर सेवा करूँगी। पर हाय—"

माणिक के आँसू अपने रूमाल से पोछती हुई ज़र बोली, अब बस करो, भाई! ज्यो-ज्यो आप उसके गुण याद करेंगे त्यों-त्यो शोक बढता जायगा। उठो, हाथ मुह धोओ, जरा घूमो फिरो, और उस गत आत्मा के लिये अंधो, लूले लंगडों को कुछ दान करो, जिसमें उसको शान्ति मिले। उठो, अपने मन को अपने कब्जे में करो।"

माणिकचन्द ने उठ कर जर के हाथ से गिलास ले हाथ मुह धोया, और गिलास एक तरफ रख, कमरे के बाहर आया, सब कपडे उतार कर स्नान किया, फिर दूसरे कपडे पहिन जर के कमरे में आया और एक कुर्सी पर बैठ कर खूब लम्बी लम्बी साँस लेने लगा। और अपनी पत्नी के मरण समाचार वाला पत्र बाँचने में लीन हो गया।

जर माणिक के हाथ से वह पत्र छीनते हुए बोली, "अब इस पत्र को एक तरफ रखो न, आपको कोई छोटा बाल बच्चा नहीं है, यह भी बड़े शुक्र की बात है नहीं तो और भी आफत होती।"

माणिक ने रूखी आवाज तथा दबी छाती से कहा, "जर-बानो, दुःख आता है तो चारो तरफ से एक साथ ही आता है इस समय मेरे दुःख का कारण केवल मृत्यु का ही समाचार नहीं है, परन्तु इसके अलावे एक दूसरी आपत्ति है जो सामने आँखें दिखा रही है।"

जर ने व्याकुल होकर पूछा, "और दूसरी कौनसी आपत्ति है?"

'गया है अर्शमें अलावे शोर नालों का;
खुदा भला करे फरियाद करने वालों का।'

आप की तरफ का तार साधारण न था। उसने मेरी ज़िन्दगी के तार के साथ मिल कर उसको और भी मजबूत कर दिया है। यह कौन तार था? मेरी प्रसन्नता के बन्द पड़े हुए सितार का तार था—उसने बन्द पड़े हुए साज़ पर एक मिजराब मारी कि स्वरों की झंकार मेरे कानों में गूजने लगी। इस तार के पहिले मेरे दिल को उम्मेदों, नाउम्मेदों, चिन्ता और अफसोस ने अपना घर बना लिया था। पर आप के तार के आते ही इनके स्थान पर प्रसन्नता, मुबारकबादी और चैन की दुहाई फिर गई। आप को स्टीमर में बैठ कर जिन जिन सङ्कटों का सामना करना पड़ा होगा, वे सब मुझे स्टीमर नाम के स्मरण ही से भुगतने पड़ते थे। मेरी अपेक्षा तो पक्षी कहीं अधिक भाग्यवान है कि उनको ईश्वर ने पंख दिया है। यदि उस समय मेरे पंख होता तो मैं उड़ कर अपने प्यारे का दर्शन तो कर आती। मेरी छाती पर से आप के प्यार की लकीर कभी मिट नहीं सकती। आप की वह मन्द मुसकान और दोनों भ्रमरों का मिल जाना, यह तीर जिसने खाया होगा वही इसका मरम जानता होगा।—

'जब तक न जख्मकारी दिल पर लगे किसी के;
आगाह जाय कैसे क्यों कर हो दिल्लगी के?'

अपोलो बन्दर की भेंट के समय, गोरे गोरे हाथों से दिया हुआ गुलदस्ता और जहाँगीर जी के पुत्री के लग्न के दिन की पहिली मुलाकात के समय आप ने जिन आँखों से मेरी तरफ देखा था, उनको मैं रोज स्वप्न देखा करती हूं। हे दीनबन्धु! शीघ्र तू इनको मनमोहनी सूरत दिखा।

अकेले नहीं थे बल्कि पर आपके साथ कितने दूसरे जाति-बन्धु काश्मीर में थे। तो फिर आपने एक दो को अपना गवाह तो बनाया होता। ख़ैर, उसको जाने दीजिए। आप यही बताइए कि जात के कौन कौन लोग वहाँ थे? उनका नाम और ठिकाना तो बताइए?"

अब तो बहादुरचन्द चक्कर में आ गया। इतने में भीड में से एक ने मुँह बनाकर कहा, "अरे भाई ये तो वकील बारिस्टर है। दूसरे कोने से एक ने कहा, "बीस रुपये मासिक में इन्होने एक रसोइया और एक नौकर कैसे रखा होगा?" फिर एक फुलझडी छूटी कि, "अरे, ये तो सुशिक्षित हैं इनकी तो बात ही छोडो।" इतने में आबनूस को मात करने वाले रंग का एक उजड्ड बोल पडा, "भाइयो, इसमें कुछ कहने की बात नही है। सब बिरादरी वाले जानते हैं। मैं अपने साथ खेले कूदे हुए भाई के विषय में यदि कुछ कहूं, तो उनकी इज्जत पर आ बने। इससे चुप ही रहना अच्छा है।"

माणिक ने मनमें भय खाते हुए पर मुख-मुद्रा बडी गंभीर बनाकर कहा, "नही, नहीं, राघव भाई, आपको मेरी सौगंद है। यदि आपने मुझे देखा हो तो आप बिना संकोच कहिए।"

यह राघव भाई बिरोत्तमदास तीसरे चौथे दर्जे तक पढे थे। थाने के पास अर्जियाँ लिख, लडाई झगड़े की दलाली से तथा चूने मिट्टी ढोने के ठेके से अपना गुजर करते थे। समस्त बिरादरी को अपने कब्ज़े में कर लेने ही के फिराक में सदा रहते थे। ये सदा लोगो के सात सात पीढियो के छिद्र बुढियों से सुन सुनकर याद रखते और समय पर उसके उपयोग से अपना बडप्पन स्थापित करते। माणिक पढा लिखा था, इससे ये उससे सदा जलते थे। इसी कारण इन्होने जातवालो को

देवाराम (दीवानचन्द) वाली घटना स्मरण करायी। फिर क्या पूछना था ? माणिक चटपट अपराधी सिद्ध हो गया। मनमें तो उसके भय था ही, इससे वह अधिक गडबड न कर सका। मनमे तो वह समझ ही चुका था कि —

"ये अबके तो टलती नहीं बात है,
मसल है ज़मायत करामात है।"

मामला शीघ्र तय करने के विचार से माणिक ने खडे हो कर कहा, "भाइयों, बिरादरी से कोई बढ कर नही है। पञ्च यहाँ परमेश्वर हैं। इससे मैं भी यही कहता हू 'कहे पञ्च बिल्ली तो बिल्ली सही'। मैं आपका लाख बार अपराधी हू, और आप मेरे तारन हैं जो आप मुझे भ्रष्ट और अपवित्र मानते हैं तो आपही मुझे पावन कीजिए। आप जो कुछ दण्ड देंगे सो मैं शिरोधार्य करूंगा।"

थोडी देर काना फूसी होनेके बाद एकने हुक्का गुडगुडाते कहा, "भाई माणिक लाल, आप विद्वान हैं, 'पडिते भूले और तारा डूबे'–खैर आगे अब ऐसा मत करना। इस बार बिरादरी आप पर रहम करती है। जाओ, अधसेरिया घी का चुरमा लड्डू कर के जात को खिला दो। फिर उसी प्रकार अपनी स्त्री को जात भी खिला देना।"

माणिकचन्द ने सोच विचार कर उत्तर दिया, "ऐसा तो मैं नही करूँगा। मृतक के तेरही को जात को खिला दूगा। पर दण्ड का चुरमा लड्डू तो नही खिलाने का। बिरादरी भरको खिलाने से तो ढो, ढाई सौ पर पानी फिरेगा पर मैं ढाई सौके बदले पाँच सौ देने को तैयार हू, यदि सब भाई मिलकर चन्दा करें और एक उद्योग शाला इस गांव में स्थापित करें। इसके अलावे भी मैं एक वर्ष तक दस रूपये प्रतिमास देता रहूगा।"

मोतीचूर घेवर दूध पाक और चुरमा के खाने वाले, मग़ज के हीन, आलसी और उद्योगहीनों को उद्योगशाला, शिक्षा की उन्नति और जात की बढती भला क्यों अच्छी लगने की ? चारों तरफसे माणिक के सिरपर बातों की बौछार बरसने लगी।

"भाई आप तो आप गये चार हाथ पगहा भी लेते चले ?"

"ठीक ही तो है, हमतो डूबेंगे, पर यार को ले डूबेंगे।"

"भाई, रंडी के पस मुंडी गई, उसने कहा, बहिन मेरे जैसी-होना।"

"यार, ज्ञात इनको दंड दे तो ये फिर जातको क्यों न दड दें।

इस प्रकार के वचन सुन माणिक हाथ जोड़ कर खडा हुआ और "जैसी आप सभों की इच्छा" कह कर चलता बना। जात वाले सब जाने लगे। पर गोविन्दने सब को रोक कर पूछाः—

"कहिए, भाइयो, मुझे अब क्या करना चाहिए ? मैंने तो, जब से उस पर आँच आई है, तबसे उसको अपने घर में भी घुसने नहीं दिया है। और जब तक जात इसको पावन नहीं करेगी तब तक मैं इसका बाप नहीं और यह मेरा बेटा नहीं। यदि मैं बहू की तेरहीं करूं तो आप सब इसको छोड कर भोजन करेंगे कि नहीं ?

बिरादरी वालोंने मुह के आगे आए हुए लड्डू को छटकते हुए देख, झटपट इस विनती को स्वीकार कर लिया। इस समय तो एम० ए० बहादुर इश्तिहानचन्द जात बाहर रहे और रुक्मिणी की क्रिया सुधर गई।

माणिक पञ्चायत में से उठ कर तुलाराम के यहाँ गया उसने उनको सब आद्योपान्त कह सुनाया। तुलारामने भी

लापरवाही से उपदेश दिया कि.—

"फल मारेंगे सब यार, तुम चले जाओ,
पारस हैं पारसिन मजा करो और खाओ ,"

भाग के तरंग में तुलाराम बकने लगे।

"भय न खाओ दिल में, माणिक ! भय न खाओ दिल में ।"
"पूछे तो दो लात, माणिक, भय न खाओ दिल लाय ।"

अपनी पवित्रता और जर की विशुद्धता पर शंका करने वाले पटवारी पर माणिक मनमें तो जल गया। पर कर ही क्या सकता है ?

बस, दूसरे दिन प्रात काल प्रस्थान करने के विचार से उसने एक काश्मीरी कारीगरी का चाँदी का प्याला और पाँच रुपये नकद तुलाराम को दक्षिणा के तौर पर दिए। भूदेव ने कविता में आशीर्वाद दिया —

"पी भग इसमें नित जइ गा, शम्भवम्, जय शंकरम्,
दीर्घायु हो मित्र माणिक, आयु, कीर्तियशो लभम् ।"

रात्रि में ग्यारह बजे जब सब गाव वाले खुर्राटे मार रहे थे उस समय गोविन्द अपनी पत्नी तथा पुत्री के साथ निगाह बचाता हुआ माणिक के पास आया। तुलाराम नशे की धुन में बेहोश पड़ा था। माणिक ने अपने चले जाने के बाद भए हुए निश्चय को सुन कर बकस खोला और उसमें से किराया करने को दो सौ के नोट पिता के हाथ में रखे और थोड़े से लिफाफों पर अपना पता लिख गोविन्द को दे दिया। दूसरी भी बहुत सी सलाह करके लाहौर के सेठ परल जी का ठिकाना उसको बता दिया, और कहा कि वहाँ से प्रति मास पचहत्तर रुपये ले आइएगा। कमाऊ पुत्र को माता पिताने प्यार

और वहिन ने उसकी न्यौछावर की । इस के बाद रुक्मिणी की कुछ चर्चा कर के सबोंने आँसू वहाए। फिर सब चले गए। प्रात काल माणिक दूसरे दर्जे की ट्रेन में सवार होकर चलता वना।

जात वालोंने रुक्मिणी की तेरही खा कर गोविन्द को जातमें ले लिया। और उन्होंने आपस में यह निश्चय किया कि माणिक को तभी जात मे लेंगे जब वह वरफी और चुरमें के लड्डू खिलाएगा। देखें अब माणिक कब जीता-जागता आता है और कब इनके वरफी ओर चुरमें के लड्डू उड़ते हैं।

उनतीसवाँ प्रकरण

निशाना खाली गया

माणिक जी अरदेशर का शरीर अब करीब २ अच्छा हो गया था। वह अब मजे में घूम फिर सकता था। डाक्टर ने अभी उसको बम्बई जाने के लिये समर्थ नहीं समझा था, इससे वह अब तक जापान ही में पडा था। कोमरास्की दूसरी बार उससे मिलने को आई। शिष्टाचार युक्त साहब सलामत के वाद वह उचित स्थान पर बैठ गई। तुरंत ही जेब में से उसने रुमाल निकाल वहाँ की हवा को सुगन्धित कर दिया, फिर अंगुठी चमकाना शुरु किया अन्त में अधीर होकर वह बोल ही तो उठी,—

"मरीजों के मर्ज की दवा, कहिए अब आप के शरीर की स्थिति कैसी है?"

माणिक—"आप की मेहरबानी से अब तो बहुत अच्छी है। घूमता हूँ, फिरता हूँ, और आशा है कि शीघ्र ही डाक्टर जाने की आज्ञा भी देंगे।"

कोमरास्की—"डाक्टर कहाँ जाने की आज्ञा देगा ?"

माणिक जी ने हर्ष से कहा, "हिन्दुस्तान जाने की। इस हफ्ते में एक अंग्रेजी जहाज यहा से होता जायगा। ईश्वर ने चाहा तो उसी में चला जाऊगा।"

हाथ से चिड़िया उड़ती हुई देख उसने चिन्तित होकर पूछा, "तब तो आप के सगे सम्बन्धियों को भी आपकी आरोग्यता के समाचार पहुंच चुके होंगे ?"

प्रसन्न वदन माणिक जी ने कहा, "जी हाँ, सबको समाचार मिल गया है। यह पत्र भी अभी वहीं से आया है।"

कोमरास्की के चेहरे की रंगत उड़ती हुई देख वह चुप हो रहा। पत्र के साथ माणिक जी को विशेष प्रेम से खेलते देख, चिन्तित होती हुई कोमरास्की ने पूछा, "क्या यह पूछ सकती हूँ कि यह पत्र किसका है, माणिक जी ?"

माणिक जी ने पत्र को पढ़ते हुए लज्जा मिश्रित हर्ष से कहा "जी हाँ, खुशी से। यह पत्र मेरे एक दिली दोस्त का है।"

कोमरास्की—"आप इसको बार बार पढ़ते हैं, इससे मालूम होता है कि यह पत्र बहुत रसीला है।"

माणिक जी ने एक दीर्घ सांस लेकर कहा, "रसीला ! केवल रसीला ही नहीं लेडी ! अरे रससे लबालब यह पत्र है। दिल के ज़ख्मों का यह मरहम और मृतः प्राय का अमृत बिन्दु है। दो आत्माओं को जोड़ने वाला तार यह पत्र ही है। हाय, अभी बीच में समुद्र पड़ा ही है।"

कोमगल्की विचार सागर में डूब गई। वह मन ही मन विचार करने लगी "क्या इसका विवाह हो गया है?" उसने बहुत चाहा कि वह इस प्रश्न को न पूछे, पर उसका दिल कब मानता था। उसने अपने मन में तो उससे विवाह भी कर डाला था। माणिक जी को बौद्धमतानुयायी बना, जापान से उसके साथ भाग निकलने के हवाई महल वह बना चुकी थी। बीच में इस पहाड को देख वह रुक न सकी, आखिर पूछ ही तो बैठी—

"लेफटेनन्ट माणिक जी, क्या यह पत्र बहुत प्राइवेट (गुप्त) है? यह पत्र शायद किसी बहुत प्रिय मनुष्य का मालूम पड़ता है, क्यो?"

माणिक जी पत्र को आँखो में लगा कहने लगे, "जी हां, अत्यन्त प्रिय मनुष्य का यह पत्र है। इसका एक एक शब्द एक एक मोती की कीमत का है, और एक एक अक्षर की कीमत एक एक हीरे के बराबर है। इसके अन्दर प्रेम के जवाहिर चमक रहे हैं। इसकी एक एक पंक्ति एक एक सिकड का काम करती है जो पढने वाले के दिल को एकदम जकड देती है। इसका एक एक पन्ना तो ऐसे जंगल के समान है जिसमें भूले हुए दिल को बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं मिलता। जादू के कलम से यह लिखा गया है, पढ़ते ही दिल दीवाना हो जाता है और सात समुद्र पार कर के भेजने वाले से जा मिलने के लिये तैयार हो जाता है।"

कोमराल्की ने बे मन से हंसते हुए कहा, "ओ होहो, लेफटेनन्ट, मेरे जान में आप ने तो लैला मजनू का दास्तान ही खोल दिया है। मेरे अनुमान से यह पत्र तो आप की पत्नी का होना चाहिए।"

माणिक जी ने हँसते हुए पूछा, "आप ने कैसे जाना कि मैं विवाह कर चुका हूँ ?" इसका वह विदुषी क्या उत्तर देती है, यह सुनने के लिये वह उत्सुक हो बैठा।

"आप के अन्तःकरण के उद्गारों से मैं कल्पना कर सकती हूं।"

माणिक जी ने पत्र तकिए के नीचे रखते हुए कहा, "तब आप के विचारों में कुछ फरक है। यह मेरी स्त्री का पत्र नहीं है। मेरी समझ में अभी आप ने केवल पढा ही है, संसार का कुछ अनुभव प्राप्त नहीं किया है। मिस कोमरास्की, क्या आप को इश्क-प्रेम का मतलब मालूम है? अहा! देखिए, शेक्सपियर का कहना है कि प्रेम पागलपन है। अतएव पागल आशिकों को एक अँधेरी कोठरी में बन्द करके चाबुक से ठीक करना चाहिए। पर मैं पूछता हूं कि क्या किसी ने इस अनुपान का प्रयोग किया है? कितने दिवाने आशिकों को किसने चाबुकों से सुधारा है? सुधारे कहाँ से? हकीम खुद अगर इस रोग के शिकार बने पड़े हों तो-हा प्रेम!"

बिचारी कोमरास्की तो प्रेम अथवा इश्क का यही अर्थ समझती थी कि विवाह कर के पति के साथ प्रेम निबाहना और संसार की गाडी चलाना। उस भोली-भाली नवयुवती को इस बात की जरा भी खबर न थी कि विवाह के पूर्व पवित्र प्रेम से भावी पति की जाँच कर लेना और उसे प्रेम की कसौटी पर कस लेना चाहिये। आशिक-माशूक की अनेक कथाएँ उसने पढी थीं पर किसी आशिक को उसने देखा न था। प्रतीक्षा करने में जो आनन्द होता है, इसकी उसको कदर का कुछ ध्यान भी न था। विरह की विपत्तियाँ भोगने की अपेक्षा पति को अपने वश में कर लेने ही में वह विशेष आनन्द सम-

झती थी। सत्य सनेह की स्थिति देखने का आज ही उस को पहिला अवसर मिला था। उसको प्रथम वार ही आज प्रेम की पैनी तलवार का परिचय हुआ। वह तो घबरा गई, माणिक जी के उद्गारों से वह भौचक्की सी रह गई। वह कुछ बोल न सकी, विदुषी होने के कारण समझ तो गई होगी कि उसकी धारणा से विपरीत पक्ष का ही नाम प्रेम है।

माणिक जी ने फिर अपने मन के भाव प्रकट किए, "मिस कोमरास्की, आप नहीं जानतीं कि दिल की चोट कैसी और कितनी सख्त होती है, यह तो माथे पडती है तभी जानी जाती है। मैं अक्षरशः सत्य कहता हूं। " जाके पैर न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर पराई?"

निराशा-पूर्ण वनावटी हँसी हँसते हुए कोमरास्की ने कहा, "अब मैं विचार करती हूं, लेफटेनन्ट माणिक जी! कि प्रेम-रस में आप मुझ से कहीं अधिक पगे हुए हैं। यह पत्र आप की माशूका का मालूम पडता है। और आप उसके साथ निचाह करने की आशा में स्वयमेव आप को उसका कैदी समझ जीवन बिताते हैं। क्यों यही बात है न?"

माणिकजी—हाँ, यही बात है। मेरे दिल को कैदी कर के मनमाना नाच नचाने के लिए इस पत्र की लेखिका ही अधिकारिणी है।

कोमरास्की—तो क्या आप का हृदय किसी ने माँग लिया है?

माणिक—जी नहीं, बल्कि छीन लिया है, देखिए कहा भी है—

कौन कहता है दिल दिया हमने ?
छीन कर ले लिया दिल दिया किसने ?'

कोमरास्की—तब मेरे और आप के विचारों में अन्तर है। मैं तो यही समझती हूं कि बिना कारण मनुष्य प्रेम नहीं करता। प्रकृति ने स्त्री पुरुष को इस हेतु से उत्पन्न किया है कि वे मिलकर सन्तान उत्पन्न करें, उनका पोषण करें उनको पढ़ावें-लिखावें, व्यापार आदि सिखावें, कलाकौशल में कुशल करें, और अपने स्थान पर उनको छोड़कर आप मृत्यु के शरण हों। इसी के लिए स्त्री पुरुष को लग्न की गांठ में बंधने की आवश्यकता है। आशिक-माशूक के झगड़े तो पागलपन के नमूने हैं। मेरा विचार भी लग्न करने का है। यदि कोई हिन्दुस्तानी मेरे योग्य मिले तो मैं आज ही उसके साथ विवाह कर लूँ। हिन्दुस्तान ही में रहना, महात्मा बुद्ध की पवित्र जन्मभूमि में जीवन व्यतीत करना, उन्हीं के नाम का जप करना, वहीं की मिट्टी माथे चढ़ानी आदि मेरे विचार सुनकर बहुत लोग हंसते हैं, मुझे पागल समझते हैं, और मेरी हंसी उड़ाते हैं, पर मैं किसी की बात पर ध्यान नहीं देती।

माणिकचन्द—ओ हो।—तब यों क्यों नहीं कहतीं कि आप भी प्रेम के फंदे में फँसी हुई हैं। ईश्वर आपकी मनोकामना पूर्ण करे।

कोमरास्की— पाँच वर्षों से मैं इसी धुन में हूं फिर अभी तक मेरी आशा मन की मन ही में रही।

इसके बाद जब कोमरास्की ने देखा कि यहाँ उसकी दाल गलती नहीं, तब उसने इधर उधर की बातें छेड़ीं। फिर आज्ञा लेकर अपने घर चली गई। बिचारी मन हीं मन विवाहिता हुई और मन ही मन विधवा। जिसको उसने बुद्ध मतावलम्बी बता अपना पति बनाना चाहा था वह तो दूसरी का आशिक निकला। इससे फिर अब वह किसी दूसरे शिकार

की राह देखनी पड़ी । विचारी करे क्या ? इश्क बड़ी बुरी बला है ।

माणिक जी तो कोमरास्की के जाने बाद बड़े विचार में पड गए कि यह क्या बक गई ? जापानी स्त्री और हिन्दुस्तानी पुरुष के साथ विवाह की अभिलाषा। प्रथम तो उन्होंने विचार किया कि, यदि यह दूसरी बार आए तो इसको इसके ऐसे मूर्खता पूर्ण विचार के लिए कुछ कहूँ। पर फिर यह बात स्मृति से उतर गई। इसके बाद दूसरे दिन डाक जाने का दिन था, इससे वह अपनी प्रिया को पत्र लिखने बैठा। अच्छे होने के बाद वह जर को यह दूसरा पत्र लिख रहा था। अभी इस को रवाना होने में एक-दो हफ्ते की देर थी। इसके लिए तो एक पल एक कल्प के समान बीतती थी। अतएव, "वस्ल नहीं हसरत ही सही" के ख्याल से वह पत्र ही लिख कर मन को सन्तोष देता था।

थोड़े दिनों में नोटिस निकली कि, "आटो नाम के व्यापारी का दिवाला निकला है और उसकी दूकान का सब सामान फलाँ दिन नीलाम होगा।" इस पर एक अखबार वाले ने यह प्रकाशित कर दिया था कि इस नीलाम के अवसर पर देश देश के व्यापारियों के अढ़तिए यहाँ आएँगे। शहर में यह भी अफवाह गरम थी कि "पंजाब, मद्रास, बंगाल आदि भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से भी लोग आने वाले हैं।" इस समाचार से कोमरास्की का मन और भी उद्विग्न हो गया। उसने ज्योतिष देख कर यह निश्चय किया था कि तीन चार नवागन्तुकों में से कोई न कोई उसकी आशा को अवश्य सफल करेगा।

आखिर वह दिन भी आही पहुचा। हिन्दुस्तान से आए

हुए तीन व्यक्ति जापान में उतरे। जापानी पुतली कोमरास्की ने उनका पता लगाया और हाथ में दीपक ले पति की खोज में निकली। मार्ग में एक उसी के ऐसी उसकी एक सहेली मिली। उसने काले पति को खोजने वाली पीली स्त्री को एक दो ताने मारे। जिसके उत्तर में कोमरास्की ने यह कहा कि जहाँ प्रेम है वहाँ काले गोरे का प्रश्न नहीं रहता। देखो—

'दिल देखिए और जुल्फे सुवयदा को* देखिए
गुल देखिए और बुलबुल शैदा को देखिए
मजनू को और सूरते लैला को देखिए
राधा को और कृष्ण कन्हैया को देखिए।'

मज़ाक करने वाली सहेली इसका कुछ भी उत्तर न दे सकी। चुपचाप मुँह की खाकर वह अपने रास्ते चली गई।

सहेली का मुँह बन्द हो जाने से कोमरास्की का उत्साह दूना हो गया। उसी उत्साह के बल से अपनी इच्छा पूर्ण करने को ठान वह अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढी।

तीसवाँ प्रकरण

दुलहे की खोज

हिन्दुस्तान से जापान आये हुए व्यक्तियों में हमारे एम॰ ए॰ बहादुर भी थे। दूसरा व्यक्ति एक मद्रासी हिन्दू था, जो परिश्रम किए बिना ही मुक्ति प्राप्त करने की लालसा से ईसाई हो गया था। वह मद्रास के एक व्यापारी की तरफ से आया

* काली

था। तीसरा व्यक्ति एक कच्छ निवासी, मेमण जाति का था जो बम्बई की एक बडी कम्पनी की ओरसे आया था। माणिकचन्द एक होटल में उतरे। उन्होने झटपट अपना सब समान ठीक ठिकाने रखा, क्योकि उनको डाक्टर माणिकजी के पास जाना था।

गत प्रकरण में हमलोग देख आए हैं कि कोमरास्की दुलहे की खोज में निकली है। भटकती भटकती वह एक होटल में पहुँची। होटल के मैनेजरने उसको बम्बई से आए हुए, कासिम भाई नामके एक मेमण के पास भेज दिया। कोमरास्की ने अपने नामका एक कार्ड भेजा। परदेशी बिचारा इन्कार कैसेकर सकता था? सभ्य कासिम भाई ने द्वार तक आकर उसका स्वागत किया और उसको अपने कमरे में ले गया। सभ्यतानुसार साहब सलामत के बाद कोमरास्कीने अपनी हीरे की अँगूठियां चमकाई और अतर से तर किया हुआ रूमाल जेब में से निकाल कमरे को सुवासित कर दिया। फिर उसने पूछा, "कहिए, मेरे आने से आपको कोई अडचन तो नहीं हुई?"

कासिम भाई ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "अहोभाग्य मेरे कि आपने दर्शन देने के लिये इतना कष्ट उठाया।"

कोमरास्की ने धीरे से पूछा, "आपका दौलतखाना कहाँ है?"

कासिमभाई ने उत्तर दिया, "मेरा खास गरीबखाना तो मांडवी में है, पर इन दिनों में बम्बई में रहता हू।"

कोमरास्की-मुझे भारत वासियों से मिलने की विशेष अभिलाषा रहती है। जो कोई भारतवासी यहाँ आते हैं, उनसे मिलती हू और उनकी रीति भाँति की बातें पूछ आनन्दित होती हूँ। इस समय आपको कोई आवश्यक कार्य तो नहीं है?

कासिमभाई ने कोमरास्की की तावदार बातों से आश्चर्यान्वित होते हुए कहा, कोई नहीं।"

कोमरास्की तो क्या आप कृपा कर के मुझे बता सकते हैं कि भारतवर्ष में कौन कौन धर्म प्रचलित हैं ?

कासिमभाई-मुझे धर्म-सम्बन्धी विशेष ज्ञान नहीं है। मैं केवल इतना ही जानता हू कि हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई तथा थोडे बहुत यहूदी बम्बई में रहते हैं। यो तो चीनी और जापानी भी वहाँ रहते हैं।

कोमरास्की—हिन्दू धर्म को आप कैसा समझते हैं ?"

कासिमभाई—ये मूर्तिपूजक हैं। नाना प्रकार के देवी-देवताओं की ये पूजा करते हैं। इन लोगोंका कोई भी पैगंबर नहीं है। किसीका छूआ हुआ ये खाते नहीं। इससे अधिक मैं इनके विषय में नहीं जानता।

कोमरास्की—और ईसाई मत को आप कैसा समझते हैं ?

कासिमभाई—इनके मतका भी कोई ठिकाना नहीं। हम लोग भीमसिंह को पैगंबर मानते हैं पर ये उनको खुदा का बेटा बताते हैं। पादरी और पादरिन सब जगह फैली हुई हैं। उन्होंने हजारों हिन्दुओं को तथा मुसलमानों को ईसाई बना डाला है। ये नाना प्रकार के लालच और लोभ दिखा कर दूसरे मत वालों को अपने मत में खींच लेते हैं। आपके यहाँ भी तो इनका पैर घुसा है।"

कोमरास्की—जी हां, यहाँ भी उन्होंने माथा तो बहुत मारा है पर अभी उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं।"

कासिमभाई-हमारे यहाँ भी यही हाल है। भँगी, चमार, डोम तथा मर्ख और गरीबों को उन्होंने भले ही लालच दिखा कर अपने मत में ले लिया हो, पर अपने धर्म का सच्चा रहस्य

धर्मों से श्रेष्ट क्रिश्चियन धर्म को बताया। हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा यहूदी, वल्कि संसार भरके सब धर्मों को उसने इस वास्ते नीचे बताया कि उनके भगवान का कोई पुत्र ही नहीं है। और ईसा तो परमेश्वर के पेट का पुत्र है। और उसकी सम्प्रदाय को मानने वाले विना परिश्रम किए ही मुक्ति पा जाते हैं। ऐसे ऐसे दुराग्रह से खिसिया कर कोमरास्की ने उस मद्रासी से एक प्रश्न किया।"

कोमरास्की ने नम्रता से कहा, "बुरा मत मानिएगा, महाशय! आप का ईसा भगवान का सपूत पुत्र है कि कपूत ?"

मद्रासी ने मान पूर्वक उत्तर दिया, "सपूत।"

"यदि वह सपूत है तो अपने पिता की सृष्टि में उसने किन किन चीजों की वृद्धि की है ? और यदि कपूत है तो किन किन वस्तुओं को उसने लुप्त कर दिया है ?"

मद्रासी इस विचित्र प्रश्न का कुछ भी उत्तर न दे सका कोमरास्की ने उसको दुराग्रही और मूर्ख समझ कर धर्म चर्चा की समाप्ति की।

कोमरास्की—क्या आप के साथ और भी कोई सज्जन आए हैं ?

मद्रासी—हाँ, एक पञ्जाब के पारसी व्यापारी का एजन्ट तो आया है। वह सामने की उस होटल में उतरा है। पर शायद ही आप से भेंट हो क्योंकि वह यहाँ एक बीमार पड़े हुए पारसी को देखने के लिये बहुत आतुर था। कहता भी था कि सबके पहिले मैं यह काम कर के अन्न जल करूंगा।

अधीर कोमरास्की उसी होटल में गई। माणिक चन्द से भेंट न होने पर वह अस्पताल की तरफ फिरी। वहाँ जा उसने कार्ड भेजा। माणिक चन्द जी ने लाचार होकर उसको आ

की परवानगी दी। वह साहब सलामत कर के बैठ गई। माणिक चन्द को देखते ही उसके मन में एक अद्वितीय भाव उत्पन्न हुआ। यह भाव क्या था, सो तो वह स्वयं समझ न सकी। माणिक जी ने कोमरास्की के साथ माणिक चन्द का परिचय कराया। एक शूरवीर जाति के सभ्य, साक्षर और रूपवान व्यक्ति के साथ परिचित होने के लिये माणिक चन्द ने बड़ी नम्रता से उपकार माना। कोमरास्की ने भी वैसा ही भाव प्रकट किया। काश्मीर की सैर और समुद्र यात्रा से माणिक चन्द का शरीर बहुत सुधर गया था। इस योग्य पति को किसी भी प्रकार से प्राप्त करना, ऐसा दृढ सङ्कल्प कर होटल में मिलने का समय पूछ वह अधीर और बावरी हो कर उठी। मार्ग में चलते समय यह दो पंक्तियाँ उसके मुख से बराबर निकलती हुई सुनी जाती थीं।

इश्क कहते आए हैं शायद इसी खजर का नाम,
आज पहिली बार है दिल जिससे घायल हो गया।'

इकतीसवाँ प्रकरण

प्यारी का पैगाम

"माणिक जी—क्या आप भी उन लोगों के साथ काश्मीर गए थे ?"

माणिकचन्द—"जी हाँ। डाक्टर पाछा ने सेठ पदल जी से थोड़े दिनों के लिये मुझे माग लिया था। पदलजी ने भी मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दी थी।"

"वहाँ की आवोहवा कैसी है ? जर राजी खुशी तो है ?"

"काश्मीर की आबोहवा का क्या पूछना है ? भूमि पर यदि स्वर्ग है तो वह केवल काश्मीर ही है। लाहौर की गरम लू से झुलसो हुई जरवानू वहां की ठंडी हवा से गुलाब की तरह खिल गई। शरीरको अलवत्त. बहुत लाभ हुआ है, पर हृदय कमल सदा मुर्झाया ही रहता है। निरन्तर उदास रहती, और पागल की तरह सदा अखबारों ही की वाट देखा करना यही उनका मुख्य काम था। मैं सदा उनकी इस स्थिति पर आश्चर्यित होता था। पर जब मुझे सच्चा भेद मालूम हुआ तभी मैं उनकी उदासी और चिन्ता का कारण समझ सका।"

ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। पत्र तो मैंने पड़ ही लिया है और फिर भी पढ़ूगा। उसमें आपके मदद की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। पर ये सब दृश्य मुझे समझाइए कि काश्मीर के किन किन स्थानों के हैं ?"

माणिकचन्द्र ने उन सब दृश्यों को बड़े विस्तार से वर्णन किया। उनकी वर्णन शैली ऐसी रसीली थी कि माणिक जी ने एक एक बात को दो दो चार चार बार पूछा। काश्मीर का वृतान्त सुनकर वे इतना अधिक आनन्दित हुए मानो वे वहां जर के पास ही बैठे हैं। उनको यहाँ तक भ्रम हो गया।

"वेल, माणिकचन्द ! आप एक अच्छे व्याख्यानदाता मालूम होते हैं। आपकी बातों से मुझे बहुत कुछ सन्तोष हुआ आप सच सच कहिए, मेरे विषय मे जरवानों ने आपसे क्या क्या कहा है ?"

"केवल इतना ही कि, आप दोनों का विवाह होने वाला था कि इसी बीच में आपकी हौंग कौंग में बदली हो गई।"

"आप शिक्षित पुरुष हैं। क्या आप बतला सकते हैं कि

डाक्टर वाछा तथा सेठ पदलजी को हमारी मोहब्बत की कुछ भी सुनगुनी लगी है ?"

"मैं इस बात को जोरों से कह सकता हूँ कि इसकी उनको कुछ भी खबर नहीं है जरवानो एक चतुर, बुद्धिमान और शिक्षिता बाला है। उसने अपने प्रेम को इस तरह दबा रक्खा है कि वैद्यों को भी उसके मन की बात का पता नहीं लग सकता। उनकी अपोलो जहाज-सम्बन्धी पूछताछ से मुझे तो कुछ शंका होती थी, पर सीधे सीधे सेठ पदलजी और अपनी रसायन विद्या के फेर में लगे हुए डाक्टर वाछा को इसका जरा भी ख्याल नहीं है। मुझसे भी जरवानो ने चलने के दिन ही इस बात को कहा है, वह भी सौ सौ बार गुप्त रखने की प्रतिज्ञा करा कर।"

"काश्मीर में वे लोग कब तक रहेंगे ?"

"कदाचित् एक महीना। जब से जरवानो को आपका समाचार मिला है तबसे उनका चित्त वहाँ से उचट गया है। मैं वहाँ वहाँ था तभी उन्होंने डाक्टर वाछा से अनेक बार लाहौर लौट चलने की प्रार्थना की थी। परन्तु वे वनस्पतियों की खोज में ऐसे लगे हुए हैं कि मालूम पड़ता है, अभी थोड़े दिन और वहाँ रहेंगे।"

फिर थोड़ी बहुत इधर उधर की बातें करके दूसरे दिन मिलने की ठहराकर माणिकचन्द अपने होटल की तरफ गया। कोमरास्का की विद्वत्ता-सम्बन्धी बातें तो थोड़ी बहुत उसने माणिक जी के मुँह से सुनी ही थी। ऐसी एक विदुषी के मिलाप से कुछ लाभ अवश्य होगा इसी उधेड़ बुन में वह होटल में पहुच गया।

बत्तीसवाँ प्रकरण

विवाह हो गया होगा तो ?

माणिकचन्द को होटल में पहुचे आधा घण्टा भी नहीं हुआ होगा कि एक लडके ने आकर सलाम कर एक कार्ड दिया "आने दो" कहकर माणिकचन्द द्वार तक गया। एक नाजुक पुतली द्वार पर का परदा हटा रंगमंच पर अपना पार्ट खेलने की इच्छा से आकर खडी हो गई। साहब सलामत बाद दोनों आमने सामने कुर्सी पर बैठ गए।

"यदि मेरे आने से आपको किसी प्रकार की तकलीफ हुई हो तो कहिए।" 'मनमें भावे और मुडी हिलावे' के अनुसार ही यह कह कर, कोमरास्की ने कहा हीरे का हार जाने गडता हो इस प्रकार मुँह बना उसने माणिकचन्द का ध्यान उस ओर खींचा।

"इस समय मुझे कुछ भी काम नहीं है। इस समय तो मैं बिल्कुल निठल्लू सा हू।

"आप अपने लिये तथा और किसी के लिये निठल्लू से होगे। पर मुझे तो आप बडे काम के नज़र आते हैं। आर्यावर्त देखने की मेरे मनमें बडी उत्कंठा है। उसमें आपके ऐसे विद्वान् पथप्रदर्शक की तो मुझे अत्यन्त आवश्यकता है। आपका दौलत खाना भारतवर्ष में कहाँ और किस स्थान पर है?"

"पजाब के अन्तर्गत होशियारपुर ज़िले के अमोटा नामक गांव में मेरा गरीब खाना है। मैं जाति का राजपूत हू। इस जाति ने तलवार के ज़ोर से अपने को अद्वितीय वीर सिद्ध कर दिया है। मेरे दुर्बल शरीर को देख कर कदाचित् आप

हँसेंगी कि हमारी जाति ने किस प्रकार तलवार चलाई होगी- पर नहीं-आप मुझे राजपूतो के पैर की धूल भी मत समझि- येगा, क्योंकि कलम की तलवार चलाने में मैं सूख गया हूं।"

"क्या इस समय भारतवर्ष में कोई ऐसी जाति नहीं है जो शस्त्र कला में प्रशस्य हो ?"

"वाह खूब कही। भारतवर्ष की भूमि अब कुछ बन्ध्या थोड़े हो गई है। अब भी मराठा, गुरखे और सिक्ख इस योग्य हैं कि बड़ी बड़ी वीर जातियों से शस्त्र रखवा लें पर सिख लोग देश भक्त न होकर अन्ध भक्त अधिक हैं। पल्टन में भरती होकर वे तावेदारी ही में रह जाते हैं। इस जाति वालों में मूर्खता का अंश विशेष है। कारण इसका यह है कि ये अत्यधिक लम्बे होते हैं। इस विषय में विद्वानो का भी कहना है कि, "कुल्लुन तौलुन अहमकुन" "सिर बड़ा सरदार का और पाँव बड़ा गंवार का," "टालेस्ट दी फूलेस्ट"। उसी प्रकार गोरखे भी अशिक्षित, गँवार और जड़ बुद्धि के होते हैं। अर्थात् जहाँ विद्या का ही अभाव है वहाँ देश भक्ति या देशोन्नति के विचार उत्पन्न ही कहाँ से हो ? ये सब हबशी गुलामो की तरह सरकार के जर खरीद दास हैं। एक मात्र मराठे ही दोनों बातो मे अच्छे हैं। जैसे वे विद्या में बढ़े चढ़े हैं वैसे ही शस्त्र विद्या में भी निपुण हैं। देशोन्नति की अभि- लाषा, देश की मान मर्यादा तथा गौरव रखने की उत्कंठा इन में वर्तमान है। साहस, वीरता और दृढ़ता तथा देश की लाज केवल इसी जाति ने बचा रखी है। पर खेद इस बात का है कि सरकार ने इनके अस्त्र शस्त्र छीन कर इनको जनखे बना दिया है। तोप और बन्दूकों ने जबर्दस्ती की लड़ाई की कदर ति की है। पर बाहुबल से, छाती से छाती भिड़ा कर

रण संग्राम में आमने-सामने ताल ठोंक कर लडने की कला की अवनति हुई है। तिस पर भी जहाँ जहाँ पेशाशी गोरों की पलटनो ने नाम डुबाया है, वहीं वही हमारी देशी पलटनो ने विजय का डंका बजा, आर्यो का मस्तक ऊंचा कर दिया है। जन संख्या में हमारी जाति दिनो दिन घटती जाती है। अस्त्र शस्त्र के अभाव से साहस तथा वीरता का भी लोप होता जाता है। काश्मीरी और बंगाली लोग इस समय प्रशंसा के पात्र हो रहे हैं। पर केवल जबान और कलम की तलवार चलाने मे। इन लोगो की मानसिक शक्ति अच्छी है। स्वदेशाभिमान में इस समय बंगाली अद्वितीय कहे जाते हैं। एक पारसी जाति भी हमारे देश में उल्लेखनीय है। व्यापार में तथा राजरजवाडो में आगे बढ़ने में यह जाति बहुतही चतुर है।"

"आपकी शारीरिक स्थिति की अपेक्षा आपका मस्तिष्क बहुत बढा चढा मालूम होता है। आप की वर्णन शैली इतनी उत्तम है कि मेरा मन आप की बातें सुना ही करने की इच्छा करता है।"

"यह तो केवल आप का अनुग्रह और आप की अनुकम्पा है; मैं तो एक अयोग्य मनुष्य हूं।"

"मिस्टर माणिक चन्द्र! क्या आप के देश की शिक्षा इतनी कमजोर है कि देशाभिमान का लोप हो जाता है? आप सुशिक्षित हैं, आप की वर्णन शैली तथा निर्णय शक्ति इतनी उदार है कि उसकी मैं जितनी प्रशंसा करूं, वह थोड़ी है। पर आप की शारीरिक सम्पत्ति देख मैं समझती हूं कि आप पढने लिखने से ऊब गए हैं। आप के देश में शिक्षा किस प्रकार दी जाती है?"

"श्रीमतेजी मेरे देश की शिक्षा प्रणाली की बातें तो आप म

पूछें। जैसे आदमी को किस प्रकार मरण शैया पर पहुचाया जाता है, उसका सच्चा नमूना हमारे देश की शिक्षा है। हाँ, यह शिक्षा नहीं है, पर वास्तव में यह एक बला है। हमारी शिक्षा ऐसी है कि वह हमारे देशाभिमान को हमारे मन से जड़ मूल से उखाड़ देती है। हमारे कितने लोग देशाभिमान देशाभिमान चिल्लाया करते हैं पर सच पूछिए तो हमारे देशाभिमान को हमारी पाठशालाओं ने नष्ट कर डाला है। विद्या पढ़कर हम एम० ए० बी० ए० डाक्टर और इञ्जीनियर बनते हैं, पर राज काज में और देश के कारबार में बिल्कुल नालायक रह जाते हैं। ऐसी शिक्षा देने से बासी मुरदे के ऐसी हमारे शरीर की हालत हो जाती है।"

कोमराक्की ने प्रेम से पूछा, "इसका क्या कारण है?" कारण यही कि हमारे सरकार की ऐसी ही इच्छा है कि हम पराधीन बने रहें। हमारी सरकार परदेशी और परधर्मी है। उसको हमारे देश के हिताहित का बहुत ही थोड़ा ख्याल है। पढ़ लिख कर हमारे देश के बच्चे योग्य हों, देशभक्त हों, राज काज में निपुण हों और अपने अधिकार को समझें, इन सब बातों को देखने के लिये हमारी सरकार के अधिकारी जरा भी तैयार नहीं हैं। हमारे में देशभक्ति की वृद्धि हो और किसी काल में हम यूनाइटेड स्टेट्स की तरह बल द्वारा अपने अधिकार सरकार से माँगने लगें आदि भय से सरकार ने पहिले ही से हम लोगों को शस्त्र रहित कर दिया है। इतना ही नहीं, लाठी-सोटे के बल से कहीं हम उनपर चढ़ाई कर बैठें इस भय से उन्होंने 'पानी के पहिले पाल बाँधने वाली बात चरितार्थ कर दी है। शिक्षा के बहाने हमारी शारीरिक शक्ति जिस प्रकार कम हो उसका प्रयत्न ऐसी खूबी से किया गया है कि पचीस

पचास वर्ष में हमारे देश की स्थिति ऐसी हो जायगी कि हम को हथियार दिए भी जायंगे तो भी उनको उठाने की शक्ति नहीं रहेगी, फिर चलाने की बात ही दूर रही ? श्रीमती, प्राथ ही से हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य हमको निर्बल बनाने का है। मंगला चरण ही से बालकों को दो दो भाषा का ज्ञान प्राप्त करना पडता है। एक हमारी देशी भाषा और दूसरी अंग्रेजी। इन दोनों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने और परीक्षाओं की यातनाएँ भुगतते २ बालक एक दम निर्बल पड जाते हैं। युवावस्था ही में उनका दम फूलने लगता है। कितनों के छाती में दर्द होने लगता है। कितने ही तो चश्मुद्दीन बन जाते हैं। जब उनमें केवल चार कोस चलने की भी शक्ति नहीं रह जाती तो फिर नए नए विचार करने, नई नई कलाएँ खोज निकालने आदि की शक्ति आवे कहा से! विद्याभ्यास का पूरा क्रम समाप्त करने में प्राय एक सौ और आठ बार परीक्षाएँ देनी पडती हैं। प्रत्येक परीक्षा के अवसर पर विद्यार्थी को इतनी मेहनत करनी पडती है कि कितने विद्यार्थी तो परीक्षा-मडप में ही मूर्छा देवी के वश हो जाते हैं और कितने परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी परीक्षा का फल मालूम होने के पूर्व ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर डालते हैं। इतनी भारी जहमत का फल क्या ? सरकारी पन्द्रह बीस रुपये की नौकरी ! हमारे देश में परदेशियों को सोने के रूप में वेतन दिया जाता है और देशके मूल निवासियों को रूपा तथा तांबे के रूप में। इस स्थिति में देशाभिमान की बातें करनी केवल अपनी मूर्खता का नमूना देना है। ऐसी अवस्था में कोई भी भारतीय देशहित के विचार कैसे कर सकता है ? दूसरे देशों में चालीस वर्षमें जब युवावस्था आरंभ होती है तब हमारे यहाँ का एक सुशिक्षित मनुष्य

अपनी दूसरे लोक की यात्रा करने की तैयारी करता है। हमारे यहाँ केवल दो ही अवस्थायें हैं, बालकपन और बुढ़ापा। हमारे देश में युवावस्था का नाम ही नहीं है। हमारी शिक्षाका फलस्वरूप या राजा का उपकार हमारा स्वदेशाभिमान जो कहिए सो यही है।"

"तो फिर आपके देश की प्रजा इसके लिये कुछ करती नहीं ? आपकी सरकार तो बडी चतुर कही जाती है। हमारे देशमें इग्लैन्ड की प्रजाकी रीति रिवाज, शिक्षा, सैन्य व्यवस्था, राज्य व्यवस्था, आदि का अनुकरण किया गया है। इस देश के विद्वान अंग्रेजी प्रजा और अग्रेज़ राज्य को सब प्रकार पूर्ण समझते हैं। पर आपके कथनानुसार मिस्टर माणिकचन्द, आपकी सरकार बडी स्वार्थी और परदेशी प्रजापर बडा जुल्म करने वाली क्या नहीं कही जा सकती ?"

"आप चाहे जो समझें और चाहे जो कहें, पर मैं अपने देश के राज कर्मचारियों को जुल्म करने वाला कहूं तो एकदम राजद्रोही समझा जाऊँगा। मैंने तो केवल आपके प्रश्नके उत्तर का खुलासा किया है। हमारे देश की सरकार जिस प्रकार अपने देश में राज्य करती है, शिक्षा देती है, व्यापार की उन्नति करती है उसके बिल्कुल विपरीत रीति और नीति का प्रयोग भारत वर्ष में करती है। यदि कोई हमारी सरकार के सामने फरियाद करे तो वह राजद्रोही समझा जाता है। इस समय तो अब आप इस प्रसंग को स्थगित रखें, फिर कभी इस पर वार्तालाप होगी।"

"खैर, हिन्दू-मुसलमान में परस्पर कैसा मेल है, उनमें कैसी एकता है और परस्पर धर्म सम्बन्धी कैसे विचार हैं ?"

"बिल्कुल ठीक है। हिन्दू मुसलमानों को इसलामी भाई

कह कर बुलाते हैं, और मुसलमान कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमानों का चोली दामन का साथ हैं। मुसलमान कहते हैं, हश्र के दिन महम्मद पैगम्बर अपने धर्म-सम्प्रदाय वालोंके चाहे जैसे गुनाह हो माफ करा देगा। हिन्दुओंका भी यही कहना है कि 'करोड़ो मन अपराध करके भी सच्चे दिलसे गंगा में एक डुबकी लगाई कि सब साफ।' हिन्दू, मिट्टी के गणपति बना, आठ दश दिन घरमें रख, गाते बजाते और फिर पानी में डुबा ठंडा कर आते हैं। मुसलमान भी कपडे और कागज के तावूते बना दस बारह दिन घर में रख रोते पीटते पानी में ठंडा कर आते हैं। रिवाज प्राय: दोनों के एक ही हैं। लालची और स्वार्थी अमलदार दोनों कौम के बीच मेल देखना नहीं चाहते। इसका भी अनुभव हो चुका है। तिसपर भी इस समय संसार, हिन्दू-मुसलमानों की एकता और परस्पर की सहानुभूति देख, दांतो उँगली दबाता है। सरकारी अमलदार परस्पर विरोध पैदा कराने के लिये कोई बात उठा नहीं रखते, पर अब दोनों कौमों ने अपने अधिकार और अपना परस्पर का सम्बन्ध भली प्रकार समझ लिया है, अब वे अमलदारों की बातों में फँसने की नहीं। इस समय अन्धे भारतवर्ष की लाठी यही परस्पर का मेल है। इसी पर आगे की इमारत तैयार होगी।"

"विज्ञान की शिक्षाने भी भारत वर्ष का क्या कुछ उपकार किया है?"

"भारत वर्ष में विज्ञान की शिक्षा जैसी दी जानी चाहिए वैसी नहीं दी जाती। यहा की शिक्षण प्रणाली ने तो हजारों अमूल्य जीवों को समय होनेके पूर्व ही स्वर्ग पुरी भेज दिया है।"

"आपके देश में बौद्ध मत का प्रचार कैसा है?" कोमराक्कीने, फिरती जाऊँ, फिरती जाऊँ, घर की नज़र करती

जाऊं' वाली कहावत चरितार्थ करते हुये, अन्तमें अपने मतलब की बात छेड़ ही तो दी।

इसके उत्तर में माणिकचन्दने कहा, "हाँ, इतना उल्लेखनीय तो नहीं है। बीस पचीस वर्षोंसे कलकत्ते में एक संस्था खुली है। सिलोन निवासी धर्मपाल नामका एक पुरुष, बौद्ध धर्म के जीर्णोद्धार का प्रयत्न करता रहा था। इस विषय में एक यूरोपियन अबला का स्तुत्य प्रयत्न भी विख्यात है। परन्तु "नक्कार खाने में तूती की आवाज क्या कर सकती है?" कहा भी है।

"मस्ल मशहूर है सुन लीजिए सारे जमाने में,
सदा तूती की सुनता कौन है नक्कार खाने में।"

"हन्टर नामके इतिहासकारने लिखा है कि भारत वर्ष में एक बार फिर बौद्ध धर्म की तूती बोलेगी। पर मेरे तुच्छ विचार में तो ऐसा नहीं आता कि यह बात ठीक उतरेगी।"

क्षेम०-"मैंने अनेक हिन्दुस्तानियों से भेंट की पर आप के ऐसे विशदज्ञान वाला दूसरा हमको कोई भी नहीं नजर आया। बौद्ध धर्म के विषय में आपके कैसे विचार हैं मैं जानना चाहती हूं।"

माणिकचन्द ने छाती ठोक कर कहा "मैं इसको सर्वोत्कृष्ट धर्म मानता हूं। पर यह बात सर्वसाधारण के गले में उतार उनको इस मार्ग पर लाना केवल अशक्य ही नहीं वरन् असम्भव प्रतीत होता है। मुझे तो बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बहुत अच्छे जंचे हैं। भ्रातृभाव और दया का सत्य दर्शन इन्होंने कराया है। यह महात्मा मेरी ही जातिका एक महापुरुष था। काशी क्षेत्रके उत्तर, रोहिणी तट निवासी गौतम कुल में उसका जन्म हुआ था। इस शाक्यवंशीय क्षत्रियों के कुलदीपक ने

प्राचीन आर्य धर्म पर बहुत ही अधिक असर डाला है। केवल भारतवर्ष ही में नहीं, वरन् तिब्बत, रूस, तातार, चीन, जापान कोरिया, सियाम, ब्रह्मदेश, सीलोन और जावा आदि अनेक देशों में अपने यश की दुदुंभि बजा, इस परम पवित्र, सात्विक ज्ञान मय, प्रेम-मूर्ति-रूप महात्मा ने सृष्टि के इतिहास में एक अद्वितीय और भव्य प्रकाश का विस्तार किया है। स्त्री पुत्र के मोह को क्षण भर में लात मार सन्यास धारण करना इसी महात्मा का काम था। वह परमतत्व वेत्ता था। ज्ञान सम्पादन कर के वह चुपचाप बैठा नहीं रहा, पर दयार्द्र हृदय से सर्व-साधारण को अपने ज्ञान का लाभ पहुंचाने के लिये उसने पूर्ण प्रयत्न किया था। संस्थाएं स्थापित कीं, देश देश में व्याख्यान दाताओं को भेजा, वर्ण व्यवस्था की, कल्पित बेडी को एक ही झटके से तोड डाला, सबको मोक्ष का सत्यमार्ग बताया, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' वाक्य को केवल वचन ही से नहीं परन्तु कर्म से निभा कर बताया, और सर्व-समानता तथा भ्रातृभाव की नींव पाताल तक पहुचा कर उसपर अपने धर्म की इमारत उठायी है।"

कोमरास्की तो दिग्मूढ ही बन गई। "ऐसा विद्वान ऐसा बच्चा-छोटासा जादूगर-यह बौद्ध धर्म स्वीकार करेगा या मुझे ही कोई और धर्मावलम्बिनी बनाएगा? किन्तु यदि यह भी उसी पारसी की तरह किसी पर आशिक हो या इसका विवाह हो गया हो तो?" ऐसे प्रश्न वह अपने मन से करने लगी।

ज़रा सुस्ता कर माणिकचन्द ने फिर गाडी चलाई, "प्राचीन महात्माओं के वचनों का भी बुद्ध ने तिरस्कार नहीं किया है। इस सत्यशोधक और सत्याग्रही महानुभाव ने पुनर्जन्म आदि विचारों को, प्राचीन मत को, माना है और अपने से

पूर्व उत्पन्न हुए चार्वाक के जैसे नास्तिक मत का मूलोच्छेदन कर डाला है। हमारे आर्यों के प्राचीन धर्म में ही कुछ परिवर्तन कर के उसने सबको ठीक मार्ग पर लगाया है। पुरानी लकीर के फकीरों ने भलेही कुछ परिवर्तन होते देख इसको नास्तिक ठहराया हो, पर मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि इसने कोई भी खराब परिवर्तन नहीं किया है। सर्वोपयोगी सादा सरल और कर्म मार्ग की झंझटों से रहित, तथा प्राचीन विद्याऽऽलय पर बहुत आघात न पहुचाने वाला बौद्ध धर्म इसने फैलाया था। इसने दुःखमय संसार से मुक्त होने के सरल मार्ग ही बताये हैं। इसने दूसरे विवाद-ग्रस्त विषयों के सिद्धान्त समझाने या उसपर चर्चा करने का परिश्रम ही नहीं किया है। संसार की सृष्टि, सृष्टि कर्त्ता और जीव क्या पदार्थ है आदि विवादों पर इसने दृष्टि तक नहीं डाली है। आत्मा और परमात्मा के फेर में यह पड़ा ही नहीं है। जीवन को दुःख रूप जान बौद्ध धर्म में आस्था रखनी, रागद्वेष से अलग रहना, अश्रद्धा, असूया और अज्ञान आदि का त्याग करना और पाप मार्ग से दूर रहना इन चार मार्गों के इसने आठ रास्ते बनाए हैं.-

"सत्य विचार, सत्य वचन, सत्य जीविका, सत्य व्यवहार, सत्य स्मरण, सत्य आचार, और सत्य साधन।"

"क्रिश्चियन धर्म के कितने सिद्धान्तों के लिये यूरोपियन विद्वान अभिमान करते हैं पर उनके धर्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व इस अलौकिक महात्माने ये सब सिद्धान्त बता दिए थे। ईश्वर के पुत्र ईसूने तो केवल उनका अनुकरणही किया है। तलवार के बल से नहीं, परन्तु धर्म का सत्य रहस्य समझाकर प्रतिपक्षी से अपना धर्म मनवाने में बौद्ध धर्म को सर्वोच्च स्थान मिलता है।"

कोमरास्की ने हर्ष से, उछलती हुई छाती पर हाथ रख आश्चर्य से पूछा, "ओ हो, आप ने बौद्ध धर्म सम्बन्धी इतना अधिक ज्ञान कहाँ से सम्पादन किया ?"

"जब मैं एन्ट्रेन्स क्लास में पढता था तब मैंने मेक्समूलर कृत ग्रन्थ में इस विषय का बहुत भाग पढ़ा था। फिर रिस डेविड कृत 'बुद्धिज़म' और वार्थ कृत 'रिलीजन्स आफ इंडिया' आदि ग्रन्थो को मैंने बडे ध्यान से पढा है। गत वर्ष मैं अपने सेठ के साथ लाहौर के संग्रह स्थान में गया था, वहां मैंने दे। मूर्तिया देखो। वे मूर्तिया गैातमबुद्ध को थीं। एक ध्यानावस्था में वैठी थी और दूसरी खडे होकर व्याख्यान देने के समय की थी। आप यदि उन मूर्तियों को देखें तो वहा से उठने का मन ही न हो। वे अत्यन्त मनोहर और प्रभावशाली थीं।"

कोमरास्की ने एक दीर्घ श्वास लेकर कहा, "आप दिखाइएगा तो देखूँगी। आप के मुख से निकलता हुआ एक एक अक्षर मैं एक एक सुवर्ण मुद्रा के बराबर समझती हू। धन्य है आपका परिश्रम। आपके दर्शन और आपके परिचय से मुझे जितना आनन्द हुआ है, उसको वर्णन करने की मुझ में जरा भी शक्ति नहीं है। पर मुझे आश्चर्य इस बात का है कि जब आप इतना सब जानते हैं और न्याय की दृष्टि से एक सत्यमार्ग की प्रशंसा करते हैं तब उसे खुले तौर पर स्वीकार कर बुद्ध धर्म के उन्नति पथ पर आगे क्यो नहीं बढते ?"

माणिकचन्द ने हँसते हुए कहा, और इस हास्य ने माणिकचन्द के हृदय पर बिजली का सा असर किया, "मिस कोमरास्की; यहाँ तो नून, तेल, लकड़ी की चिन्ता लगी है लोक परलोक, धर्म, और शर्म को तो बात ही दूर रही। पेट के धर्म की उन्नति करने ही से छुट्टी नहीं मिलती, तब बौद्ध धर्म की उन्नति

भला किस प्रकार हो सकती है ? हम लोगों में श्री अन्नपूर्णा देवी की पूजा का महात्म्य बड़ा भारी है, ओर मैं भी उसी मार्ग का चेला हूँ। घर बैठकर यदि मैंने खेती बाड़ी का धधा किया होता तो पेट भर खाने को तो मिला होता। मैंने तो पेट खाली और माथा भारी घाली बात की है। यदि मैं आप के आगे अपनी सच्ची स्थिति का वर्णन करू तो आप दग हो जाएंगे। एम० ए० की डिग्री प्राप्त करने की लालच में फस यदि मैंने अपनी भलीचंगी काया को यन्त्रणा में न डाला होता तो आज पत्थर में से लात मार पानी निकालने की शक्ति मुझ में होती। मेरे बाप, चाचा और जाति बन्धुओं को आप देखें तो दंग हो जाए। यहा तो आठ दिनों में अस्सी बार दवा पीनी पड़ती है। ज्यों त्यों करके एक दो ग्रास खा लेता हूँ रात भर छटपटाता हूँ। दूसरे दिन प्रात काल उठते ही खाली पेट खट्टा डकारों की शहनाई बजाता हूँ। ऐसी तो मेरी स्थिति है। मेरे बाप और चाचे तो ऐसे पहाड़ जैसे हैं, कि पत्थर भी उनको पच जाय, बीस तीस कोस का चक्कर काट आवें पर शरीर में पसीना तक न हो। शिक्षा ही मेरा काल हो गई। इस समय तो ईश्वर की कृपा और आप लोगों की दया से तनख्वाह भी ठीक मिलती है। यदि मैं अपनी स्थिति का विवेचन करूंगा तो आप सुन न सकेंगी।"

"यदि आप को किसी प्रकार की भी आर्थिक सङ्कीर्णता हो तो वह मिट सकती है। यदि आप एक अच्छी रकम के अधिपति हो तो फिर आप बौद्ध धर्म को स्वीकार कर सकते हैं न ? इस प्रश्न से कोमरास्की ने मानो मुंह में मिश्री की डली दे कान छेदने की तैयारी की।

"धर्म बेच कर धन कमाया तो इतना सब पढा लिखा-

किस काम आया ? ऐसा नहीं हो सकता। बौद्ध धर्म सम्बन्धी मेरी अनेक शङ्काओं का समाधान हो तभी मैं इस धर्म को सहर्ष स्वीकार कर सकता हूं क्योंकि मुझे तो यह धर्म सर्वोत्कृष्ट नज़र आता है।"

"मैं आप को डाक्टर शमदा और मिस कवड़ा से मिला दूंगी। वे संस्कृत, पाली, मागधी और अंग्रेजी के हमारे देश के बड़े विद्वान् गिने जाते हैं। वे अवश्य आप की शङ्काओं का समाधान कर देंगे।"

"मैं इस परिचय के लिए आप का आजन्म कृतज्ञ रहूंगा। मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूं कि आज आप जैसी धर्म से एक गहन विषय की अनुरागिनी विदुषी के साथ यहां आते ही मेरा परिचय हुआ। मुझे पूर्ण आशा है कि आप बार बार कष्ट उठा कर मुझे अनुगृहीत करती रहेंगी।"

"अवश्य आऊंगी। यदि आप कहेंगे तो हिन्दुस्तान तक आने में मैं आना कानी नहीं करूंगी। आप के जैसे एक अलौकिक विद्वान् का मूल्य मेरी जैसी एक अज्ञानी अबला क्या आंक सकती है ? अस्तु, अपने प्रथम परिचय के स्मारक चिह्न के रूप में आप मेरी इस तुच्छ भेंट को अवश्य स्वीकार कर लीजिए।" इतना कह कर उसने एक चमकती हुई हीरे की अंगूठी अंगुली में से उतार, माणिक चन्द की आना कानी करने के पूर्व ही उसकी अंगुली में पहिना दी और "कल फिर मिलूंगी," कह कर जापानी प्रेम की प्यासी विदुषी देखते देखते वहां से अदृश्य हो गई। माणिक चन्द आश्चर्य चकित होकर बार बार अंगूठी और दरवाजे की तरफ देखने लगा। पहिली ही भेंट में हज़ार बारह सौ की यह अंगूठी भेंट। नसीब खराब क्या ? 'यह क्या आशा रखती होगी ?" इस विचार

मैं माणिक, और " इसका विवाह हो गया होगा तो ? " इस विचार में कोमरास्की इस प्रकार दोनों भिन्न भिन्न विचार सागर में गोते खाने लगे।

तैंतीसवां प्रकरण

विवाहित कुँवारा

भूत लगे मदिरा पिये सब काहू सुधि होय
प्रेम सुधा रस जिन पियो तिन न रहे सुधि कोय।"

प्रेम की बात ही निराली है। प्रेम करने से होता नहीं, रखने से रहता नहीं, और किसी काल में भी वह निकालने से निकलता नहीं। कहावत है कि,

"इश्क न देखे जात कुजात।"

रूप देख कर मोह जाना या जवानी पर फ़िदा होना इश्क नहीं कहाता। प्रेम दो प्रकार का होता है। एक इश्क हक़ीकी और दूसरा इश्क मजाज़ी। इश्क को इश्क टें टें भी कहते हैं। हक़ीकी इश्क तो पतङ्गियों का है और मजाज़ी इश्क बुलबुल का। किसी फ़ारसी के शायर ने कहा है

--ऐ मुर्गे सहर इश्क ज़े- पर्वाना बियामोज़,
कां शोख़ तारा जां शुदो- अवाज़ नआमद।"

कली के खिलते समय, उस पर चिल्ला चिल्ला कर लोगों को सूचना देने वाले बुलबुलों को लक्ष्य कर कवि कहता है कि "तू पतङ्ग के पास जा कर प्रेम का पाठ पढ़, जो दीपक पर शरीर को जला के भस्म कर डालता है, पर ज़बान से एक भी आह या दुःख का शब्द नहीं निकालता।" कोमरास्की का

प्रेम कुछ हकीकत से मिला हुआ था। वह माणिक चन्द के रूप रङ्ग या दूसरे और किसी अवयव पर नहीं किन्तु सिर्फ उसके गुणो ही पर मोहित हो गई थी। कहा भी है कि, "गुणा. पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वय.।" जैसा वह चाहती थी वैसा ही वर उसको मिला था। माणिक चन्द से वार्तालाप कर के जब से वह घर आई थी, तभी से सर्वत्र उसको माणिक चन्द ही माणिक चन्द नज़र आता था। घर में आते ही उसने पहिले प्रश्नावली निकाली। आँख मीच कर उसने एक अङ्क पर हाथ रखा। उसका जवाब यह मिला कि, "आप के दिल में बहुत दिनो से एक अभिलाषा लग रही है, अब वह शीघ्र ही पूरी होगी। आप चींटियो को पिसान खिलाइए। महात्म गौतम बुद्ध का यह वचन है। इसका प्रमाण यह है कि आपकी हथेली मे एक तिल है" बस हथेली का तिल देखा और बुद्ध का वचन पढ़ा। अब बाक़ी रहा ही क्या? कोमरानकी मन ह में मोदक खाने लगी।

"बस, अब मैदान मार लिया है। राजपूत जाति! राज पूत जैसी वीर जाति का विद्वान् पुरुष, शिक्षित, डिग्री प्राप्त भरी जवानी के जोम में, कोमल शरीर वाला, व्याख्यानदाता धर्म संशोधक, बुद्ध को मानने वाला—वाह खूब अच्छी जोड़ मिली

"मैं तरुणी यह तरुणतनु, माणिक मीठा नाम,
ब्याह करूं मैं हिन्द में, कल मारेगा गाम।"

थोड़ी देर के बाद फिर वह स्वगत बोलने लगी, "य न कि वह निर्धन है या और भी कुछ? पल भर में, उस लक्षाधिपति बना डालूँगी। हाय, कब मैं लाहौर जाऊँ और कब महात्मा गौतमबुद्ध की मूर्ति देखूँगी। अहा इस

भी कैसी भरी हुई और काले भौरों की तरह है। इसका हंसना भी कैसा और कितना मनोमोहक है। इसकी वाक्य चतुरता अलौकिक है। कहीं मेरी आशा निराशा का रूप तो नहीं धारण कर लेगी ? यदि इसका विवाह हो गया होगा तो ?"

इस विचार ने उसके चेहरे की रंगत फीकी कर डाली। कुछ विचार करके वह उठी और कागज निकाले। फिर दो चिट्ठियाँ लिखीं। एक डाक्टर शमदा को और दूसरी मिस कवडा को। इन पत्रों में उन दोनों को दूसरे दिन सध्या को पांच बजे का अपने यहाँ निमत्रण दिया था और व्यालू करने की भी विनती की थी। एक सुन्दर पत्रमें उसने माणिकचन्द को भी सन्ध्या के सात बजे पधारने का निमत्रण भेजा। ज्यों त्यों करके रात बीती। सवेरे उठकर वह "जा शबेहिज तेरा मुँह काला।"

यो कहकर दावत की तैयारी करने लगी। दिन काटे कटता नहीं था, वह पहाड हो गया था। एक एक पल कल्प के समान मालूम पडता। मार पीट कर सन्ध्या तो हुई। डाक्टर शमदा और मिस कवडा पधारे। कोमरास्की ने लैले मजनू का किस्सा बडे रससे कह सुनाया। मिस कवडा ने इस बात का बीडा उठाया कि वह चतुराई से उससे पूछ लेगी कि वह विवाह कर चुका है या नहीं। सात बजे कि इम्तिहान चन्द वहाँ आ पहुंचे। कहा भी है —

> खुदा कोई ग़ घर में तेरे धम से न होगा
> जो काम हुआ इन से वो रुस्तम से न होगा।'

कोमरास्की ने बैठक ऐसी खूबी से सजाई थी कि उसकी प्रशंसा करने में "गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी" थी।

जापानी स्त्रियों के आगे घर सजाने की कला में अंग्रेज झख मारते हैं यह बात जगत् प्रसिद्ध है। अंग्रेजी जापानी पद्धति पर ही अपना कमरा सजाने में गौरव हैं। माणिकचन्द कोमरास्की की साहबी देख कर गया। उसने अपने जीवन भर में केवल अपने सेठ की जर ही का कमरा देखा था। पर यह साज सामान और उचित साज ने तो माणिक को आश्चर्य के समुद्र में ढ साहब सलामत हुई। सिर पर से टोपियाँ उतरी, हाथ और सब का सब से परिचय हो जाने पर कुर्सियों पर गपशप होने लगी। "दीदार बाजी और खुदा राजी की बात एक तरफ चली। पर माणिक की बला जाने —

> "चाहन वह किन काम की, अन चाहत के सग,
> दीपक के मन भाय ना, जल जल मरत पतग।"

व्यालू की तैयारी के समाचार आए और सब भोजन के कमरे में गए। ठाट बाट की तो बात ही टेबुल पर बिछा हुआ गुलकारी का कपड़ा देख एम०ए० तो यही समझे कि फूल पत्तों ही से टेबुल सजाया ग कुर्सी को देखकर तो वह दंग ही हो गये क्योंकि उत्तम कारीगरी का काम किया हुआ था कि यदि ना उसको देखने तो दिल्ली का तख्तेताऊस (कुर्सियाँ लेजाने दूसरी कुर्सियां हलकी भी इतनी वे हवा ही में उड़ी जाती थी। नाजुकपने में भी एक वस्तु एक दूसरे से बढ़कर थी। माणिकचन्द जानवर की तरह इस कमरे को देखने में लीन इतने में कोमरास्की ने पानी पानी होते हुए व जैसी यदि कि आपके देश के जैसी सुघड़ताई तो

जर–"ओ,काश्मीर को तो मैं लाहौर पर न्योछावर करती हूं। जिस स्थानपर मेरे पिताजो हो, वही मेरे लिये स्वर्ग है।"

"अहा हा–,वाहरे बेटी! तूने तो मुझे 'लाजिक' से बांध लिया। पर अब तू मुझे जवाब दे कि तू और तेरे मामा इस समय स्वर्ग में बैठे हैं कि नरक में?"

"अरे–वाहरे मामाजी आप मुझे बांधना चाहते हैं? ख़ैर, लाहौर और काश्मीर दोनो स्वर्गतुल्य, पर जब एक स्वर्ग में से जी ऊबा तो दूसरे स्वर्ग में चलना चाहिए।"

"अच्छा बेटी। यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो, अगले सप्ताह में यहाँ से हम लोग प्रस्थान करेंगे। बस अब तो तू खुश हुई?"

"जी हाँ, जर ने उत्तर दिया, और वह फूली न समाई।

बात की बात में सप्ताह बीत गया। किन्तु जड़ी बूटी की खोज में बाळाने जानेका नाम भी नहीं लिया। पर घबराई हुई जर को कल कहाँ? फिर उसने "मामा जी, अब घर चलिए" का राग अलापना शुरू किया।

"अरे पगली बेटी। गाडी वगैरह का बन्दोबस्त कर लूं तब न? तुझे तो मालूम ही है और तू देखती ही है कि यहाँ अंग्रेज कितने आ टूटे हैं। गाडी घाडी की तो बात दूर रही, इस समय यहाँ कुली का मिलना दुश्वार हो रहा है। खैर, इस हफ्ते में मैं इसका बन्दोबस्त कर लूंगा।" इस प्रकार बाळा ने दूसरा वादा किया।

जरने खफा होकर रोना मुह बना कर कहा। "देखती हूं, मामा जी, आप भी अब आजकल का नाम ही भूल गए हैं और सदा हफ्तों ही की बात करते हैं। आग लग गई, सब गाड़ियों में। नहीं मिलती तो नहीं सही, चलिए पैदल ही

चलें। क्या हमारे पैरों में चलने की शक्ति नहीं है ?"

"वाछाने अपनी भानजी को इतनी अधिक घयडाई हुई देख कर अधिक दिन काश्मीर में रहना उचित नहीं समझा। यथा साध्य शीघ्र उसने काश्मीर से प्रस्थान किया।

पहाड़ पर से उतरते समय जो गरम लू और दुर्गन्ध की आपदाएँ भोगनी पड़ती हैं उसका हाल जो वहाँ हो आया है वही जानता है। वाछा के चेहरे पर धूप के कारण लाली छा गई। अम्हौरी से तमाम शरीर भर गया। दिन भर बराबर बर्फ २ की पुकार करते हुए वह बिचारा डाकृर घबरा गया था। पर इसके विपरीत उस कोमलांगी के शरीर पर इसका कुछ भी असर न होता, तमाम दिन उसका मन हर्ष से प्रफुल्लित रहता। उसको पसीना तक न आता था। प्यास भी नहीं लगती थी। न उसको कपड़े ही भारी मालूम पड़ते और न उसको लू ही सताती थी। केवल माणिकजी का स्मरण ही उसके लिये सुगन्धित समीर तथा ठंढी बर्फ का काम करता था। सच्चे प्रेम का यही नमूना है। बुलबुले हिन्द दाग सच ही कह गया है कि—

"इश्क नियामत है आदमियों के लिये, इश्क बन्नत है आदमी के लिये;
इश्क से ही आदमियत आती है, आदमी को मुरव्वत आती है।"

पैंतीसवाँ प्रकरण

बम्बई

लाहौर का स्टेशन आया ही तो। पदल जी स्टेशन पर आए थे। उन्होंने पुत्रीको छाती से लगाया। काश्मीर की आवोहवा से जर का मुख गुलाब की तरह खिला हुआ देख कर पिता का मन प्रफुल्लित हुआ। पदलजी की यह एकलौती बेटी थी। वे इसको लडके की तरह मानते थे। स्टेशन के बाहर गाड़ी तैयार थी। सब सामान नोकरों को लाने के लिए सहेज वे घर आए। नौकर चाकरोंने उनका स्वागत किया। जर अपने कमरे में गई। वहाँ उसने सुस्ता कर चाय पीया। इतने में सब माल असबाब आ गया। जरने सब वस्तुओं को लेकर उचित स्थान पर सजा दिया। केवल एक ही पार्सल उसने ज्यों का त्यों रख दिया, क्योंकि उसमें उसके प्रेमी के लिये खरीदी हुई वस्तुएँ थी। जान पहिचानके सब लोग मिलने आए, और काश्मीर की बहुत सी बातें हुई। जर को घर आने पर माणिकचन्द बहुत याद आने लगा। जिस घरमें वह अपने प्रेम पात्र की प्रतिमूर्ति देख अपने अधीर मन को धीरज देती थी उसी में "वह जापान पहुंचा होगा? मेरा पत्र उसने माणिक जी को दिया होगा?" आदि विचारों में वह आठो पहर और चौबीसों घन्टे गोते खाया करती थी। अन्त में प्रेम-पत्र आया ही। यह पत्र माणिकचन्द के जापान पहुच कर कहे हुए समाचार, भेजी हुई भेंट तथा पत्र का उत्तर था। डाकिये ने ज्यों ही आकर पत्र दिया कि उसकी मोहर देख कर जर हर्ष से बावली सी हो गई। जरने प्यारे के पत्रसे विक्षिप्त हो हर्ष के

डाकिये को पाच रूपये के नोट की भेंट तो कीही, पर उसके बाद उसने अपने सुकोमल हाथों से उस डाकिये की बलैयां तक ली। डाकिया चकित होता हुआ बाहर गया कि "इस स्त्री को क्या हो गया है?" उसके जानेके बाद जर अपनी करनी पर हंसी। पाठको, प्रेम ऐसा ही अन्धा होता है। स्वर्गवासी बुलबुले हिन्द दाग एक उर्दू कवीश्वर की हैसियत से प्रसिद्ध था। एक अवला के साथ उसका प्रेम लगा। धीरे धीरे उस प्रेमने प्रमाद तथा उन्माद का रूप धारण करना शुरू किया। एक दिन दाग के यहाँ कोई मेहमान आया। दाग़ने समझा कि "मेरी माशूकाने पैगम्बर भेजा है" । इससे दाग़ बातें भी करता जाता था और उसके जेब भी टटोलता था कि "प्रेम पत्रिका कहाँ है।" यह आप बीती उसने स्वय लिखी है। उसी के शब्दों में इसको पढने से विशेष आनन्द होता है—

"कोई मेहमां जो मेरे घर आया, मैंने समझा पैगम्बर आया,
उसकी बातों में बोलता था मैं, ख़त कमर में टटोलता था मैं,
कभी पीता था पाँव धो धो कर, कभी हँसता या रो रो कर,
उसको हैरत, यह माजरा क्या है, मेजबां को जुनूं है, सौदा है।"

जब एक विद्वान पुरुष की इश्क के जोश ने ऐसी स्थिति कर डाली, तब जर जैसी एक अबला ने यदि प्रेम के आवेश में डाकिये की बलैया लेली तो इसमें नवीनता क्या हुई? जब कि बडे बडे देवता, पैगम्बर बल्कि ईश्वर स्वयं प्रेमाधीन हैं, तब मनुष्य यदि प्रेमाधीन हो तो इसमें शंका किस बात की? मनुष्य को तो सच्चे प्रेम के वश होना ही चाहिए।

जरबानू ने पत्र लिया, उसको चूमा, आँखों में लगाया, और आशा से धड़कती हुई छाती से, थरथर कांपते हुए हाथो

से उसको खोल कर पढा। एक बार पढा, फ़िर एक बार पढा। इस प्रकार सैकडो बार पढने पर भी उसको सन्तोष नहीं हुआ। उसने माणिक जी का फोटो निकाला और उसको बार बार निहारा। फिर भी मन की व्याकुलता ज्यों की त्यों बनी रही। ठीक ही है, सन्तोष हो तो कहाँ से हो ? उसका चित्त तो अपने प्रेमी से बात करने के लिये तरसता था। भला वह कोरी चिट्ठी पत्री से किस प्रकार धैर्य धारण कर सकता है।

"जिसको मज़ूरे नजर हो देखना तस्वीरे यार;
वो किसी सूरत खिंचा मगवाए और देखा करे,
एक मैं हैरत जदा हो पूछता हू दोस्तों,
जो फक्त बातो हिका मुशताक हो तो क्या करे ?".

जापान से आया हुआ पत्र इस प्रकार लिखा था :—

"नेक खस्लत, नेक आदत, जान जिगर जर,
ए मुहब्बत के गुलशन के बुलबुले वे पर,
ए मेरे मन मन्दिर की मीठी मूरत,
ए सच्चे स्वभाव की तू सुन्दर सूरत,
इस बागे जहान में तू जीये सदा,
और मेरे जिगर साथ भेटे सदा,
तू गुल मैं बुलबुल तू दीपक मैं पतग,
बस तेरे साथ भटकूं दिल में रख उमग,
तुझ जन्नत की हूर के गुलाबी गाल,
है तेरे बिना दुनिया दोजख मिसाल;
तू सची है प्यारी तेरा सचा ज़िगर;
है भूठा जमाना फक्त जर बगैर।"

"प्यारी जर, तेरे मुबारक हाथ का लिखा हुआ पत्र मिला इससे मेरे टूटे हुए ज़िगर में जो खुशी हुई है, उसको लिखने

की ताकत मेरे कलम में नहीं है। काश्मीर के द्रश्य मिले। बेशक वागे विहिश्त की सीनरी है। काश्मीर को स्वर्ग की बराबरी करने में यदि कोई कसर थी तो वह फकत एक हूर की, उसको तूने वहां जाकर पूरा कर दिया। अब तेरा अदना आशिक बिल्कुल तन्दुरुस्त है। डाक्टर ने भी बम्बई जाने की आज्ञा दे दी है। बस, अब थोडे ही दिनों की और जुदाई है। आज से पाँचवें दिन जहाज पर सवार हूगा और दो हफ्ते में, बम्बई में हाजिर। दिल तो चाहता है कि पहिले कलकत्ते होता हुआ काश्मीर आऊँ, पर माता पिता की फिक्र, ऐसा करने से रोकती है। हाय जिस समय मैं पालवे (अपोलो बन्दर) में उतरूँगा। उस समय यदि वहाँ तुझ प्यारी का दर्शन नहीं होगा तो कैसी गजब की गुजरेगी। प्यारी यदि हो सके, तो तू भी शीघ्र ही बम्बई आने की कोशिश करना, जिससे मैं अपना जलता हुआ जिगर तेरे दर्शन से ठण्डा कर सकूं। तेरा समाचार लाने वाला हिन्दू बडा भला आदमी है। मुझे तो वह बहुत प्यारा लगता है। सुशिक्षित भी है। पर यहाँ की एक जापानी लेडी उसको अपने चंगुल में फँसाना चाहती है। मुझसे भी वह एक दो वार मिली थी। उसके सिर यही पागलपन सवार है कि वह किसी हिन्दुस्तानी ही की अर्द्धाङ्गिनी हो। पर पहिले वह उसको बौद्ध धर्म का बना लेगी, फिर उससे हाथ मिलायेगी अपने को तो गरीब जरथोस्ती मत और सीधी सादी जर से काम था। उसकी दाल भला यहाँ कैसे गल सकती थी ? मैं समझता हू कि तेरा हिन्दू नौकर यहाँ गोता खा जायगा। यों तो वह बहुत समझदार और चालाक है। पर निर्धनता के कारण सम्भव है वह पैसे के लासे में चिपक जाय। यह जापानी लेडी भी बहुत साफ सुथरी है, इस लिए इसके फिसल जाने

का भय है। बस अब छुट्टी लेता हूं। ईश्वर चाहेगा तो बहुत जल्द मिलेंगे।

तेरा सदा का चाहने वाला दास—
"मा० अरदेशर।"

"एक दो हफ्ते में बम्बई आवेंगे? कौन? माणिक जी? ओ हो हो।" इन शब्दों ने जर के दिल पर कैसा असर किया? तीर जैसा। क्यों? उसके मनका मालिक बम्बई आवे और वह लाहौर में बैठी रहे। ऐसा जीना ही किस काम का?

"छूट जाय ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं,
खाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं और हम कहीं।"

दूसरे जापानी-लेडी की बात भी कुछ फाँस की सी गडने लगी। माणिक के साथ यदि 'चन्द' उस जापानी युवती से विवाह कर ले तो कोई हरज़ नहीं क्योंकि वह रडुवा है। पर माणिक के साथ 'जो' यदि ऐसी भूल करे तो "गोपियों की कौन गति ?"

शोक! ऐसे गज़ब! ये शब्द सभी के कानों के परदे फाड सकते हैं। बस अब बम्बई जाना ही चाहिए। भले लाहौर में आग लगे। जापान जाना पड़े तो, वहाँ जाऊगी। पर पक्ष कहाँ है? न जाने कौन देगा? बस बम्बई और बम्बई ही शब्द ने कान के परदे फाड डालना शुरू किये पेर किस प्रकार चला जायगा, इसकी उसके मन में बडी फिक्र थी।

छत्तीसवाँ प्रकरण

बम्बई का न्योता

सन्ध्या समय की डाक में जर के दो लिफ़ाफे आए। एक में एक निमन्त्रण पत्र था और दूसरे में एक साधारण पत्र था। निमन्त्रण पत्र में लिखा था.—

"बम्बई, ता० १०वीं मई

"श्रीमती बहिन साहबा,

जगदीश्वरकी असीम कृपा से मेरी पुत्री शीरीन का विवाह दादाभाई माणिक जी के साथ ता० २८ मई, मगल वार के दिन होगा। अतएव आप बाल गोपाल सहित गिरगाव में अल्ब्लेस बाग में तीसरे पहर चार बजे पान सोपारी तथा रात्रि में सात बजे बिरादरी भोजन में सम्मिलित होकर मुझे अनुगृहीत कीजिए।

आपका दर्शनाभिलाषी—

आवाबाई मचेरशाह बरजोर जी छापगर

निमन्त्रणपत्र पढते ही जर के हृदय में बम्बई जाने की आशा बन्धी। फिर उसने दूसरा पत्र पढा, वह इस प्रकार था —

"बहिन जरबानो,

इस पत्र के साथ एक निमन्त्रणपत्र आता है उसको लीजिएगा। मेरे लग्न के इस अवसर पर आपको अवश्य आना चाहिए। अपने सम्बन्ध को एक तरफ रख कर केवल आपकी मित्रता ही आपको यहाँ आने के लिए बाध्य कर सकती है। मैं बहुत तरह से लिखती हूँ कि आपको आना ही पडेगा। गुला के विवाह के अवसर पर तो बम्बई ही में आप थीं।

उसका क्या ? मेरे लग्न के अवसर पर आप जब लाहोर से आएगी तभी आपके बहिनापे का पता चलेगा। और शोभा भी खूब होगी। यदि आप नहीं आवेंगी तो आपके विवाह पर मैं इसका पूरा बदला चुका लूंगी। आपको मेरी सौगंद है। आप जरुर आना, इसी बहाने हमलोग इतने दिनों में मिलेंगी। ईश्वर के लिए जरूर आना।

आपकी सदाकी खेरख्वाह बहिन,
शीरीन मचेरशाह बरजोर जी छापगर

नोट —लाहोर में आग्रह आदि का इन्तिज़ार मत करना।
शी० मं० ब० छा।"

यह मचेर शाह बरजोर जी छापगर एदल जी के मामा का लड़का था। रुपै पैसेसे भी वह सुखी था। उसका रहनेका बंगला वाल्केश्वर में और कोठी कोटमे थी। जरने इस अवसर से लाभ उठाया निमन्त्रणपत्र लेकर पन्थ पथ दो काज करने की नीयत से वह अपने पिता के पास गई।

एदल जीने अखबार को टेबुल पर रख हंसते हुए कहा, "बेटी मैं समझ गया तू किस वास्ते आई है। पर मैं तुझे बम्बई छोड़ने दूंगा।"

"आजा बावाजी, ई क्यों ? मै तो इसी वास्ते आई थी।"

"मुझे भी निमन्त्रणपत्र मिला है। मचेरशाह का एक पत्र भी आया है। उसमें लिखा है कि जो कामकाज में फंसे रहने से मैं न जा सकूं तो तुझे अवश्य भेज दूं।"

बावाजी, मुझे भी शीरीनने पत्र लिखा है और गुलाके विवाह पर मैं वहां थी और इसके वख्त नहीं जाऊंगी तो वह भी मेरे-"

"हां, हां, सरमाता क्यो है-? कहती क्यो नही कि वह भी तेरे विवाह में नहीं आवेगी। यही न ? अरे वाह री बेटी तो,

पेश तू भी विवाह करेगी ? तुझ काली कलूटी से कौन निकाह करेगा ?" फरूजी ने जान बूझकर उसको चिड़ाना शुरू किया।

बाबा जी, आप भी मुझ गोरी का अपमान करते हैं ? अभी मैं काश्मीर से और भी गोरी हो आई हूँ, फिर भी आप ऐसा कहते हैं ?"

"तेरी इच्छा है तो तू भले जा पर मुझे यहां अकेले रहना पड़ेगा।"

जर—"मैं बहुत शीघ्र लौट आऊंगी बाबा जी। मुझे केवल अपनी शीरीन के साथ मिलना ही तो है दूसरा काम ही क्या है।"

जर ने शब्द बोल तो गयी पर उसके अन्तःकरण में ऐसा मालूम अवश्य हुआ होगा कि किसी प्रबल शक्ति ने उसको इस प्रकार झूठ बोलने के लिये बाध्य कर अपराधिनी बनाया है जर के मन में शीरीन से मिलने के बनिस्बत शाहिजी से मिलने की इच्छा प्रबल थी। और उसी ने उसको बम्बई जाने के लिये उत्तेजित किया था।

पदलजी—जल्द ही से इसकी तैयारी करनी पड़ेगी। शीरीन को एक हीरे की अंगूठी और दादी मामा को पच्चावन रुपये देकर मैं मना लाऊंगा। बाकी बम्बई जाने आने का सब खर्च तू अपने पास से करना। क्यों ठीक है न ?

जर—सब तो आप ही देते हैं। फिर मैं कौन और मेरे पास का खर्च कैसा ? पिता जी, वह दादी मामा जी तो बड़े भारी जादूगर बनते थे और बारबार कहा करते थे कि मैं निकाह नहीं करूंगा, फिर यह हत्या गले कैसे बाँधी ?

पदल जी—"यह सब, बेटा, होता ही है। आज कल के पारसी बेटे ने जहां थोड़ी बहुत अंग्रेजी पढ़ना लिखना सीखा

कि इनका मिजाज आसमान में चढ़ जाता है। दूसरे अख़बार वाले इनको ज़रा ज़रा में ऐसा चढा देते हैं कि ये अधकचरे फूले भी नहीं समाते। इनके कपड़ों की तो शान ही निराली रहती है। बात बात में ये अंग्रेज़ी की टाग तोडते हैं। नेकटाई, कालर की कौन कहे, अंग्रेजों के टोप चढा घूमने फिरने में ही ये अपनी इज़्ज़त समझते हैं। घर में मुट्ठी भर चना नहीं जुरैगा, पर शान नवाबज़ादे की। "नए शौक़ीन खलीते में गाजर। हे परमेश्वर! तू जरथोस्ती क़ौम पर रहम कर। उसमें लडकियो ने तो ग़ज़ब की ढाई है। वे बाइसिकिल पर चढ घूमती हैं और यहा तक कि साडी पर मेम की खचिया चढ़ा लेती हैं। गले में रुमाल बाँधती हैं। ईश्वर इन पर रहम करे, इनको अपने सच्चे मार्ग पर लाए।

जर–बावा जी, मुझे तो इस विवाह में एक बाधा नजर आती है। मामा जी तो सुशिक्षित और अपने मच्चेर जी पक्के शहनशाही हैं। तब दूसरी बार के आशीर्वाद में जो बाधा उपस्थित होगी, उसका क्या किया जायगा?

एदलजी–इसका क्या, सुधरे हुए कदमी और शहनशाही सब आदर को जरथोस्ती ही न? अब सब पुरानी बातें ही कहा रहीं?, कहा हैं अब वे जरथोस्ती वीर? क्या जन्द ही भाषा में आशीर्वाद है? क्या संस्कृत भाषा का आशीर्वाद कोई चीज ही नहीं है? ईश्वर स्वर जमशेद जी की आत्मा को स्वर्ग वास दें। वह स्वर्गवासी तमाम दिन अपने सिर पर पगडी रखता था, घर में भी वह पगडी पहिने रहता था, जहाँ आज कल के लडके अंग्रेज़ी टोप पहिनने पर भी गरमी से घबडा जाते हैं। स्वर्गवासी महारानी विक्टोरिया से लेकर अदने अंग्रेज तक, एक पारसी से, यह कह कर भेंट करते कि यह

सर जमशेद जी की जात का है। लोगों का कहना है कि दूसरा ऐसा कोई नहीं उत्पन्न हुआ जो उनकी बराबरी कर सके।

जर-अब वैसे नर कहाँ पैदा होते हैं।

पद्ल जी—बेटा, सर वाल्टर फ़िथर, किसी काल में बम्बई का गर्वनर था। वह एक दिन फराम जी कावस जी बनाजी वालों के भज़गाम के बगले पर बिना सूचित किए किसी काम से आगया। फरामजी उस समय हजामत बनवाते थे। वे खुशामदी न थे। गवर्नर बिचारा दस मिनिट तक चुपचाप खड़ा रहा। जब वे हजामत बनवा चुके तभी उन्होंने गवर्नर से भेंट की। यद्यपि उन्होंने पेने में पीछे खड़े हुए गवर्नर को देख लिया था। आधी हजामत में से उठ गवर्नर की खुशामद करना उन्होंने उचित न समझा। उसी से उन्होंने वैसा किया। अब तो पारसियों का यह हाल हो गया है कि यदि कोई सड़क दारोगा किसी पारसी के घर आ जाय तो वह भोजन करते करते पत्तल पर से उठ कर उसकी खुशामद करने लगेगा। और अपने ही हाथों से अखबार में भी यह लिख भेजेगा कि आज अमुक साहिब अमुक पारसी के घर पधारे थे। दूसरे अब हिन्दुस्तान में वैसे खानदानी अंग्रेज़ भी नहीं आते। रिपन जैसे माँके पूत अब कहाँ नजर आते हैं! अब तो माइकेल ओडायर जैसे गवर्नर आते हैं, जो अपनी शान के आगे भारतवासियों को भेड़ बकरी समझते हैं। और अन्त में भारतवर्ष से अर्धचन्द्राकार पाकर विदा होते हैं। जनरल डायर, और थोमसन जैसे कर्मचारी आते हैं, जो निहत्थी प्रजा पर गोली चला कर ही अपनी आन, बान और शान दिखाते हैं।”

जर—मैं अपने ऐसे दृढ़ विचार वाले पिता पर

हूं। आप इतनी सब बातें जानते हैं इसका तो मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था।"

पद्मजी— बेटा ऐसी ऊंची बात कहने बैठूं तो पोथे का पोथा तैयार हो जाय। हां जर आज मेरे माणिकचन्द का भी पत्र आया है। उसने लिखा है कि आठ दस दिनों में नीलाम शुरू होगा। तीन हिन्दुस्तानी आए हैं। देखो और कौन कौन आता है। देखें माणिकचन्द वहाँ कैसी अक्लमन्दी खर्च करता है।

जर—आप की नीयत ठिकाने है तो बाबा जी ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। माणिकचन्द भी समझदार आदमी है। उस को दूकान का भी अनुभव हो गया है, इससे कुछ नादानी तो नहीं कर सकता। जो करेगा अच्छा ही करेगा। इसकी मुझे सोलह आने उम्मेद है।

बाप बेटी की बातचीत खतम हुई। फिर इधर उधर की बातें कर के जर बम्बई जाने की तैयारी में लगी। खुरशेदजी अपनी स्त्री और पुत्र सहित जर को लेकर बम्बई जाय ऐसी व्यवस्था की गई। जर आनन्द में मग्न होती हुई यह शेर पढ़ने लगी —

"खुदा रखे मुहब्बत ने किये आबाद दोनों घर,
मैं उनके दिल में रहती हू, वो मेरे दिल में रहते हैं।"

सैंतीसवाँ प्रकरण

मुझे अपना-लीजिए

"आपके कहे हुए प्रमाण बहुत मनन करने योग्य और गंभीर हैं, फ़िर भी मेरी बुद्धि की सीमा के बाहर होने के कारण, वे

मेरे ध्यान में नहीं उतरते। अतएव ईश्वर के अस्तित्व को न मानने को मेरा हृदय गवाही नहीं देता।" ये शब्द हमारे माणिकचन्द जैमींदार एम० ए० उर्फ रतिलालचन्द बहादुर के मुखारविन्द से निकल रहे थे। डाक्टर शमदा से आज शास्त्रार्थ हुआ था। कुछ मन बहुप्राय पुजारी बना हुआ माणिक जिसका हृदय बुद्ध के सिद्धान्तों पर कुर्बान हो चुका था केवल एक ही बात से हिचकता था। ईश्वर के ऐसा व्यक्ति के सिर पर कोई स्वामी अवश्य होना चाहिए, यह उसका दृढ़ निश्चय था। डाक्टर शमदा और मिस लवटा, कोई भी उसके मन का समाधान नहीं कर सके। उस समय कौमराकी आशा और निराशा के झूले में झूलती हुई मालूम पड़ती थी।

माणिकचन्द ने कहा, 'आप चाहे जो कुछ कहें पर मेरे मन से यह बात जा ही नहीं सकती। ईश्वर शब्द का इन्कार स्वीकार करने के नाम ही से मेरा कलेजा काँप उठता है। मैंने मौलवी हाली साहब के चार चरण हीरे के अक्षरों में अपने हृदय पट पर लिख दिए हैं। वे ये हैं —

हिन्दू ने सनम में* जलवा पाया तेरा,
आतिश पे मुगाँ † ने राग गाया तेरा,
दहरी ‡ ने किया दहर से तावीर () तुझे,
इन्कार किसी से न बन आया तेरा।"

डाक्टर शमदा ने कहा कि आप यदि मेरी बातों पर खूब विचार करेंगे तो सम्भव है कि हीरे के अक्षरों में लिखी हुई पंक्तियों का पानी भी जाता रहे। आज तो अब बहुत विलम्ब हो गया है, अब किसी दूसरे दिन इस पर और विचार करेंगे

---

* प्रतिमा, मूर्ति † आग्न्योपासक, अग्निहोत्री ‡ नास्तिक () मिस्र.

यह कह कर डाक्टर सब से विदा होकर चलता बना। दस पाच मिनट के बाद मिस कथडा भी विदा हुई।

माणिकने कोमरास्की से कहा, "अब मुझे भी आज्ञा दीजिए।"

"इस वक्त आप को होटल में कौन सी हुण्डी सकारनी है? अब तो आप खाली हो हैं। माणिक जी अरदेशर को तो आप विदा ही कर आए, और दो दिन से बराबर नीलाम में जाकर अपने सेठ का भी काम कर ही रहे हैं। मैं तो नहीं समझती कि इस समय आप को कोई काम होगा। आपको अकेले में कैसे अच्छा लगता है। मुझे तो आप से बिछुड़ते ही बड़ा कष्ट होता है। मैं फिर कहती हूं, माणिकचन्द जी आप मुझे अकेली छोड़कर मत जाइए।" इस वाक्य ने माणिक के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि वह वर्णित नहीं हो सकता। वह टक-टकी बाँध कर कोमरास्की को देखता ही रह गया।

माणिक—"यह लीजिए, मुझे क्या, मैंने यह अपना डेरा जमाया। मुझे तो आप ह. के समय का ख्याल न था।"

"आजकल तो मैं 'करनी न करतूत मिया लड़ने को मजबूत' हो गई हूँ।"

"अपने तो इसमें भी जी हैं।"

फिर गाड़ी आई और दोनों जने समुद्र के किनारे हवा खाने गए। कोचवान और साईस दोनों जापानी थे। ये दोनों अंग्रेजी में बातचीत करते थे इनको न कुत्ते का खटका, न बिल्लों का गम था। कोमरास्की की प्रेम की उर्मियाँ गले तक आ जाती थीं। अब इस अबला में आशा की उमंगों को दबाने की शक्ति न थी। लज्जा और सकोच इसकी टाँग पीछे खींचते थे, जब प्रेम और यौवन सब पर पानी फेर कर इसको

अपने मन की सब बात साफ़ साफ़ कह देने के लिए उत्तेजित करते थे। बिचारी नाज़ुक कोमराश्की बारबार चाहती थी कि वह अपने मन के उद्गार को दिल के बाहर निकाल कर अपना दिल हलका करे, पर उसके दिल की बात दिल ही में रह जाती थी। दूसरी दूसरी बातों ही में समय बीता जाता था

कोमराश्की—"मैं यह जानना चाहती हूं, मिस्टर माणिक चन्द, कि ये इश्क और प्रेम के शब्द, जो लोग चिल्लाते हैं वास्तव में कुछ है या सिर्फ डिक्सनरी (कोष)की शोभा बढाने ही के लिये हैं ?"

"स्वयं मैं तो अभी तक इन को साधारण ही मानता हूं।" यह सुन कर कोमराश्कीने एक लम्बी सांस ली। माणिकने फिर कहा, "इसका कारण यह है कि पजाब यूनिवर्सिटी के पंजे से छूटते ही मैं नौकरी के गोरखधंधे में फँस गया हूं—"

'पिन्हा था दामे सख्त करीब आशियान के;
उड़ने न पाये थे के गिरफ्तार हो गए।'

अतएव मुझे स्वय तो इस बात का अनुभव है नहीं, पर, हाँ पर बीती कह सकता हूं कि इश्क एक महान् रोग है। जिसका वैद्य, पथ्य और आरोग्य आदि सब केवल माशूक ही के हाथ में है। किसी को किसी प्रकार का दुःख न हो और यदि उसको कष्ट उठाने की उत्कंठा हो तो उसको इश्क शब्द का अर्थ प्रेम के पुस्तकके पन्नों में खोजना चाहिए। मेरी एक धर्म की बहिन थी, जिसको किसी बात की भी कमी न थी, उसने इस दुःख को खरीद लिया था। मैंने उसकी हालत अपनी आँखों से देखी है। निद्रा भूख, आराम, तथा अपना और पराया आदि सब वह भूल गई थी। एक भूली भटकी हुई हरिनी की तरह वह मारी मारी फिरती थी। जिसको फूलों

को बिछौना अगारे का बना डालना हो, मोतीके दानों को लुटाना हो, कोने मे मुह डाल कर रोना हो, परोसी थाली को लात मारनी हो, मित्रों को रुलाना और शत्रुओ को प्रसन्न करना हो, उसी को प्रेम शब्द से परिचित होना चाहिए। किसी कविने कहा है:—

'ये इश्क वह है कि पत्थर को दम में आम करे,
लगाए दिल वही जिसको खुदा तमाम करे।'

इस व्याख्यान और विवेचन से कोमलाङ्गी के दिल पर कैसा प्रभाव पड़ा होगा। वह बराबर सुनती गई—कुछ भी न कही—और जब माणिक बोल चुका तब उसके नेत्रों की तरफ बड़ी प्रेम तथा दया पूर्ण दृष्टि से देखने लगी और बोली।

"पर मिस्टर माणिकचन्द, जिसने इस संसार में प्रेमशब्द को एक प्रकार की मूर्खता का रूप ही मान लिया हो, और उसके गले यदि स्वयं यह बला आ लगी हो, या संयोग से उसके तीर से जो आदमी घायल हो गया हो, उसको क्या करना चाहिये?"

दूसरा वह करही क्या सकता है? अपने प्रेमपात्र से मिलने का प्रयत्न करे—अपने रोग की दवा करे।"

तब तो इश्क के रोग की दवा है सही। इस रोग के रोगी आराम भी होते हैं?"

माणिकचन्द ने उसके मनोभाव को न समझ कर उत्तर दिया' संसारमें भला ऐसाकौन रोगहै जिसका उपचार न हो!"

'क्या आप इश्क के रोग से मुक्त होने की दवा बता सकते हैं?"

मैं कुछ डाक्टर, वैद्य या हकीम तो हू नहीं।"

'यदि आप के पास दवा हो, आप डाक्टर, हकीम या वैद्य

दिया। जो आपका धर्म है वही मेरा धर्म। आपकी दशा वही मेरी दशा। आपका पतन वही मेरा पतन, आपकी इच्छा वही मेरी इच्छा यही अब मेरा दृढ़ निश्चय हो गया है। माणिक चन्द्र जी! मेरे कथन में आप ज़रा भी शंका मत कीजिएगा। मैं सच्चे अन्तःकरण से कहती हूं, यदि आप मुझे स्वीकार कीजिएगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी। नहीं तो इस संसार के सब पुरुष मेरे लिये पिता और भ्राता के तुल्य हैं। मेरा और कोई नहीं है, यदि सगे सम्बन्धी या मित्र कोई भी हैं तो आप ही हैं। किसी काल में भी मैं आपको दग़ा नहीं दूंगी। आप ही की हो कर रहूंगी। दुख में सुख में, शान्ति में या आपत्ति में, बुराई में या भलाई में आप के पसीने की जगह में सदा अपने खून की धारा बहाऊँगी। नहीं फिरूँगी नहीं डिगूंगी। बस आप मुझे अपनी बना लीजिए।" यह कह कर कोमरास्की ने माणिक के दोनों हाथ अपने हाथ में दबा लिये और उत्तर की आशा से उसके मुंह की ओर देखने लगी। अहा हा! बाहरे मनुष्य का हृदय! सत्य ही कहा है —

'रोके नहीं रुकती है किसी पर अगर आ गई
आंधी की तरह आई तबियत जिधर आई।'

"मुझे कुछ सूझता नहीं है-मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि इस स्वप्नवत् बातों का क्या उत्तर दूं?" कोमरास्की के जोश भरे भाषण से दबा हुआ, और किं कर्त्तव्य विमूढ़ इम्तिहान चन्द्र ने ऊपर का वाक्य कहा उसने क्या कहा, इसका उसको कुछ भी ध्यान न था।

कोमरास्की ने शान्ति से कहा। "घबराइये मत, जल्दी मत कीजिए। धीरज से विचार कर, हानि लाभ को काँटे पर तौल कर मेरी बातों का उत्तर दीजिए। यह कुछ अन्न, जल,

रह सकता ? 'मन् आनम के दानम्'—मैं जो कुछ हूं सो मैं जानता हू। जिसके हाथ के बीने हुए चार बैर कोई न ले उस पर मिस कोमरास्की जैसी चतुर विदुषी का मोह जाना, भला, कैसे सम्भव हो सकता है? मिस साहब! आप मुझ गरीब की क्यों हँसी उड़ाती हैं?

कोमरास्की ने बड़े गम्भीर भाव से कहा, "मिस्टर माणिक चन्द! आप अपनी ही नहीं वरन् मेरी भी परीक्षा-शक्ति के साथ अन्याय करते हैं और उसका अपमान करते हैं। मैं अशिक्षित बालिका नही हू और न मैं इतनी भोली भाली ही हूं। मैंने आप में बहुत कुछ देखा है, यह आप नही जान सकते। भौं की मनोहरता नेत्रों के देखने में, कस्तूरी की सुगन्ध मृग को नही आती। मोती का मूल्य सीप कहा से बता सकता है! "कद्रे गौहर शाहदानद या बिदानद जौहरी!" मैं अंधी नहीं हू!

'गौहर को जौहरी, सराफ जर को देखते हैं,
बशरके देखने वाले बशर को देखते हैं।'

आप के पास पैसा नहीं है; और पैसे की मुझे भूख भी नहीं है। यदि मैं अपनी मिल्कियत को मिट्टी के मोल भी निकाल डालूं तो भी पचास लाख कहीं नही गये हैं। पैसे जैसी तुच्छ वस्तु की पूछ ही कौन करता है? मैं आपकी हूँ तो पैसे फिर किस के? एक बार मुझे आप अपना लीजिए और अपने मन से निर्धनता शब्द को सदा के लिये निकाल दीजिये। आप स्वप्न में भी यह ख्याल मत कीजिएगा कि मैं धन के ज़ोर से आपको खरीद रही हूं। मैं स्वयं आप की दासी बनना चाहती हू। आज तक मेरा यही निश्चय था कि मैं उसी की होकर रहूंगी जो कोई बौद्ध धर्म को स्वीकार करेगा, पर आपने मुझे अपने निश्चय से डिगा दिया और दूसरे ही मार्ग पर मुझे फेर

करने का उचित प्रयत्न करेंगे। पर केवल आप मुझे अपनी बना लीजिए।' और फिर देखिए, आपकी इतने परिश्रम से प्राप्त की हुई विद्या किस प्रकार परमार्थ में लगती है। कोचवान! गाड़ी साहब के होटल की तरफ ले चलो।

गाड़ी चली, होटल आ पहुंचा। कोमरास्की का शरीर गिर पड़ा। "अरे रे! क्या अब मैं आप से अलग होती हूं? देखिए, मुझे अकेली मत छोड़िएगा" इस प्रकार बिलखती हुई वह प्रेम मदोन्मत्त इस समय परवश होकर रो पड़ी।

माणिक ने दया और दु:ख से उसके आंसू पोंछते हुए कहा, "आप यह क्या करती हैं? चलिये मैं, आप को घर तक पहुंचा आऊं। वहां से लौट आऊंगा इतना ही न?"

"बड़ी कृपा होगी" कहकर कोमरास्की ने कृतज्ञता प्रकट की। गाड़ी चली पर कोमरास्की को तो एक ही धुन लगी थी —

"गनीमत जान इस मिल बैठने को,
जुदाई की घड़ी सिर पर खड़ी है।"

वही हुआ। घर आया, गाड़ी ठहरी। साईस ने चट दरवाजा खोल उनको उतारा। गाड़ी घुमाकर खड़ी रखने का हुक्म देकर कोमरास्की माणिक को हाथ पकड़ कर भीतर ले गई। आखिर बड़ी लाचारी से उसने माणिक को विदा किया। "जाओ" शब्द कहते उसका हृदय काँप उठता था। फिर उसने वापस बुलाया और इधर उधर देख कर उसकी बलैयाँ लीं और दोनों अलग हुए। आज के रंग ढंग से नौकर चाकर भी अवश्य कुछ न कुछ तो समझे हों कि —

"रंग निराला, शौक दुबाला आदी देखा भाला है,
"गुरग सब पहिचान गए कुछ दाल में काला काला है।"

या जर जवाहिर के खरीदने की बात नहीं है, यह दिल जैसी मँहगी वस्तु का सौदा है, दूसरे को अपना करने की बात है। यदि आज आप की इच्छा न हो तो कल परसों या आप जब चाहें तब मेरी विनती पर ध्यान दीजिएगा। पर मुझे भूल मत जाइयेगा-मुझे हताश मत कीजिएगा। मैं अन्न-जल और निद्रा का त्याग करके आप के उत्तर की आशा देखती रहूंगी। यदि और कुछ नहीं तो केवल दया के नाम ही पर आप मेरी ओर देखिएगा।"

माणिक चन्द के हृदय-समुद्र में इस समय विचार तरंग बड़े वेग से उठ बैठ रहे थे। जात-बिरादरी से तो उसका नाकों दम आ गया था। केवल माता-पिता का मोह ही बीच में अपनी टाँग अड़ाता था। एक तरफ दरवाजे पर आई हुई लक्ष्मी का ख्याल और दूसरी ओर माता-पिता की नाराजी! क्या करे और क्या न करे?

"कल-नीलाम में से सीधा आप के ही यहां आऊंगा और आप के प्रश्न का उत्तर दूंगा।"

कोमरास्की ने संतोष से उत्तर दिया, "खैर, जैसी आप की इच्छा। देखिए, खूब सोच विचार कीजिएगा। आप विश्वविद्यालय से ऊब गए हैं और जात-बिरादरी से घबरा गए हैं। पाठशाला स्थापित करने, विद्या का प्रचार करने, और स्वदेशोन्नति करने के आप के सब विचार पूर्ण हो सकते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रख आप हानि लाभ का विचार कीजिएगा। अपने गांठ के लाखों रुपये प्रदान करने के उपरान्त व्याख्यान दे देकर रकमें इकट्ठी करेंगे। भारत वर्ष की प्रजा को उसके सच्चे अधिकार का दर्शन कराएंगे। वर्त्तमान काल के तन्द्रा में पड़े हुए भारतवासियों को सचेत

इतने में एक शंका उत्पन्न हुई और वह मन ही मन बड़बड़ाने लगा,—

"नहीं, नहीं, विवाह करने से कुछ लाभ नहीं है। लाभ होने की जो कुछ सम्भावना है वह सब धन के योग से। तो क्या कोमरास्की का हृदय किसी दूसरी ओर नहीं फेरा जा सकता ? फिर विवाह करने की कोई आवश्यकता न रहेगी। मैं यदि इससे विवाह कर लेता हूँ तो मेरे माता पिता के हृदय पर कैसा आघात पहुँचेगा ? मेरे पढ़ने लिखने को संसार किस प्रकार धिक्कारेगा ? प्राचीन पद्धति पर चलने वाले तो अभी भी कहते हैं कि 'जो गिटपिटिया भए सो हाथ से गए।' तब तो मैं भी इस कथन को चरितार्थ करनेवाला कहा जाऊँगा। इसके अलावा जात गई पाँत गई। हिन्दुओं की निगाह में गिर जाऊँगा। विवाह को प्रेमलग्न का नाम मिलेगा एक मात्र धन की लोलुपता से। विवाह होने के उपरान्त फिर कोई परमार्थ का काम हो सके—चाहे धन की कितनीही प्रचुरता क्यों न हो—यह मुझे सम्भव मालूम नहीं देता। उस समय तो विलासोपभोग की लालसा उत्तरोत्तर वृद्धिगत बढ़ती जायगी। यदि संसार में रहकर सत्कार्य हो सकते तो आज सन्यास और वैराग्य का नामोनिशान भी न रहता। विवाह के यन्त्रत में पड़कर परतंत्र होना और माता पिता के हृदय को कष्ट पहुँचाना, इससे तो विवाह न करना ही लाख बार अच्छा और श्रेयष्कर है।"

इसी प्रकार विचारों की उथल पुथल में प्रायः रात बीत चली। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि चाहे किसी प्रकार से हो कोमरास्की को समझा बुझाकर उसकी प्रार्थना अस्वीकृत करनी चाहिए। फिर उसके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि, "क्या वह मान जायगी ? वह स्त्री है, युवती है साथ

अड़तीसवाँ प्रकरण

विवाह करने ही से क्या लाभ है ?

कोमरास्की से विदा होकर हमारे श्मितिहानचन्द्र उर्फ माणिकचन्द्र अपने होटल में आ पहुँचे। आते ही वे अपने कमरे में बिछौने पर जा लेटे। मनमें नाना प्रकार के विचारों का तुमुल युद्ध चल रहा था। इससे उनको झपकी तक न आई। कोमरास्की की बातें मान लेने में उनको अनेक लाभ होने की सम्भावना थी। प्रथम तो इन लाभों के ही बारे में वे विचार करने लगे।

इसको अपने आधे अंग की अधिकारिणी बना लेने में अपने जन्म की सहचरी दरिद्रता तो हाय मारकर अपना प्राण दे देगी। यदि वह किसी प्रकार बच भी गई तो यह अवश्य उसको स्वर्गधाम का दर्शन करा देगी। फिर लक्ष्मी के साम्राज्य में अपने विचारे हुए सब कार्य बड़ी सुगमता से सम्पादित हो सकते हैं। धन ही से धम है। धनहीन की पूछ कहीं भी नहीं है। दूसरे यह स्त्री स्वयं विदुषी है, इससे अपना गार्हस्थ्य जीवन भी सुख पूर्वक शान्तिमय बीतेगा। मैं लाख जतन के लिये मर मिटूँ, चाहे मैं धर्म की मूर्ति ही क्यों न बन जाऊं परन्तु बिना लक्ष्मी की कृपादृष्टि के इज्जत आबरू घर की ड्योढ़ी के भीतर नहीं आ सकती। बिना इज्जत के ज़िन्दगी में लज्जत नहीं। क्योंकि 'सर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयन्ति'। फिर मैं इसकी प्रार्थना क्यों न स्वीकारलूं ? इसमें हर्ज ही क्या है ? दूसरे विवाह कर लेना भी उत्तम ही है।"

इस प्रकार विचार सागर में वह खूब गोते खाने लगा।

"कल माणिकचन्द न जानें कैसा उत्तर देगा, वह मुझे पत्नी के तौर पर स्वीकार करेगा कि नहीं ?" ऐसे अनक विचार और संशय उठ रहे थे, जिससे रात भर निद्रादेवी उसके नेत्रों में प्रवेश न कर सकी। क्योंकि निन्द्रा का सम्बन्ध शान्ति के साथ है क्षोभ के साथ नहीं।

पेट पूजा करके वे दोनों बैठक में गए। माणिक चन्द एक जापानी आराम कुर्सी पर लेट गया, कोमरास्की भी टेबुल के सहारे एक कुर्सी पर बैठी।

इस के बाद कोमरास्की ने बातचीत शुरू की, "मिस्टर माणिक चन्द आपने मेरी बातों पर क्या विचार किया ? मैं तो समझती हूं कि आपने उस पर भरपूर विचार किया होगा। और आप के मुखारविन्द से मैं सन्तोषदायक ही उत्तर सुनने की आशा रखती हूँ।"

माणिक चन्द ने दुमानी जवाब दिया, "मैं भी ऐसी ही इच्छा रखता हूं कि मेरे उत्तर से आप को सच्चा सन्तोष प्राप्त हो। तमाम रात मैंने आप की बातों पर विचार किया, पर मेरा यह कहना है कि विवाह करने ही में क्या लाभ है ?"

"विवाह करने ही में क्या लाभ है ? यह कैसा सवाल ?" कोमरास्की आश्चर्य से उस वाक्य को दुहराते हुए टकटकी लगाये उसके मुख की ओर देखने लगी।

माणिक चन्द ने अपने वाक्य का समर्थन करते हुए कहा, "मेरा प्रश्न आप के मन में कदाचित् आश्चर्य तो उत्पन्न करेगा, पर जब आप उस पर विचार करेंगी तो वह आप को श्रेयस्कर ही समझ पड़ेगा। पति पत्नी के सम्बन्ध से बन्धुभाव-मित्र-भाव-का प्रभाव कहीं अधिक पड़ता है। मैं आप के साथ वि कर्रूं और आप मेरे इच्छानुसार अपने धन का व्यय करें

ही में धन-धान्य से सम्पन्न है। शास्त्र में भी नारी, हठ बडा जबरदस्त कहा है। यदि उसने अपनी हठ न छोडी तो? खैर, उस समय ईश्वर जैसी बुद्धि देगा वैसा करूंगा।"

इस समय साढ़े पाँच का अन्दाज था। आकाश में तारे विलीन हो चले थे। मन्द प्रकाश की आभा छटक रही थी। पौ फटना चाहती ही थी। प्रातःकाल के सब लक्षण व्यक्त होते जाते थे। होटल के नौकर चाकरों की दौड धूप उसको कर्ण गोचर होने लगी। वहाँ चाय तैयार थी। चाय पीकर वह थोडी देर बाद बाथरूम (स्नानागार, जल घर) में गया। इतने में उसको बुलाने को कोमरास्की की गाडी आ पहुँची। ज्योंही वह नहा धाकर अपने कमरे में आया कि उसने कोमरास्की के कोचवान को वहाँ खडा पाया। कपडे पहिन कर वह तुरन्त गाडी में सवार हुआ। प्राय सात बजे के लगभग वह कोमरास्की के इन्द्र भवन-सदृश भवन में आ पहुँचा।

कोमरास्की बडी आतुरता से अपने भावी पति की प्रत्याशा करती हुई घर के दरवाजे ही पर खडी थी। माणिकचन्द के आते ही वह कम्पाउंड के सामने आई और हाथ पकड कर उसको ले गई। कमरे में टेबुल पर पहिले ही से नास्ता तैयार था। उस कठपुतली ने बातचीत करने के पूर्व उससे नास्ता कर लेने का आग्रह किया। नास्ता करने के लिये जब कोमरास्की सामने टेबुल पर आ बैठी तब उसके मुख और नेत्रों को देखने का माणिक को पूर्ण अवकाश मिला था। उसका चेहरा उतरा हुआ नजर आता था और आँखें लाल हो गई थीं। इससे वह तत्काल अनुमान करसका कि यह प्रमदा भी रातभर सोई नहीं है। वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। मानवी प्रकृति सर्वत्र समान ही है। कोमरास्की के मनमें भी रातको,

अपनाने का विचार करने का श्रम उठाइयेगा। यदि अपनी नहीं तो मेरे ही हित की धारणा अवश्य रखियेगा।"

यह विषय बन्द हुआ और दूसरे विषयों पर गपशप होने लगी। पहिले ही विषय में प्राय दोपहर हो गया था।

उनचालीसवाँ प्रकरण

दो प्रेमियों का मिलाप

दिन के बारह बजने का समय है। धूप ऐसी निकली है कि हरिन के सिर फटे पडते हैं। शरबत वालों की दूकानों पर ग्राहक टूटे पडते हैं। एक गिलास पानी पीने पर चार गिलास पसीना निकलता था। नए पहिने हुए कपडे सब खराब हो जाते थे। नशे में चूर गोरों की लातों से रोज दो एक पंखा कुली के स्वर्ग गमन की चर्चा अखबार में निकलती थी। अखबार के सम्पादक अपने कलम के घोडों को कागज के मैदान में सरपट दौडा कर इस घातकीपने को रोकने के लिए पुकार कर रहे थे। कुम्भकरण की निद्रा में सोई हुई सरकार उनको एक कान से सुनती और दूसरे से निकाल देती थी। न दाद न फरियाद। म्युनिसिपालिटी के नल के रोने, जनता की आँखों में धूल का बेशुमार भंडार, ऐसी परशुरान की भूमि में बसी हुई मोहमयी नगरी की उष्णकाल में अवस्था थी। इन दिनों में अपोलो बन्दर पर नेकटाइ, कालर बाँध अंग्रेज बने हुए कितने पारसी नवयुवक, चाहे जितनी गरमी पडे पर सिर से पगडी न उतारने वाले लकीर के फकीर वृद्ध लोग, और रंग बिरंग की साडियों से सुसज्जित पारसी

मानता, परन्तु बन्धुभाव को, विषय सुख से रहित होने के कारण, अधिक पवित्र और उत्तम मानता हूं। आप के प्रेम की परीक्षा करने का विचार तक उत्पन्न होना सर्वथा अशक्य है। आप के प्रेम की दृढता के विषय में मुझे जरा भी शंका नहीं है। मैं जो कुछ कहता हू वह सर्वथा निष्कपट और सत्यता से कहता हूं।"

इसके उत्तर में कोमराक्की ने कहा था, "मैं विवाह करूगी तभी ही अपना धन भारतवर्ष के लाभ के निमित्त व्यय करूँगी अन्यथा नहीं-यह विचार आप एक दम अपने हृदय में से निकाल दीजिए। एक बार मैंने जो कुछ कह दिया वह निराश होते हुए भी मैं पूर्ण करूगी। मेरा धन आर्यावर्त के लाभ के निमित्त ही है। अब वह अन्य किसी कार्य में व्यय नहीं हो सकता।"

"आपकी इस दृढता और उदारता के लिये मैं आप का जितना कृतज्ञ हू उसे शब्दों में नहीं कह सकता। आपकी जितनी प्रशंसा करू उतनी थोडी है।"

"आप का कथन और आपके विचार कदाचित सर्वथा ठीक भी हों तब भी आपकी ओर से मेरी आशा अपने दिल से निकाले नहीं निकलती। इस समय मेरे हृदय में निराशा का इतना अधिक भयकर आघात पहुंचा है कि स्त्री जाति उसको कदापि सह नहीं सकती। अतएव इस समय हम लोग इन बातों को छोडकर यदि दूसरा विषय उठावें तो अच्छा हो। संध्या समय पुन: इस बात की स्वस्थ चित्त से चर्चा करेंगे। पर आप मेरी इतनी प्रार्थना तो अवश्य ध्यान में रखिएगा कि एक स्त्री का हृदय दुखाना अच्छा नहीं होता। इतने पर भी आप मुझे

"इश्क में यह बात न हो क्या माने ?
जज्बे कामिल में कमालात न हो क्या माने ?
इश्क बाजी में करामात न हो क्या माने ?
जिसको जी चाहे मुलाकात न हो क्या माने !"

तब तो यह सिद्ध होता है कि प्रेम में आकर्षण, शक्ति है। यदि यह सत्य नहीं है तो कविने फिर ऐसा क्यों लिखा —

लैलीने फस्द ली थी तो मजनू को खू बहा ।"

भक्तशिरोमणि महात्मा तुलसीदास जीने भी लिखा है—

जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू ।

सत्य है, हृदय एक प्रकार का तार आफिस है। पाठक ने यदि बिजली-विभाग में नौकरी की होगी तो उसको माशूक के एक एक क्षण के तार मिले होगे। वह हाय ही किस काम की कि जिसने हृदयको कम्पायमान नहीं किया? वे नेत्र ही किस कामके जिन्होंने, अपने लक्ष्य को आर पार छेद कर न देख लिया हो? जिस समय जर के मन में पत्र लिखने का विचार उत्पन्न हुआ था, उसी समय माणिक जी के मन-माणिक्य में भी प्रेम का पानी निकल पडा था। उसने भी एक पत्र लिखा। लड़के को खुग ठीक ठीक पता बता उसीदम उसको विदा किया और कह भी दिया था "उस लेडी से कहना कि यह चिट्ठी एक पारसी स्त्री भूलसे हमारे सेठ के पास दे गई थी, सो सेठने तुम्हारे पास भेजा है।"

"अच्छा बाबू" कह कर लडका वालकेश्वर की तरफ बढा। दोनों तरफ की यही बात हम को यह चेतावनी देती है —

"चाहने का मजा जब है के वो भी हो बेकरार,
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।"

माणिक जी के पत्र में यह लिखा था —

अकस्मात् चार आँखें हुईं । जर को चक्कर आ गया ! मुख पर रूमाल डाल कर वह बैठ गई । मंचेरशाह के यहाँ विवाह का आनन्द लूटने आया हुआ एक रंगून निवासी धनाढय सेठ भी उतरा था मुबारकबादी की नाद में जर का किसीने ख्याल तक न किया । जर तो वास्तव में माणिक जी को देखने ही आई थी । वह मंचेर शाह के यहाँ ही उतरी थी । आगन्तुक मेहमान के स्वागत के बहाने वह अपने प्यारे को देखने गई थी । माणिक जी वाली स्टीमबोट तो किनारे भी लग गई । गाडियोंमें बैठ कर वे सब घर की तरफ रवाना भी हो गए । मंचेरशाह वाले भी अपने मेहमान को लेकर अपने बंगले पर पहुचे । जर भी अपने कमरे में, जिसमें वह उतरी थी, आकर थकावट तथा हर्ष से एक आराम कुर्सी पर जा पडी । थोडी देर बाद मन शान्त कर के उसने एक पत्र लिखा । एक आदमीके हाथ उसको भेजा । चिट्ठीमें यह लिखा था—

"मेरे प्राणेश्वर,

आपने मेरी तरफ निगाह फेरने में भी कजूसी की, पर आपके चितवन की भूखी चक्कर न आने तक बराबर एक टक से आपके दर्शन करती रही । यात्रा के श्रम से थके हुए अपने नाजुक बदन को आज तो विश्रान्ति दीजिए । कल सन्ध्या समय छ सवा छ बजे के समय महालक्ष्मी तोपखाने के पास मिलने की कृपा कीजिएगा । बस मेरी यही विनती है ।"

एक कविने लिखा है—

> 'होती जरूर इश्क में है दिलसे दिलको राह,
> दोनो तरफ से प्यार हो, दोनों तरफ से चाह ।'

दूसरे किसी कविने कहा है,—

मेरे गुनाहों की तरफ़ मत ख्याल कीजिए आप अपने बड़प्पन और क्षमाशीलता की ओर देखिए।"

"बात बनाने खूब आता है। चलिए उस बेंच पर बैठ कर बात चीत करें।" यह कहती हुई जर उनसे लिपट गई।

बेंच पर जाकर पहिले दोनों कुछ दूर दूर बैठे। हवा खाने वाले आते जाते थे। थोड़ी देर में अन्धकार ने धीरे धीरे अपना साम्राज्य फैलाकर इनको मनमानी बातें करने का खूब मौका दिया। बड़े खुले दिल से इन लोगों की बात चीत हुई। एकाएक आकाश बादलों से घिर गया। अचानक बिजली का एक कड़ाका हुआ। उससे डर कर, 'अरे माँ रे' कह कर जर माणिक जी से लिपट गई। माणिक जीने भी आवश्यकता से भी अधिक विशेष रीति से अपनी प्राणप्यारी को अपने हृदय से लगा रखा और ईश्वर से यह प्रार्थना की कि—

"लिपट जाते हैं वो बिजली के डर से,
इलाही ये घटा दो दिन तो बरसे।"

पर आकाश को इतने दिनों में मिले हुए इस जोड़े पर तनिक भी रहम न आया। उसने भादो मास की तरह एक झोंक पानी गिराया और पानी के पत्थरों से इनको मारना आरम्भ किया। ज़ाही आकाश ऐसा ही है तभी किसी प्रेमी ने कहा है कि—

"ये दो दिल को एके जा बिठाता नहीं,
इसे वस्ल प्यारों का भाता नहीं।"

जर ने भी वियोग का समय नज़दीक आते देख निगाह भर माणिक के मुख को देखना शुरू किया। पर पलक बीच आ ही गई। हाय, प्रेमी जोड़े के सभी शत्रु निकलते हैं। एक गोपी ने ब्रह्मा पर अपने उद्गार ठीक निकाले हैं—

खाने चलने को कहा। दस मिनट में गाड़ी वहाँ आ ठहर गई। इस समय पूरे पूर पाँच बजे थे। सूर्य की मन्द गति पर जर को बडा गुस्सा आया। पर वह बेचारी इतने लम्बे हाथ कहाँ से लावे कि उसको पकड कर पयोनिधि में डुबा दे किसी न किसी तरह पौने छ. बजे। इधर उधर घूमती, बरा-बर लोगों के पैर की आवाज सुन वह चिहुंक कर फिर के देखती, गाडी की खडखडाहट होने से आशा बाँधती, फिर निराश होती और बार २ सोने की छोटी घडी जेब में से निका-लती और फिर उसमें रखती थी पर आने वाले का तो अभी तक कुछ पता भी न था। अहाहा!

'ग़ज़ब किया तेरे वादे पर ए एतबार किया,
तमाम रात कयामत का इन्तेजार किया।'

छः बजे, अभी तक किसी का ठिकाना नहीं। गुस्से से शरीर लाल हो गया। आवे तो बोलना ही नहीं, ऐसा संकल्प किया। इतने ही में पीछे से साहब जी की आवाज आई। सब सकल्प विकल्प पर पानी फिर गया।

"आइए, आप तो बडे लोग हैं, समय के बड़े पाबन्द हैं।" इस प्रकार जर बेतहाश बोल उठी।

"क्षमा कीजिएगा, खमाला हिल के कोने पर एकाएक एक सहपाठी मित्र मिल गया। उसके साथ सभ्यतानुसार बात चीत करने में पाँच मिनट लग गए।"

"दूसरे की बातों से तो शान्ति मिलती ही है! बम्ब के दोस्तों के आगे लाहौर से आए हुए किस गिनती में हो सकते हैं?"

"लीजिए, अब तो माफ कीजिए। यह आपका सेवक गुनाहगार, तकसीरवार और भूलों का भण्डार है। आ

नावस्था आदि से ऊबा हुआ शुष्क हृदय माणिकचन्द बैठा है। कौन पहले बोले, दोनों यही विचार कर रहे हैं।

अन्त में प्रेम के पंजे में फँसी हुई कोमरास्की ने उत्कंठा और विनीत भाव से पूछा, "मेरे लिये आपने अपने हृदय में क्या छिपा रखा है, इस बात को जानने को मुझे बड़ी आतुरता हो रही है। माणिकचन्द! कहिए, मेरे हृदय को शान्त कीजिए, मुझे उत्तर दीजिए, आपकी निर्दयता का अभी नाश हुआ कि नहीं?"

"हाँ, मैं आपका पाणिग्रहण करने में लेशमात्र भी ..." नींद से जगे हुए के समान, चिहुँक कर वह बड़बड़ाया और फिर विचार सागर में गोते लगाने लगा।

आशा और निराशा में डाँवाडोल होती जापानी अबला ने आतुरता से पूछा। "लेशमात्र क्या?"

फिर माणिकचन्द चिहुँका और उस जापानी युवती ने क्या कहा, इसे भली भाँति न समझकर आगे कहने लगा,—"हाँ, मैं ऐसा करने में लेशमात्र भी अड़चन नहीं देखता परन्तु—"

"ओ, बस हो गया मैं आपकी—परन्तु 'परन्तु' कहकर आप रुक क्यों गए? आगे आप क्या कहते हैं?" यों पूछती हुई कोमरास्की ने आवेश से माणिकचन्द के हाथ पकड़ कर अपनी आँखों पर दाबे।

माणिक विचार सागर से निकल कर अपने मनपर काबू रखते हुए कहने लगा, "नहीं ऐसा मत कीजिए। ठहरिए, मैं जो कुछ कहता हूँ उसे ध्यान से सुन लीजिए।"

"अरे कहिए न, फिर आपके विचारों ने क्या चक्कर खाया?" किनारे पर से फिर बीच दरिया में जा गिरते हुए व्यक्ति की निस्सहाय होकर कोमरास्की कहने लगी।

"बंदो मन्द अरविन्द सुत, जिहि न प्रेम पहिचान,
पीमुख निरखन दृगन के, पलक रची बिच आन।"

माणिक ने छाता खोला और लाचार होकर गाडी वाले को बुलाया। गाडीवाला भी बडबडाता हुआ आया। दोनों जने गाडी में बैठे। थोडी दूर जाकर गाडी खडी कराई; क्योंकि माणिक को संभाला हिल उतर कर गेट के बाहर से होकर जाना था, और जर को वालकेश्वर जाना था। लाचार होकर अन्त में दोनों अलग हुए। जर ने कुछ कहा हो, ऐसा सुनकर, माणिक जी ने पूछा कि, "डिड यू आस्क मी एनीथिंग (आप ने कुछ कहा है)?"

जर ने उत्तर दिया "यस"।

माणिक जी ने पूछा "ह्वाट (आप ने क्या फर्माया है)?"

"ओन्ली लव मी लिटिल, बट लव मी लॉंग (मुझ से प्रेम चाहे थोडा ही कीजिये, किन्तु वह चिरस्थायी होना चाहिये) बस साहब जी।" "गाडीवाले! वालकेश्वर चलो।" प्रेम की याचना करके जर ने गाडी वाले को हुक्म दिया और गाडी वालकेश्वर की तरफ दौडी।

चालीसवाँ प्रकरण

अब हिन्दुस्तान में चलिए

फिर वही जापान, वही विजातीय जोडा, वही गाडी वही दरिया का किनारा और वही कोचवान जिनको हम एक बार देख चुके हैं। एक तरफ प्रेमजाल में जकडी हुई युवती और दूसरी ओर विद्या, जात बिरादरी, निर्भ-

"धन्य,धन्य, आप को कोटिश: धन्यवाद है ! परमार्थ प्रेमी विदुषी ! आपकी जननी को, जिसकी कोख में आप ऐसी उदारचित्त बाला ने जन्म लिया है, अनेक धन्यवाद।"

"मेरा अन्त:करण यह कह रहा है कि यदि आप अपनी गाँठ से मुझे इस बादशाही रकम को देकर मेरे साथ व्याख्यान देने को कमर कसेंगी तो मेरा दीन देश इस गई बीती हालत में भी आप की कृतज्ञता नहीं भूलेगा। आप देखिएगा कि नादिरशाही ओडायर शाही और डायर शाही के अत्याचारों से पीडित धूर्त चालबाज व्यापारियों से दरिद्र किया हुआ, पराधीन, मुट्ठी भर अन्न के बदले में चक्की की तरह पीसे जाने वाला, विचारा हमारा गरीब देश अपने हितेच्छु पर किस प्रकार स्वर्ण की वृष्टि करता है। मैं साहस पूवक कहता हूँ कि एक वर्ष के भीतर ही एक करोड की रकम हम लोग सुगमता से एकत्र कर सकेंगे। जिस दिन हम लोग इस बीडे को खाकर अपना मुंह लाल करेंगे उसी दिन ईश्वर के सम्मुख सच्चे अन्त:करण से बँध कर हम दोनों पति पत्नी का उपनाम धारण करेंगे। तब तक हम लोग भाई बहिन के प्रेम में ही सुखी रहेंगे। कहिए यह आप को मंजूर है ?"

"इसके लिए मैं दिलोजान से तैयार हूं। जो आप की इच्छा वही मेरी इच्छा। आप को जो अच्छा लगे वही मेरा पथ्य। यह शरीर ही सब आपका है —

'दिल तेरा जान तेरी आशके शैदा तेरा;
सब यह तेरा है तो फिर किस लिए मेरा तेरा ?'

"कब से हम लोगों को अपने निश्चित कार्य का श्री गणेश करना चाहिए ?"

कोमरास्की—आज से, इसी घड़ी से। धर्म के कार्य में

"देखिए आपको केवल प्रेम की झंखना है। आप मेरी प्रीति प्राप्त करने के लिये आतुर हैं और मैं यूनिवर्सिटी तथा समाज से ऊबा हुआ, कायर भया हुआ, बेकाम सा मनुष्य हूँ। आपने विद्या और लक्ष्मी की गोद में दिन काटे हैं और मुझ अभागे ने सवत्र ठोकरें खाई हैं, मुट्ठी भर अन्न से किसी तरह अपना पेट भर लेता हूँ। अतएव मैंने आपको जैसा उपदेश दिया है उस प्रकार यदि आप चलेंगी तो आपका अधिक लाभ होगा। पर आपकी विवाह ही करने की इच्छा हो तो वैसा करने के लिये भी मैं बाध्य हूँगा।"

"यह सुनने के बाद कि, आपने मुझे स्वीकार कर लिया है, मैं भरे समुद्र में कूद पड़ने के लिये भी तैयार हूँ यदि आप वैसी आज्ञा करें।"

"यदि विवाह माता पिता की सम्मति से किया जाय तो कैसा ?"

इस बात पर कोमरास्की के राजी हो जाने से माणिकचन्द ने कहा, "मैंने अपने प्राण बेचकर भी एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय स्थापित करने की प्रतिज्ञा की है। उस कार्य के लिये एक करोड़ रुपये की रकम इकट्ठी करने का महान् कार्य हम दोनों को अपने सिर पर उठाना पड़ेगा। सब से पहिले मैं आप ही से भिक्षा माँगता हूं कि हे जापान देश की देवी, प्रिय भारतवर्ष के लाभ के लिये आप मुझे पचीस लाख रुपये की पहिली भिक्षा दीजिए।"

"इसी दम मैं संकल्प करती हू कि कदाचित् बुद्धदेव मुझे निराश भी करें तो भी आप के परमार्थ की शुभ कामनाओं को पूरा करने के लिये पचीस लाख रुपये एक ही हफ्ते के अन्दर आप के चरणों में आ गिरेंगे।"

इकतालीसवाँ प्रकरण

तूफान का बयान

आज शामको ६ बजे सीरीन का व्याह बड़े धूम धाम से हो गया। विवाह में जाति बिरादरी तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जनो की खासी भीड़ थी। रात को ८ बजे विवाहोपरान्त लोग टेबुल पर व्यालू करने बैठे। भोजन के बाद सब लोग अपने २ घर चले गये।

इन मगल उत्सवमें अपनी वार्ता की मुख्य नायक नायिका—माणिकजी और जर भी हाजिर थी। सब लोगो के चले जाने के बाद सब घर के लोगों ने मिलकर "स्टीमर कैसे डूबी और माणिक जी कैसे बचे ?" यह सुनने की इच्छा प्रकट की। माणिक जी की माता जर के पीछे पागल की तरह इस उद्योग में घूमने लगी कि किसी तरह मेरे पुत्र को यह अमूल्य रत्न प्राप्त हो जाय।

सब के बहुत आग्रह करने पर माणिक जी ने कहना शुरू किया कि, "मुझे जिस समय फौज के साथ यहाँ से जाने का हुक्म मिला था उस समय मैं एक ऐसे काम में लगा था कि बम्बई छोड़ने का हुक्म मुझे मौत के हुक्म के समान मस्त और प्राण घातक मालूम हुआ। पर आखिर नौकरी, और वह भी सरकारी, बिना छुटकारा नहीं। मेरा कार्य इतना आवश्यक था कि जिसके किए बिना मेरा भविष्य जीवन एक प्रकार से कष्टमय हो जाता। येनकेन प्रकारेण अपने अफसरों से मैंने एक हफ्ते की छुट्टी ली। इस छुट्टी में अपना कार्य कुछ तो पूरा कर सका और कुछ तब भी अधूरा ही रह गया। ईश्वर की इच्छा होगी तो अब यह पूरा हो जायगा।"

किस बात की सुस्ती? कल प्रातःकाल आप होटल को सलाम कर अपने घर में आ बैठिए। अपने सेठ को भी अपने विचार लिख भेजिए कि नीलामी भी दो दिन में खतम हो जायगी। अब यहाँ ख़रीदने योग्य वस्तु भी नहीं है। जो कुछ ख़रीद का माल आप भेज चुके हैं उसका हिसाब भेज दीजिए। फिर हम लोग अपने मिलकियत-सम्बन्धी विचार करेंगे कि इनको कैसे बेंचना या रुपये किस प्रकार वसूल करना। आज से यह घर बार, गाड़ी घोड़े, नौकर चाकर, रुपया पैसा और यह अबला आप की सेवा में अर्पित है। आप इनका जिस प्रकार चाहें उपयोग करें। अब मैं अधिक नहीं कहूँगी किन्तु करके दिखा दूगी।

माणिक—पर ध्यान रखियेगा कि मैं ईश्वर को तो मानूंगा ही, बुद्धदेव की हर एक बात और उनके हर एक सिद्धान्त का आदर करूंगा पर नास्तिकता की स्वीकृति मुझसे नहीं की जायगी। हाँ, यदि मेरी शकाओं का समाधान हो जायगा तो मैं दुराग्रह भी नहीं करूँगा।

"आपके प्रताप से मैं भी वैसा ही करना सीखूंगी। अब तो सही'—

'राजी हैं हम उसी में जो यार की रजा है।'

कल अखबारों में हम अपनी स्थावर सम्पत्ति के बिक्री का समाचार लिख भेजेंगे। फिर आपको मैं अपनी जागीर और बाग बंगले घूम कर दिखा दूगी। जवाहिरात भी मेरे पास उत्तम कोटि के हैं। उनको यहाँ न बेचकर भारतवर्ष ही में बेचेंगे। अब जैसे बने वैसे चटपट सब व्यवस्था करके हिन्दुस्तान चलिए।"

की टाँगें ऊँची'। अंग्रेजों को दो एक और अंग्रेजोंने आकर छुड़ाया। हमारे साथ हाँङ्गकौङ्ग जानेवाले चार सिक्ख भी थे। वे आपस ही में आनन्द करते थे। वे किसी लड़ाई-झगडे में नहीं पड़ते थे। दूसरे भी बहुत लोग थे, एक राज कुमार भी था, जिससे अपना कोई विशेष सरोकार न था। खैर, खुदा का नाम लेकर स्टीमर रवाने हुआ सब अपने अपने रागमें मस्त थे। इतने में एक हिन्दू भाईने 'ओ ओ ओ' करके उल्टी की। मैंने जा कर उसको सुलाया, उसकी आँखों पर कपडा डाल दिया। अपनी केबिन में जा थोडी शराब और थोडी लेमनेट मिला-कर ले आया और उसकी नाक बन्द कर के पिला दिया। थोडी देर बाद उसने पूछा कि इसमें शराब तो नही थी। मुझ को क्या पडी थी जो शराब बतला कर उसका दिल दुखाता। मैंने नही कह दिया। इतने में और दो चार लोगो ने 'उर्रर-गुर्रर' किया। अपने हिन्दू भाई पहले उठ बैठे और सभों को हँसने लगे। तीसरे पहर फिर बाप ही का घर समझ, वह अपने पास आया और गिड़गिड़ाने लगा कि, आप एक बार फिर वही दवा दीजिए। मैंने एक बार फिर उसी दवा को दे दी। थोडी देर में जो अग्नि चेती तो वह घबराने और सामने मटन, चाय आदि जो कुछ आवे सब स्वाहा करने लगा यहाँ तक कि कुछ भी नही छोडा।"

यह बात सुन कर सब खिलखिला पडे। माणिकजी ने फिर कुछ दम लेकर अपना वृत्तान्त शुरू किया।

'वे सिक्ख लोग कुछ शिक्षित न थे,पर मिजाज के वे सच मुच में सरदार थे। स्टीमर की छत पर वे एक तरफ थोडा बहुत खाने पीने को लेकर एक खँजडी के साथ गाते और मौज उडाते थे। कोई मुसाफिर

यह वाक्य पूरा होने ही अचानक जर से चार नजरें हो गईं। इनके मन के आनन्द का पार न रहा। पर दोनों ने यह बात दाब दी। सुनने वाले न जान सके कि, माणिक जी की प्रस्तावना का क्या रहस्य था'—

'दिलकी वीती 'से कोई क्या जाने ?
दिलही जाने या दिलरुबा जाने।'

दो चार क्षण रुक कर, माणिक जीने फिर अपना किस्सा कहना शुरु किया, "मेरी फौज रवाना होने के ठीक आठवें दिन, मुझे भी ईश्वर का नाम लेकर, स्टीमर पर पैर रखना ही पडा। मैं अकेला स्टीमर में सवार हुआ था। यह स्टीमर सरकारी नहीं था, इससे गाठका गोपी चन्दन करना पडा। मैंने खुशी से अपनी आठ दिन की छुट्टी के कारण इतना खर्च उठाया। मेरी पल्टन के दो चार अफसर भी छुट्टी लेने के कारण मेरे ही साथ स्टीमर पर रवाना हुए। उल्लेखनीय पुरुषों में इस स्टीमर में दो एग्लो इंडियन सम्वाददाता थे। वे लोग अग्रेजोंके कमरे में घुसने के लिये बहुत माथा मारते थे, पर वे उनको अपने कमरे में घुसने नहीं देते थे। 'टाइम्स' पत्र के सम्वाददाता काले आदमियों से तो मुँह ही चढ़ाए रहते थे। ये लोग कहाँ जानेवाले थे इसको पूछने का आपने कष्ट भी न उठाया। दो बंगाली युवक कलाकौशल सीखने के निमित्त चीन जा रहे थे। इन बंगालियों की और उन दोनों अर्ध साहबों को साहब सलामत में ही झगडा होगया। उन साहबोंने जान बूझ कर इन बंगालियों को कंधे से ठोकराया और उन बंगालियोंने भी 'वन्दे मातरम्' की पुकार करके उन अग्रेजों को दे मारा। बस, फिर पूछना ही क्या था ? झगडे झंझट में तो बंगालियों अव्वल नम्बर है ही। घमंड में चूर, 'गिरे तो भी मियाँ जी

की टांगें ऊँची'। अंग्रेजों को दो एक और अंग्रेजोंने आकर छुडाया। हमारे साथ हांङ्गकौङ्ग जाने वाले चार सिक्ख भी थे। वे आपस ही में आनन्द करते थे। वे किसी लडाई-भगडे में नहीं पडते थे। दूसरे भी बहुत लोग थे, एक राज कुमार भी था, जिससे अपना कोई विशेष सरोकार न था। खैर, खुदा का नाम लेकर स्टीमर रवाने हुआ सब अपने अपने रागमें मस्त थे। इतने में एक हिन्दू भाईने 'ओ ओ ओ' करके उल्टी की। मैंने जा कर उसको सुलाया, उसकी आँखों पर कपडा डाल दिया। अपनी केबिन में जा थोडी शराब और थोडी लेमनेट मिला कर ले आया और उसकी नाक बन्द कर के पिला दिया। थोडी देर बाद उसने पूछा कि इसमें शराब तो नहीं थी। मुझ को क्या पडी थी जो शराब बतला कर उसका दिल दुखाता। मैंने नहीं कह दिया। इतने में और दो चार लोगों ने 'उर्रर-गुर्रर' किया। अपने हिन्दू भाई पहले उठ बैठे और सभों को हँसने लगे। तीसरे पहर फिर बाप ही का घर समझ, वह अपने पास आया और गिडगिडाने लगा कि, आप एक बार फिर वही दवा दीजिए। मैंने एक बार फिर उसी दवा को दे दी। थोडी देर में जो अग्नि चेती तो वह घबराने और सामने मटन, चाय आदि जो कुछ आवे सब स्वाहा करने लगा यहा तक कि कुछ भी नहीं छोडा।"

यह बात सुन कर सब खिलखिला पडे। माणिक जी ने फिर कुछ दम लेकर अपना वृत्तान्त शुरू किया।

'वे सिक्ख लोग कुछ शिक्षित न थे, पर मिजाज के वे सब सुच में सरदार थे। स्टीमर की छत पर वे एक तरफ थोडा बहुत खाने पीने को लेकर एक खँजडी के साथ गाते बजाते और मौज उडाते थे। कोई मुसाफिर किसी की बात में दखल

नही देता था। उनमें से एक की आवाज़ बडी सुरीली थी। उसने एक ऐसी चीज गाई कि सभी मुसाफिर मुग्ध हो गए। यहाँ तक कि अंग्रेज़ लोग भी उस गाने पर फ़िदा होगए। कुछ नहीं तो पाँच सात वार यह गान उन लोगोंने उससे प्रार्थना करके गवाया होगा। उस गाने का टेक भी बहुत मीठा था—

"मेरा परानो खडा मैयावाला बोलीओ—"

"मैंने 'मैयावाले' का अर्थ पूछा तो उत्तर मिला 'भैंसवाला'। मैंने उससे कहा कि तू सिपाहीगिरी छोड किसी नाटक कम्पनी में भरती हो जा। वहाँ अच्छी तनख्वाह मिलेगी। इसी प्रकार आनन्द करते हम लोग सियाम की खाडी तक पहुँचे। स्टीमर बिल्कुल नई थी। उसकी चाल भी बहुत अच्छी थी। चीन समुद्र में पैर रखते ही हवा ने रुख बदला। आसमान पर बादल घिर आये और थोडी ही देर में एक दम अन्धकार छा गया। हवा ने जोर पकडा। लहरों ने पहाडों का रूप धारण करना शुरू किया देखते ही देखते सब रंग बदल गया। कप्तान, मालम, सरंग और खलासी सब जी तोड कर मेहनत करने लगे। पाल फट गई थी। वह उतार ली गई। पानी बाहर निकालने के पंपों पर आदमी दौडे। रस्सों को और लहासियों को इधर से खोल उधर बाँधी। कप्तान बराबर दुर्बीन से देखता जाता था और नए नए हुक्म करता जाता था। सबसे अधिक और पहिले बंगाली घबडाए। कप्तान से वे सवाल पर सवाल करते पर उस धीर वीर अंग्रेज ने जरा भी गुस्सा किए बिना बराबर उत्तर दिया। धीरे धीरे प्रश्न कर्त्ताओं की संख्या बढ़ चली। बिचारे कप्तान ने सब को दिलासा देकर बडी आजिज़ी से अपने अपने पर जाकर बैठने का आग्रह किया। अपने आदमियों

को वह बराबर शाबाशी से उत्तेजित करता जाता था। स्वयं जी तोड़ परिश्रम करता और लोगों से काम लेता था। ज्यों ज्यों समय बीतता गया तूफान भी भयंकर रूप धारण करता गया। ऊपर से इन्द्र देव ने भी बुन्दों की मार मारना शुरू किया। स्टीमर एक तरफ झुक पडी। सब के चेहरे उतर गए– 'यह डूबी, यह गई, हे खुदा, हे परमेश्वर, ओ गॉड, हरे राम या गुरू, ओ अल्लाह' आदि की आवाजें एक साथ सुनाई पड़ने लगीं। इतने में समुद्र की लहरों के साथ स्टीमर फिर ऊपर उठ आया, लोगों के मन में कुछ शान्ति हुई। किसकी मजाल थी कि वह सामने आँखें उठा सके। लहरें आसमान से बातें कर रही थीं। मालूम होता था कि लहर स्टीमर को एक ही हाथ में हड़प कर जायगी। इधर स्टीमर घडी में नीचे धसता और घडी में उतराता था। थोड़ी देर में मस्तूल टुकड़े टुकड़े हो गया। वर्षा ने उस समय अपना रंग अलग ही जमा रखा था। हवा भला क्या किसी से कम थी। क्षण क्षण पर उसकी तेजी बढ़ती जाती थी। अन्त में कप्तान ने लाचार होकर दुघटना की निशानी लगाई। दो मिनट में हवा के झोंके से दुघटना का चिह्न स्वरूप लाल वस्तु टुकडे टुकडे हो गई। लोगों ने अपने असबाब फेंकने शुरू किए। किसी प्रकार से भी स्टीमर हलकी करने की कोशिश करने में कोई बात उठा नही रखी गई। सब मुसाफिर पाणी फेंकने वाले पंप पर जान देकर परिश्रम करने को तैयार हो गए। चार चार आदमियों से भी न उठ सकने वाले भारी बोझों को एक एक आदमी ने उठाकर समुद्र को अर्पण किया। प्रायः सभी के शरीर के कपडे फट गए थे। लोहू टपक रहा था। बंगाली अपने मुंह को कपडे से ढक कर पडे पडे रटटी कर रहे थे। रिपोर्टर (दाता) ओ गाड, ओ

शब्दों को उच्चारण करते हुए सुने जाते थे। वे हरामियों की तरह चुपचाप बैठे थे। एक दो वृद्ध यूरोपियन प्रशंसनीय परिश्रम करते थे। कप्तान और इञ्जीनियर घडी में गोदाम में जाते तो घडीमें छतपर नज़र आते थे। वे मुसाफिरोंसे धैर्य धारण करके ईश्वर की याद करने की प्रार्थना करते। घन्टो बीत गए, अभी भी तूफ़ान का ज़ोर कम न हुआ। दो चार आदमी बराबर काम करने से घबडा कर समुद्र में जा गिरे। सबों ने उनको ईश्वर के अधीन ही सौपा। वहाँ कौन किसको निकाले और कौन किसकी रक्षा करे। इतने में कप्तान ने इञ्जीनियर से कहा कि यदि पांच घन्टे स्टीमर बच जाय तो एक जापानी और एक अमेरिकन जहाज सहायतार्थ आ पहुंचेगा। पर तूफान कहाँ मानने वाला था। इञ्जीनियर ने दो तीन घन्टों की तो हामी भरी। अन्त में लाइफ बोट छोड कर तैयार रखने की आज्ञा हुई। लोगों की चिल्लाहट, बच्चों का अपनी माताओं से लिपट जाना, प्रार्थना के निमित्त बराबर हाथ उठाना, उठना-बैठना, धमाधम फेकना, आदि दृश्य एक पत्थर के कलेजे को भी पानी पानी कर सकते थे। इस समय भला कौन होगा जो ईश्वर को याद न करता हो? ऐसा किस का पत्थर का दिल होगा जो अन्तः करण से ईश्वर से प्रार्थना न करता होगा? पर सब व्यर्थ। सब प्रार्थनाओं पर पानी फिर गया। ईश्वर की इच्छा में किसका दख़ल? एक बडे पहाड जैसी स्टीमर पानी के झोके से इधर उधर मारी मारी फिरती थी। लहर के एक साधारण तमाचे में इतनी शक्ति आ गई थी कि एक साधारण लकडी के टुकड़े की तरह वह इस जहाज को उछाल कर दूर फेंक देता था। दो तीन घन्टो तक लोग इसी तरह आशा और निराशा के बीच

में भूला किए, पर अन्त में कप्तान और इञ्जीनियर ने हताश होकर एक मत से लाइफ् बोट समुद्र में उतारे। सब के पहिले बिना पूछे ताछे वे दोनों अर्ध अंग्रेज़ धड़ाधड़ कूद पड़े। कप्तान की आखों में खून आ गया। पर ऐसे जीवन मरण के समय में उस कुलीन अंग्रेज ने एक शब्द भी मुह से न निकाला। उनकी नालायकी पर वह लोहू का घूट पीकर रह गया। उसने लोगों की तरफ घूम कर कहा, "सद्गृहस्थों इस समय समय बर्बाद करना व्यर्थ है, आप लोग पहिले उन बच्चों और स्त्रियों को उतारें। इसके बाद वे उतरें जिनको अपनी जिन्दगी अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती हो। आप लोग घबराइये नहीं, अभी स्टीमर की एक घन्टे की जिन्दगी है।" लोग इतनी घबराहट में पड गए थे कि सबो ने मिल कर हाथो हाथ उन स्त्रियों और बच्चों को उतार कर जहाँ स्थान मिला वहीं बैठ रहे। दोनो बंगालियो में से एक उतरते समय सीढी टूट जाने से समुद्र में गिर पडा और देखते देखते गायब हो गया। कप्तान का एक आठ वर्ष की उम्र का बच्चा उतरने जाता था कि कप्तान ने उसका हाथ पकड कर खींच लिया और कहा, "सब्र करो, स्थान हो तो जाना नहीं तो मेरे साथ यहीं मरना।" वाहरे हिम्मत और परोपकार। वे पाच सिक्ख बच्चे हरगिज न उतरे। वे तो यही कहते कि, "सरदारो बस गुरु महाराज की शरण जायँगे। दो तीन वृद्ध अंग्रेज़ एक यहूदी, और दो तीन हिन्दु अपने को ईश्वराधीन समझ कर, चुपचाप वही बैठे रहे। व्यर्थ में उन्होंने लाइफबोटो के डुबाने की कोशिश न की। अन्त में केवल अपनी अरमान पूरी करने के लिए यह सेवक उतरा। उतरते समय मैंने कप्तान से कहा कि आप इस प्यारे बच्चे को मेरे हवाले

कर दें, मैं इसको माँ की तरह पालूँगा और इसको शिक्षा दूंगा। उस दिलदार अंग्रेज़ बच्चे ने, अपने प्यारे पुत्र को गोद में उठा लिया, उसकी पेशानी का चुम्बन लिया और उसको मेरे हवाले किया। फिर उसने अपने जेब में हाथ डाला और एक पिस्तौल निकाली। देखते ही देखते उसने उसको अपने मुँह में दाग दी और अपना प्यारा प्राण ईश्वर को अर्पण कर दिया। लाइफ बोट भी समुद्र की सतह पर जिधर लहरें बहा ले जातीं उधर ही भटकते थे। वे ईश्वर के आश्रय पर ही चलते थे। इतने में दो चार दफे धुडुम धुडुम की आवाज हुई और वह परी जैसा बिलकुल नया स्टीमर देखते देखते समुद्र में समा गया। या गया, वह गया बस वह सदा के लिए विदा हुआ। समुद्र की सतह पर मस्तूल, तखते आदि ही नजर आते और चारों तरफ पानी ही पानी था पलक मारने में वह कीमती जहाज़, कीमती माल और अमूल्य जीवों के सहित गारद हो गया।"

> "जब तलक अंजाम ग्रजमें ऐश का जाना न था;
> शमअ थी उम्मीदे दुनियाँ और दिल परवाना था,
> नशअए गफ़लत मगर उतरा तो जाहिर हो गया,
> ख्वाब था जो कुछ के देखा जो सुना अफ़साना था।"

"उस सर्व भक्षी समुद्रने इतना बड़ा स्टीमर अपने पेट में हजम कर लिया। कुछ भी पता न लगा कि वह किस कोने में समा गया। अब हम लोगों के भाग्य की परीक्षा का समय आया। जिस तूफान में एक इतनी बड़ी स्टीमर का पता न लगा, वहाँ हम लोगों के काठ के टुकड़े की कौन बात? तिस पर इसके खेनेवाले भी सब मेरे ऐसे बहादुर। लहर का एक झोंका उसको पूरब की तरफ फेंक देता तो दूसरा उसको उठाकर उत्तर का मार्ग बताता। न कुतुबनुमा, न कंपास, और न

दुर्बीन-कुछ भी नहीं-केवल ईश्वर की कृपा पर डोंगियाँ समुद्र की सतह पर नाच रही थी। थोडी देर तक तो एक दो डोगिया नज़र आई फिर वे भी गायब हो गयीं। ईश्वर जाने वे किस लोक को और बढ़ गई। तूफानने भी अब धीरे धीरे इतना बलिदान लेकर शान्त होना शुरू किया मेरी डोंगी में आठ स्त्रिया, छः बच्चे और दस पुरुष थे। दो दिन और दो रात हम लोगों ने गम खा और आँसू पीकर गुजारी। उल्टी (वमन), भय और निराश की मारी—दो स्त्रियों नें एक यूरोपियन और एक हिन्दू-तीसरे दिन अपने प्राण छोड दिये। हे परमेश्वर वह कैसा समय था! किससे कहू। बस उस समय हम लोगोने अपने निर्जीव शरीर को केवल उस कर्ता, धर्ता और विधाता की असीम दया पर छोड दिया। अब उन दोनों मृत स्त्रियों के छोटे बच्चों की, 'अरे मा! ओ डियर मम्मा' आदि की हृदय वेधक पुकार हम लोगों का हृदय बेध रही थी। सभी भूखे प्यासे थे, थके थे, बदन पर के सब वस्त्र तर थे। तिस पर भी ऊपर से निर्दई लहरें आआ कर पानी की मार से बाज न आती थी। जिनमें कुछ भी शक्ति बची थी वे पानी निकालते थे और बाकी के बेहोश पड़े थे। मैं अपनी अमूल्य अमानत को दिलो जान से ताकीद और सम्भाल रखता था। और उन मरी हुई दोनो स्त्रियों के बच्चों को फुसलाता था। हर एक आदमी परमेश्वर का नाम लेकर चारो तरफ देखते थे कि कहीं किनारा नजर आजाय, या और कोई जहाज नजर आए। पर काहे को? दूसरा दिन और रात बीती। इस बार हमारी आंखो ने तीन बच्चों और एक स्त्री को ईश्वर की शरण में जाते देखा। पत्थर का कलेजा करके उन लोगो को भी जलचरों की भेंट किया। अब मुझ पर एक नया

पहाड टूटा। कप्तान का वह प्यारा पुत्र भूख प्यास की पीडा और पानी की मार के कारण ज्वर का शिकार बन गया था। मैं भी स्टीमर पर की मेहनत, भूख प्यास, सेवा और जहमत से बिलकुल लाचार हो गया था। पर उस प्यारे कप्तान के पुत्र के लिये मैंने कुछ भी न उठा रखा। पर करही क्या सकता था? उसका शिर दाबता, पैर दाबता, पुचकारता और झूठी आशा बँधाता था, इसके अलावे मैं क्या कर सकता था? दवा दारु तो कुछ थी ही नहीं। अरे हाय! निर्दयी कालने उसको भी अपना ग्रास बनाया। उसने इस गुलाब के फूल के दामन की तरफ़ भी जरा ख्याल न किया।"

इन शब्दों को बोलते बोलते माणिकजी का हृदय भर आया। वे चौधार आँसू बहाने लगे और गद्‌गद्‌ स्वर से आगे बढे -

"उस बच्चे पर मेरा बेहद प्रेम हो गया था। मेरे शरीर में शक्ति भी नहीं बची थी तिसपर भी मैं उस बुझते हुए दीपक को अपनी गोद में ले कर नाव के सहारे एक तरफ बैठ रहा। प्रार्थनाओं का एक मन्त्र, जो सबके मुह से निकल रहा था, मेरे बच्चे के मुख में भी बस गया था। जिसको मैं अपने प्राण दे कर भी जीवित रखना चाहता था, उसने भी "पप्पा माणिक, डियर माणिक, आय डाय-आय-आय-डाय-नो!" ये। कहते हुए जहापनाह की पनाह में पनाह ली। मेरी छाती धडकने लगी। मैं आखें फाड फाड कर उस खाली पिंजरे को देखा करता था। मैंने डाक्टरी का अभ्यास किया है। सैकडों बल्कि हजारों मुरदे देखे हैं। उनको चीरा फाडा भी है, पर इस बोलते हुए सुग्गे ने तो मेरे होश ही उडा दिए। यद्यपि वह चल बसा था-मुझे दग़ा दे गया था फिर भी मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता था। मैं समझता था कि अभी भी ईश्वर उसको खड़ा करेगा।

इस हालत में मैं काष्ट सदृश पानी के कारण चिमटे हुए उसके गालों को चूमता। हाय, इतने ही में फिर वैसा ही दृश्य। वही तूफानी हवा, वैसी ही राक्षसी लहर वही अन्धकार, वैसी ही वृष्टि! निर्दयी बेरहम तूफानी फरिश्तों ने फिर हम लोगों का पीछा किया। मैंने फिसल कर अपने एक हाथ से तो एक तख़्ता थामा और दूसरे से उस लाश को खींच कर अपनी छाती से लगाया। इतने में मैंने अपनी डोंगी को चट्टान की तरफ जाते हुए देखा। देखते ही देखते बेरहम लहर ने हमारी डोंगी को उठा कर पत्थर की उस बेरहम छाती पर दे मारा और उसके टुकड़े टुकड़े हो गए। बस, इतने में मैं बेहोश—"

एक चीख हुई। सबने चिहुक कर पीछे देखा कि एदलजी की जर मूर्छित हो धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। आँख की पलक मारने में यह घटना होगई। बबड़ाहट के कारण दौड़ धूप से सब बगीचा भर गया। अपनी प्यारी की बीमारी की दवा करने के लिये माणिक ने सब को रोक दिया। वह स्वयं उसको उठा कर एक एकान्त कमरे में ले गया। वह स्वयं डाक्टर था, इस से दूसरों को शान्ति थी। न कोई दवा न दारू, न कोई दूसरा मन्त्र केवल एक आलिङ्गन की गरमी और एक चुम्बन की सुगन्ध की बदौलत उसने जर को होश में ला दिया। पाव घन्टे के बाद फिर वही आनन्द-मंगल और विवाह आदि की बातचीत चलने लगी। वहां से चलते समय माणिक जी की माता ने अपनी और जर की माता की दूर की सगाई बताई और दूसरे दिन अपने यहाँ उसने जर को भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। जरबानू ने तुरन्त उस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। क्यों न स्वीकार करे?

"मन में थी और वैद ने भी कही।
भाया मरीज को, वही तबीब ने कहा।"

बयालीसवाँ प्रकरण

अपनी अपनी ढापुली अपना अपना राग

दूसरे दिन जब माणिकजी के यहाँ भोजन करने जानेवाली थी, माणिक जी की माता सवेरे ही से तैयारी करने लग गई थी। यह देख माणिक जी ने साधारण रीति से पूछा, "माँ, आज किस फेर में पड़ी हो? किसी राजा महाराजा को भोजन करने के लिए बुलाया है क्या?"

हर्षित होकर, ननाजबाई ने कहा, "अरे राम, आज एक इन्द्र लोक की अप्सरा को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिया है। ईश्वर भला करे, मैं भी, अपने प्यारे पुत्र का विवाह करूगी।"

माणिक जीने अचरज से पूछा, "मेरा मां?"

"हाँ बेटा तेरा। तेरे लिये स्वर्ग की अप्सरा ले आऊगी, देखना। हे ईश्वर, मेरी मनोकामना पूरी कर। मैं तेरे ही योग्य ले आऊंगी।"

"पर मां, यह तूने कैसे शेखचिल्ली के विचार बाँधे हैं? अभी तो मेरा विवाह करने का ही विचार कहा है। दो पैसे पैदा करने का तो ठिकाना नहीं और चले विवाह करने। यह गले में नया तौक़ बाँध कर क्या करना है?"

माता ने कहा, "अरे जा रे बेटा, तुझे किस बात की चिन्ता? तू पढ़ा लिखा है, तू तो लात मार कर भी पैसा ला सकता है। फिर तू क्यो इतना घबड़ाता है?"

"नहीं, नहीं मां। आप इस तरह मुझ से पूछे विना अपनी मनमानी मत कर बैठना। किसी फूहड़..... "

"अरे चुप रहो, चुप। जाना, बड़े चतुर की पूछ बन गया है। तू देखते ही पागल बन जायगा। फिर तू उसी से विवाह करेगा, और मैं, तभी सही जब तरसा तरसा कर तेरा विवाह करूं।"

"तुझे मेरी शपथ है। मैं पागल भी बनूंगा और आप लोग लैला मजनू का हाल भी न देखेंगे। हा हा हा हा-"

इसके बाद नवाजबाई अपने काम धन्धे में लगी। माणिक जी ने भी जल्दी से जर को एक चिट्ठी लिखी और नौकर के हाथ उसको भेजा। उसको स्वप्न में भी इसका ध्यान न था कि उसकी माँ ने उसकी भावी भार्या ही पर अपनी आँख गडाई है। उसने तो भोले भाव से इस प्रकार एक चिट्ठी घस दी—

"माणिक की प्राणेश्वरी,

माया, मोहब्बत और मिठास पूर्ण प्यार के बाद यह लिखना है कि आज मेरी भोली माता जी ने मेरे लिये एक स्त्री खोजी है। आज उसको भोजन के बहाने मेरे देखने के लिये बुलाया है। ईश्वर न करें कि कोई फैसन की मारी हुई, उद्दण्ड सुशिक्षिता आ मेरे गले पड़े। खैर, यदि कोई शान्त-सलज्ज की हो तो गनीमत—पर कोई भी हो, मेरे लिये तो सब व्यर्थ ही है। प्यारी तू आज सध्या को छ सवा छ के समय उसी दिन के ठिकाने मिलना। मैं तुझे आज की सब हकीकत सुनाऊगा।

तेरा दर्शनाभिलाषी—

माणिक"

नौकर ने आकर जर को चिट्ठी दी। जर ने उसको पढा और खूब हँसी। फिर उसी नौकर के हाथ उसने नीचे लिखा उत्तर भेजा —

"जर के जिगर, सयोग की बात है कि कल के विगाड़ो-

त्सव में मेरी स्वर्गवासिनी माता जी की एक सखी ने मुझे आज अपने घर भोजन का निमन्त्रण दिया है। मुझे लाचार होकर निमन्त्रण मानना पड़ा। अब जाना तो पड़ेहीगा। शायद उसके भी कोई पुत्र हो और मेरी माता जी की सखी ने उसके पसन्द करने के बहाने मुझे भोजन करने के लिए बुलाया हो। ख़ैर, यदि उनका बेटा शान सलूक का होगा तो मैं भी इन्सानियत से बाज न आऊगी। यदि कोई चिलबिल्ला, बेवक़ूफ़ होगा तो फिर आँख-भौं चढ़ाऊंगी। आज वहाँ से आकर मिलना मुश्किल नज़र आता है, अतएव अपनी मुलाक़ात कल पर मुल्तवी करने की आप से आज्ञा माँगती हूँ।

सदा की आप की दिलवर—

जर"

"चारों तरफ ऐसी ही हवा एक साथ कैसे चली? आम के फसल की तरह क्या यह मौसिम विवाह ही का है? और उसमें बुढ़ियाँ, जवान, लड़कियों को निमन्त्रित करने निकली हैं—यह कैसे आश्चर्य की बात है? ख़ैर, जैसी परमेश्वर की इच्छा।"

किसी न किसी तरह भोजन का समय हुआ। दरवाजे पर गाड़ीकी गड़गड़ाहट सुन पड़ी, माणिकजीकी माँ दर्वाजेकी तरफ दौड़ी। माणिक ने कमरे की खिड़की के बाहर सिर निकाल कर देखा। चालाक जर ने पहिले ही से उनको देख कर अपना मुह दूसरी तरफ फेर लिया था। वह घूमकर पीछा देकर नवाजबाई के साथ घर में गई। माणिक जी अब और भी चक्कर में पड़े। घड़ी में वे मनही मन बड़बड़ाते कि 'जर है' और घड़ी में कहते कि, 'वह नहीं है' और कमरे में इधर उधर घूमने लगते। भोजन का समय हुआ टेबुल सजाया गया और सब कोई

भोजन करने कमरे में गए। चार आँखें हुई। जर तो पहिले ही से जानती थी, इससे उसने दूसरी प्रकार और माणिक अपनी चिट्ठी को याद कर दूसरी प्रकार—इस तरह दोनों मनही मन में हंसने लगे। दोनों का मन इस समय कैसे आनन्द का अनुभव करता होगा, यह उनके मुख का दर्शन करने ही से पता लगता था। जिह्वा और शब्दों में इसका सम्पूर्ण दर्शन कराने की शक्ति नहीं है। भोजन करने के बाद दोनों का परस्पर परिचय कराया गया। इधर उधर की अनेक बातें होने लगीं।

नेवाजबाई—तब मैं यह पूछती हूँ, बेटा जर, क्या तेरे पिता सदा अपने ही यहाँ तुझे रखेंगे ? क्या वे तेरा विवाह नहीं करेंगे ?

जर—मैं अपने बाबाजी के मन की बात कैसे जान सकती हूँ। उनको यदि कोई सलाह देनेवाला नहीं मिलेगा तो वे फिर अपने काम काज में मेरी फिकर कहाँ से करेंगे ?

नेवाजबाई—पर बेटा, तेरी क्या इच्छा है ? ईश्वर कृपा करे बाप का बादशाही घर तो सुखदायक होता ही है, पर ससुराल के सुख तो दूसरी ही प्रकार के होते हैं। पति की दो गालियां भी पिता के आशीर्वाद से कम नहीं होतीं।

जर—आपका कहना बिल्कुल ठीक है।

"बेटा मैं तुझसे यह पूछती हूँ कि तेरी विवाह करने की इच्छा है कि नहीं ? शरमाने की इसमें क्या बात है ? कहती क्यों नहीं कि तुझे कैसा वर चाहिए ?" इस प्रकार बुड्ढी ने जर का मन टटोला।

जर—जैसा ईश्वर ने भाग्य में लिखा हो वैसा।

बुड्ढी—यह और कैसी बात ? ईश्वर का इसमें क्या ? वह तो जो इन्सान चाहता है उसको हजार हाथों से देने को तैयार

है। तुमने सुना भी होगा कि 'चाहना इन्सान का और बख्शना यजदान का।'

"यदि ईश्वर दे तो मैं ऐसा पति चाहती हूँ जो देखने में सुन्दर, मजबूत, पढा लिखा, और सभ्य हो। डाक्टरी का जिसने खूब अभ्यास किया हो, सैकडों आदमी रोज जिसके दरवाजे पर दवा कराने आते हों। सिविल सरजन हो और बडे बडे अंग्रेज अफसर भी जिसका मुँह ताका करते हो। यदि ऐसा वर मिले तो मैं उसपर निछावर हो जाऊँ।" जर ने बुड्ढी के मन की बात जानकर, माणिक जी ही के सर्वगुण सपन्न जैसे पति के लिये कहा।

बुड्ढी—क्या तू सच कहती है ? मैं तेरे दिल के माफिक डाक्टरी पास सुन्दर, चालाँक, सभ्य और सरकारी नौकरी करने वाला पति खोज निकालूँ तो ?

चालाक जर ने बुड्ढी का हृद दबाने के लिए एक मिरची फेंकी "पर वह जहाज की नौकरी करने वाला नहीं होना चाहिए।" यह सुन बुड्ढी का मुँह फीका पड गया।

बुड्ढी—(बीच ही में) क्या है, क्या है, यह और कैसी शर्त ?

"देखिए, न आपके माणिक जी ही को। दयासागर परमेश्वर ने उनको ससार में सेठ रचाया तभी न ? उनकी स्त्री की स्टीमर की बातें पढकर क्या दशा होती रही होगी ? वह बिचारी तो रो रोकर मर गई होगी ? किस प्रकार उसने अपने दिन काटे होंगे ?"

बुड्ढी—मेरे माणिक का अभी विवाह कहाँ हुआ है। यह कह कर बात काट दी।

"हाँ—ऐसी बात है ? मै समझती थी कि उनका विवाह

हो गया है। खैर पर आपही कहिए, ऐसी जोखिमभरी जिन्दगी वाले पति के साथ विवाह करने के लिए किसकी हिम्मत पड़े? स्त्रियाँ तो डर के मारे यों ही प्राण दे देती हैं। क्यों, मैं ठीक न कहती हूँ ?

"इसमें डर की कोई बात नहीं है, बेटी! यह तो दैवी आकस्मिक घटना हुई थी। यह क्या रोज होती है? स्त्रियाँ यदि ऐसे डरा करें तो पल्टन में नौकरी करने वाले सिपाही, सूबेदार, मेजर, और कर्नल तथा कप्तान आदि सब कुँवारे ही रहा करें। बेटी! तेरी अपेक्षा तो एक मकड़ी की हिम्मत कहीं अधिक नजर आती है।"

"क्यों ऐसी बात है? मनमें डर नहीं रखनी चाहिए?"

"डर और किस बात की, बेटी! संसार में सभी कार्य जोखिम भरे हैं हम घर में बैठे हैं—ईश्वर न करे अगर घर गिर पड़े तो क्या यह कहेंगे कि जान बूझ कर घर गिर पड़ा। इससे घर में न रह कर फिर क्या हमको मैदान में रहना चाहिए? ये सब झूठे विचार हैं, झूठे।"

"आप ठीक कहती हैं। देखिए न जब बड़े बड़े राजकुमार समुद्रयात्रा जहाज पर करते हैं तब हमारी कौन गिनती? तीन में न तेरह में।"

बुड्ढी–बेटा जर! यदि मैं माणिकजी के साथ तेरे लग्नकी बात करू तो मैं स्वयं मतलबी तो नहीं कही जाऊँगी? ईश्वर की कृपा से वह सब प्रकार लायक है। उसमें कोई ऐब नहीं है। यदि तुझे अड़चन न हो तो उसको यहाँ बुलाऊँ? हाँ, दो बातें तो कर। तू भी ईश्वर की कृपा से शिक्षिता है। इसने भी 'टिड्डाणंय टिड्डाणय' करने में जिन्दगी बिताई है। जरा परीक्षा तो ले।

जर ने कुछ आनाकानी की पर बुड्ढी ने माणिक को बुला ही कर छोडा । जर और माणिक को बातों में छोडकर वह चाय लेने गई और एक घन्टे में उनके लिए चाय ले आई। चाय पीकर जर ने थोडी देर बाद बिदा मांगी और वह अपने स्थान पर गई । बुड्ढी माणिक के पास जा बैठी और उससे बातें करने लगी ।

क्योंरे, अब 'नहीं' कह तो देखूं ? अब कहो कि विवाह नहीं करूगा ? बस हो चुका ? चुप क्यों हो गया है ? बोलता क्यों नहीं ?

"नहीं रे मैया, लडकी तो घर की शोभा बढाने वाली मालूम पडती है । अंग्रेजी कैसी अच्छी बोलती है । विचार भी बडे ऊँचे हैं । ठीक है । इसके माँ बाप यदि मन्जूर करें तो ।"

"चल हट, तुझ गवाँर को, यह रत्न कौन देगा ?"

नवाजबाई ने सब वृत्तान्त माणिक के पिता से कहा । उन्होंने मचेरशाह छापगर से एक पत्र जर की माँग का लिखाया । माणिकजी की फोटो भी साथ में भेजी । और यह भी लिखा कि जर की भी इसमें थोडी बहुत इच्छा है ।

तेतालीसवाँ प्रकरण

जापानी जोडा

माणिक जी के साथ तो हमलोग मोहमयी (बम्बई) में मनमाने तौर से मिले जुले, विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए, समुद्र के किनारे की हवा खाई, घर पर भी भेट की, और विवाह की भी बात चीत की । अब चलिए माणिकचन्द उर्फ

इम्तिहानचन्द के पास । देखे जापान में उनकी क्या हालत है? अब तो मुफलिसी का क्रूर हाथ उनके पास फटक भी नहीं सकता है अब दरिद्रता का दुस्सह दुःख उस को दुष्वार हो गया होगा। अब तो लक्ष्मी स्वयं माणिकचन्द की चेरी बन गई है । सैकड़ों और हजारों की कौन कहे अब तो लाखों माणिकचन्द के हाथ का मैल हो गया है।

'एक ताज़ी खबर सुनो यारो तुम भी अचरज करोगे सुन सुन के;
घर थी फाकों की जिनके घर नौबत, आज तो हुन बरस गये उनके।'

उस तरफ़ अब लाहौर में अपने बाप के पास जा बैठी है । पदलजी उसके विवाह की तैयारी में लगे हैं । अब मारे खुशी के फूले नहीं समाती । माणिक जी का कहना ही क्या है । इधर (जापान में) लाखों की स्थावर और जगम सम्पत्ति पानी के भाव बिक रही है । सट्टे हो रहे हैं । रुपये गिने जाते हैं। हुंडियाँ लिखी जाती हैं । बहादुर चन्द का शरीर अब फिर चला है। शोक और चिन्ता नेस्त नाबूद हो गई है। 'फिकर फकीर को और चिन्ता चतुर को' । रूपवाला रोए और हाड पिंजर पीटा जाय। दो दो चार-चार मोटर और घोडा गाडियाँ कसी तैयार रहती हैं, सब मिल्कियत की जाँच पड़ताल होती है, खाने पीने, पहिरने ओढने किसी बात की कमी नहीं । माणिकचन्द की ऐसी इच्छा है कि धीरे २ सब बिक जाए तो मनमानी रकम खड़ी हो सकती है । कोमराक्की यही माथा पीटती है कि कब सब में आग लग जाय और हिन्दुस्तान जाने की नौबत आवे, कब करोड़ रुपये की रकम एकत्र हो जाए, और कब माणिक के साथ विवाह हो।'

डाकिये ने चिट्ठियाँ लाकर दीं । एक में पदलजी के यहाँ से आया हुआ निमन्त्रण पत्र था। उसी के साथ उस महूदस्य

पारसीने इनको बम्बई आने का बड़ा आग्रह किया था। दूसरा पत्र स्वयं जर के हाथ का था, उसमें भी उसने बहुत आरजू मिन्नते लिखा थीं। पर दुर्दैववशात् जिस दिन माणिक ने रवाने होने का विचार किया था उसी दिन वहाँ जर का विवाह था, इस लिए जर के विवाह के अवसर पर पहुचना तो सर्वथा असम्भव था।। मणिकचन्दने कोमरास्की को वह पत्र पढ़ सुनाया और अपने पर किये हुए उस अबला के सब उपकार उस न उसको कह सुनाये कोमरास्कीने चट अपने जवाहिरात की पेटी खोली और एक हीरे की अंगूठी निकाली। माणिक ने उसको उपकार सहित लेकर विवाह की भेट के स्वरूप में जर के पास पारसल करके भेज दिया। वाहरे माणिकचन्द्र का भाग्य! पदलजी, जर और माणिक जी इस बहुमूल्य मुद्रिका को देख कर क्या निश्चित करेंगे?

सोचेगे और क्या? जिस समय माणिकने हिन्द के भविष्योदय के निमित्त पचीस लाख की रकम मागी थी, उस समय क्या उसने यह सोचा था कि कोमरास्की क्या लायगी? लीजिए पाठक, जिस दिन बम्बई में अपनी कथा का मुख्य जोडा का हाथो हाथ मिलता है उसी दिन दूसरा काला पीला, रंग बिरंगी जोडा, पैंतालीस लाख की हुन्डियाँ, नोट गिन्नियाँ और चेक तथा बीस बाइस लाख का जवाहिरात, एवं सब मिलाकर साठ पैंसठ लाख की नादिरशाही लूट कर बम्बई आने के लिये रवाना होता है। दो महीने पूर्व दादा भाई मामा के विवाह के अवसर पर बम्बई में थे। विवाह की सब चाल ढाल, रीति रिवाज देख ही चुके हैं। जर के विवाहोत्सव के अवसर पर निमन्त्रण पत्र आने पर भी पहुंच नहीं सकते चलिए अपने पुराने परिचय के कारण उनको शुभाशीर्वाद दे

कि वह जोडा अमर रहे-पुत्र परिवार हो और दीर्घायु होकर संसार के सब सुख भोगे। ऐसी मंगल कामना करके माणिक को स्टीमर पर सवार करने चलें।

बासठ तिरसठ लाख की नकदी और मालमता के अलावा पचीस तीस गाडियाँ साज सामान ले एक राजा की तरह ठाठ बाठ से दुरंगी जोडा घर से बाहर निकला। दाहिनी तरफ एक कौआ बोला, एक बिल्ली ने रास्ता काटा और एक लड़की ने छीका पर दौडा दौड में किसी ने ध्यान नहीं दिया। गाडियों की पल्टन निकली मार्ग में ऐसा मालूम पडता था जैसे किसी की बारात निकली हो, कोमरास्कीने चलते समय अपने इष्ट-मित्रों को एक अन्तिम विदाई का भोज दिया था। इससे वे सब बडे बड़े धनी, जागीरदार और अफसरान कोमरास्की को विदा करने आए थे। अधिकतर लोग कोमरास्की को पागल और माणिकचन्द को जादूगर कहते थे पर जहा मियां बीबी राजी तो क्या करेगा, काजी। कितनोने दृढ चित्त वाली इस प्रेम मूर्ति की प्रशसा की, तो कितने माणिक चन्द के भाग्योदय पर जल भुन कर खाक हो गए। पाठक आप भी इस प्रेम मूर्ति के विषय में यथेष्ट विचार करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

संयोग की बात है कि माणिक जी अपनीं प्यारी से मिलने के लिये समुद्र पार करके गया और माणिकचन्द समुद्र पार से एक धनी तरुणी को जीत ले चला। खैर अन्तर तो सिर्फ 'जी' और 'चन्द' ही का है न? डाक्टर शमदा और मिस कवडा प्रेमाश्रु बहा रहे हैं। कोमराक्की उनको दो वर्ष बाद फिर एक बार जापान आने का वचन देकर धीरज दे रही है। गाडी चली; हर्ष ध्वनि हुई। समुद्र का किनारा आया, हार और

फूलों का ढेर लग गया नाना प्रकार के आगत स्वागत हुए। आखिर जहाजने लंगर उठाया ही। कोमरास्की के नेत्रों में, अपनी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम करते समय, पानी भर आया। क्यों न ऐसा हो ? जन्मभूमि आखिरकार जन्मभूमि ही है। कहा भी है—

'गंदुम हे सीना चाक फिराके बिहिस्त में,
आदम को क्यों न होवे मोहब्बत वतन के साथ।'

लोकोक्ति है कि जिस समय आदम को विदेश निकाला हुआ उस समय उसके साथ गंदुम–गेहू–को भी वतन छोड़ने का हुक्म हुआ था। वतन के वियोगसे गेंहू की छाती फट गई अभी तक गेंहू की छाती में दरार है कारण कि उस को वतन वियोग का बड़ा शोक है। फिर मनुष्य को यदि मातृभूमि के लिये प्रेम हो तो उसमें नवीनता ही क्या है ? उसमें आश्चर्य ही कैसा अंग्रेजी में इसी आशय की एक उक्ति है कि—

" I would not change my native land,
For rich Peru with all her gold,
A nobler prize lies in my hand,
Than East or Western Indies hold "

Watts

कोमरास्की ने घूम कर माणिकचन्द्र की तरफ देखा। और झट, अपने आँसू पोंछ डाले। दोनों व्यक्ति अपने लिए रिजर्व फ़स्र्ट क्लास केबिन में गए। साथ में चार नौकर थे और कोमरास्की के लिए एक खास दाई थी। किसी को किसी प्रकार की भी तकलीफ न थी। भारत वर्ष में चल कर क्या करना ? आदि विचारों में दोनो लीन हो गए थे।

उस तरफ माणिक और जर का जोडा हनीमून (गवना)

का अनुभव करने के लिए महाजनेश्वर की तरफ उतरा है। माणिकचन्द की अंगूठी पर दोनो जने खूब तर्क वितर्क करते और यह कह कर हँसते कि थोड़े दिनो में सब गुल खिल जायगा। एक जोडा तो इस प्रकार निर्विघ्न रूप से अपने मनोरथ को प्राप्त हुआ, जब कि दूसरे जोडे के प्रस्थान के समय अपशकुन हुए थे। उस जगन्नियन्ता से हमारी इतनी ही प्रार्थना है उन को सही सलामत भारतवर्ष में पहुंचा दे। आइये हम सब मिल कर ईश्वर से निम्न प्रार्थना करें:—

"दीनानाथ विश्वास तिहारो, सारो नौका और पार उतारो।"

चौवालीसवाँ प्रकरण

भाग्य फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्

"अभागे कहीं जाना मत, बैठे रहना भाड में,
तू जाएगा रेल में तो, मैं पहूं गा तार में।"

पाठक वृन्द! पहिले प्रकरण में लिखी हुई, माणिक चन्द की तकदीर का आप ध्यान कीजिए। जहाँ दूध लेने जाय, उस की भैंस मर जाय, अहा दीप जलाने जाय उसका कुल-दीपक नाश हो जाय, जिसके आश्रम में जाने की इच्छा करे उस का घर जले, और जिस वृक्ष की छाया मे बैठें उसके पत्ते झर पड़ें। जर के सम्मुख अपने दुर्भाग्य वर्णन करते समय उसने कहा था कि:—

"मौत मांगू तो रहे आजू ए ख्वाब मुझे,
डूबने जाऊ तो दरिया मिले पायाब मुझे,
मेरी इजा के लिये मुर्दे में जान आती है।"
काटने दौड़ती है मही ये बेआब मुझे।"

वह दुर्दैव पीडित माणिकचन्द, वह भाग्य देवी के कोपानल का पतंग माणिकचन्द भारत के हित के निमित्त लाखों रुपये की रकम एकत्र करने की प्रसन्नता में उछलता था। पर उसके दुर्भाग्य से यह कब सहा जा सकता था? उससे भाग्यहीन भारत के दुर्दिनो और उसकी दुर्दशा का अन्त हो तो फिर पूछना ही क्या? एक तो नीम दूसरे चढी तितलैाकी, फिर कड़ुआपन का पूछना ही क्या? वह भाग्यहीन भारत, जिसके लिए कुम्भकर्ण असुर को विलायत में कर्जन अवतार धारण करना पडा, जिसने अपने सामर्थ्य भर भारत के लिए कोई वात उठा न रखो, वह मन्द भाग्य भारत वर्ष कि जिसके लिए कसासुर ने फुलरावतार में अपने पूर्ण पराक्रम का परिचय दिया, वह मन्द गति हिन्द, जिस की तैंतीस करोड तेजा के समान प्रजा के सम्मुख ब्रिटिशसिंह की ध्वजा के नीचे अन्यायी लोग, दण्ड के एवज में पुरस्कार पाते हैं और ऊंचे ऊचे ओहदे पर चढते जाते हैं, वह कम्बख्त हिन्द, जिसकी रसार्द्रभूमि को विदेशी तुरंगों की टापों ने खोद कर रास्ता खराब कर डाला है, वह काले मुंह वाला देश, जो विदेशियों की घातक नजर से नजरा कर असाध्य ज्वर का शिकार बना पडा है, ऐसे भारत वर्ष के शुभेच्छुकों का उद्योग! वह किस प्रकार सफल हो सकता है। राम राम कहिए। जिस देश के उन्नति के विषय में दो शब्द यदि मुंह से निकले तो भयंकर अपराधियों में गणना हो, दण्डित हो, खराब हो, हलाकान हो, ऐसे देशके निमित्त एक करोड़ की रकम की बातचीत! और उसका उद्योग कर्त्ता भी अभागा माणिकचन्द। उसका उद्योग? जिस देश की उन्नति और स्तुति सुनने वालों के कान बहरे हो जायें, प्रार्थना करने वालों के हाथ गिर पड़ें, हित के आंसू बहानेवालों

की आंखें फूट जाँय, भला ऐसी देश के उन्नति करने वाले का बेडा पार कैसे हो सकता है ? क्या समुद्र सूख गया है ! क्या, क्या लहरों का दिवाला निकल गया है पवन देव ने चूडिया पहिन ली हैं ? नही, नहीं, ऐसा हो ही कैसे सकता है ?

तब लीजिए भारत के हितैषी पुरुषों ! शोक के आसुओं की धारा बहाइए। स्टीमर ने लंगर उठाया। कोमरास्की उसमें विराजमान है। माणिकचन्द हर्ष के मारे फूला नहीं समाता। पवन देव भी प्रसन्न ही हैं। वरुण देवके रथ के घोडे भी सरपट भाग रहे हैं। सब मुसाफिर भी मजे उडा रहे हैं। इतने ही में हवा फिरी कि माणिकचन्द के भाग्य ने भी पलटा खाया। आकाश शब्दायमान हो गया। स्टीमर डावाडोल होने लगा। समुद्र ने अब स्टीमर से गले मिलना चाहा। नाविकों ने समुद्र को कितना समझाया। पर वह महा जिद्दी किस की मानने का ! वह गले गले भेटा ही। दोनो में खूब आलिंगन और चुम्बन हुए, यहा तक कि प्रेमोन्मत समुद्र ने ऐसा आलिंगन किया कि स्टीमर की नस नस ढीली गई। उस के एक एक अवयव अलग अलग हो गए। अब तो समुद्र ने कहकहा मार कर हंसना शुरू किया। निलज्ज को तनिक भी लाज न आई। कि सभ्य की तरह शिष्टाचार युक्त वर्ताव करें। आखिर को उद्दण्ड हीन ? उसने मुह फाड कर जो हसना शुरू किया, कि उसमें यात्री रूप अनेक पतिंगे, और असबाव रूपी कच्छड के कण सब समा गए, पर इस को उनका कुछ भी ध्यान नहीं। भूल कर भी एक समय इसने नाक-भौं नहीं सिकोडी। हाय, ऐसे निर्दयी से पाला पडा कि कितनों के दिल की दिल ही में रह गई। बिचारी दीन कोमरास्की की अभिलाषा मन ही में रह गई। निराशा की वायु के थप्पडों ने रेगिस्तान में

पड़े हुए पाद चिह्न की तरह इस के नाम पर धूल का ढेर लगा दिया। संसार में से वह प्रेम मूर्ति सदा के लिए विलीन हो गई। मार्ग में समुद्री तूफान ने अपोलो की तरह इस स्टीमर का भी स्वागत किया और इतनी शीघ्र उसने सर्वनाश कर दिया कि किसी को कुछ सोचने विचारने वा बचने का, किसी भी प्रकार का प्रयत्न करने का मौका ही न मिला। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि इसी को दैवी कोप कहते हैं। आपत्ति सूचना देकर नहीं आती। जब माथे आ पड़ती है तब कुछ नहीं सूझता, तब तो सिर पर पड़े बजाये सिद्ध। दूसरे मनुष्य की शक्ति ही कितनी। बचाने वाले की शक्ति देखिए और मारने वाले का बल देखिए। जब ईश्वर स्वयं रूठा तब इन अधूरे आविष्कारों की क्या चलती है। देखते देखते आधे घन्टे में स्टीमर समुद्र के पेंदे में जा लगा। इतना होने पर भी एक तख्ते ने एक हठीली जिन्दगी की रक्षा की। वह कौन था? माणिकचन्द एम० ए०।

हाय, काल के गाल से भी निकाल दिया गया तू, भाग्य हीन राजपूत के बच्चे। हाय, तेरी यह कैसी दुर्दशा!

"अगर कुन्दन उठाता है, तो मिट्टी हाथ आती है,
कभी रस्सी को छूता है, तो वह भी काट खाती है॥"

बचने के अनेक साधनों के रहते जिस तूफान में से कोई भी न बच सका, उसमें से एक मात्र माणिकचन्द ही निकला। यह भी कुदरत का तमाशा है। एक लकड़ी के बड़े टुकड़े को उसने पकड़ रखा था। समुद्र की मदोन्मत्त तरंगें उसको इधर उधर, और उधर से इधर उछालती थीं। अपने दुर्भाग्य पर अनेक बार शोक करते हुए उसने विचारा कि इस लकड़ी को छोड़ दूं और अपनी कम्बख्त जिन्दगी की इति श्री कर दूं।

वह ऐसा करने पर उतारु भी हो गया, पर प्रपंची प्रकृति ने उसको ऐसा करते समय माणिक जी का स्मरण कराया। आशा की इस बारीक डोरी ने उसके विचार बदल दिए, वह सोचने लगा कि, "यों भी मरना है त्यों भी मरना है" इससे यह हठीला जीवन और जो जो खेल दिखाये उन सब को देख कर स्वाभाविक मौत से मरना कहीं अच्छा है। संभव है कि माणिक जी की तरह समुद्र की लहरें किनारे पर लगा दें। हुआ भी वैसा ही—

> "उसे हजल करते नहीं होता बार,
> न हो उससे मायूस उम्मीदवार।"

एक रात और एक दिन वह समुद्र के थपेड़े खाता रहा। दूसरे दिन अर्ध मूर्छित अवस्था में, जापान जाने वाले एक स्टीमर ने, उसको उठा लिया। अब उसकी सेवा शुश्रूषा में काहे की कमी ? उसके सद्भाग्य से उसी स्टीमर में स्वामी रामतीर्थ एम० ए० भी जापान जाते थे। उन्होंने इसके लिये दयार्द्र होकर पूर्ण परिश्रम किया। जापान के किनारे पहुचने के पूर्व ही माणिक चन्द बात चीत करने योग्य हो गया। स्वामी जी भी एक अवतार ही थे कदाचित् हमारे पाठकों में से बहुतों को उनके दर्शन के भी सौभाग्य प्राप्त हुए हो। आप माणिक चन्द को चिकित्सा और ज्ञानोपदेश दोनों प्रसाद एक साथ ही देने लगे। स्वस्थ होने पर माणिक चन्द ने स्वामी जी को अपनी सम्पूर्ण राम कहानी कह सुनाई। इसको सुन-कर स्वामी जी खिलखिला कर हँस पड़े। माणिक चन्द ने उनके चरण पकड़ लिये और दीक्षा मांगी। जापान में उतर कर स्वामी जी ने उसको गेरुवा वस्त्र धारण कराए—अब वह संन्यासी हो गया।

माणिक के लिये राम ही मिले। नहीं तो फिर जापान के किनारे पर आकर वह, व्यतीत धन का स्मरण आने से कदाचित् विक्षिप्त हो जाता। परन्तु राम के प्रताप से वह अब ऐसे तुच्छ वैभव को ठुकराने लगा। पर हां, कोमरास्की का निर्दोष प्रेम कभी कभी उसकी आँखों में पानी लाता, तब राम उससे कहते 'मेरे प्यारे तू स्वयं कोमरास्की बन जा। वह तू ही तो है बस—

"तू को इतना मिटा कि तू न रहे,
और तुझ में दुई की बू न रहे।"

माणिक ने आसू पोछते हुए कहा, "स्वामी जी, मुझ को विशेष दुःख इस बात का है कि, मेरी देश सेवा में वह बडी सहायक होने वाली थी।"

स्वामी जी ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मेरे प्यारे, देश सेवा तो तू प्रथम ही कर चुका है। जिसने आत्मसेवा नहीं की उसने कुछ नहीं किया। तू एम० ए० की डिग्री न पाता तो तेरे मन में अनेक अभिलाषा होने पर भी तू कुछ देश सेवा न कर सकता। जो तुम देश भर को हिला देने की इच्छा रखते हो, तो देश का वह भाग जो सर्वथा तुम्हारे निकट हो, उसे हिलाना आरंभ करो, अर्थात् तुम अपने आप को देश का एक भाग मानो, और स्वयं अपने को हिलाओ। यदि अपने को पूर्ण रूप से हिलाओ तो देश आप ही आप हिल जायगा। एक यूनानी रेखा शास्त्री था, उसका यह कथन था कि अगर मुझे एक स्थान पर स्थित होने के लिए पर्याप्त स्थल प्राप्त हो तो मैं एक छोटा सा प्राणी, समस्त सृष्टि को हिला सकता हूं। हाय उस दीन को कोई स्थान न मिला। मेरे प्यारे वह स्थल ... बिन्दु, जिस पर खडे होकर तुम सृष्टि भर को हिला

सकते हो, तुम्हारी आत्मा है। बस यहीं दृढ होकर, अपने स्वरूप में स्थित होकर फिर गति दो। देश तो क्या-अखिल ब्रह्माण्ड को हिला दोगे।"

"मेरे प्यारे ! मैंने भी देशोन्नति पर कमर कसी है। इसी कारण जापान आया हूं-यहां से अमेरिका जाऊंगा और वहाँ से भारतवर्ष को लौटूंगा। तब तक तुम साथ रहो। हम तुम साथ ही देशोद्धार के प्रयत्न करेंगे। तेरी कोमरास्की हराम है, राम से लगन लगाओ। मेरे प्यारे ! प्रेम पैदा करो, प्रेम-मय हो जाओ; और प्रेम में लीन हो जाओ। प्रत्येक बात में रस भर दो, प्रेम (दया) पैदा करो तल्लीन होकर महव् हो जाओ—

"प्रेम रहे या न रहे, प्रेम रहे भरपूर,
निर्भय सुख का पथ है, हठ की कहां जरूर ?"

"तुम सब कुछ हो, जो चाहो सो कर सकते हो मगर प्रेम से करो तो। हमारा भाग्य अच्छा नहीं। ईश्वरेच्छा, कोई गुरु अच्छा नहीं मिलता, सत्संगत नहीं होता, इत्यादि विचारों को छोड दो इससे चित्त आलस्य सीखता है।"

"जुजू है रान्त है तकदीर से नाहक झगडते हैं,
हम आप ही करहने से, बनते और बिगडते हैं।"

"नामदेव से बालक ने आत्मबल से ही ठाकुर को दूध पिलाया था। प्यारे आत्मबल बढाओ, दूसरों के विधेय न बन जाव।"

माणिक–गुरुदेव, गवर्नमेन्ट बडी कठिन है, उसके कानों तक हमारी आवाज का पहुंचना बडा कठिन है।

"मेरे प्यारे, जब उस बडी गवर्नमन्ट के निराकार कानों

तक अपनी आवाज पहुंचा सकते हो, तो फिर उस बिचारी नाम मात्र की गवर्नमेन्ट की गणना ही क्या है? कान क्या, कानों के पर्दों के पार पर्दे चीर कर तुम्हारी चीखें निकल जाएंगी प्रथम तुम निश्चित बल को बढ़ा कर पुकारना सीखो। ऐक्य सीख कर ऐक्य फैलाओ। तब देखोगे, यह गैर लोग शुक्रिये के साथ कहते सुनाई देंगे'—

"गया है अर्श मे। अरज़ा पै शोर नालों का।
ख़ुदा भला करे फरियाद करने वालों का।"

जिज्ञासु माणिकने आग्रह पूर्वक कहा। "अहा हा-भगवान्! पुनः शब्दामृत पिलाइए। क्या दीन भारतवर्ष अपना उद्धार करने में समर्थ होगा?"

'कीड़ा ज़रासा और वह पत्थर में घर करे,
इन्सा वह क्या जो नादिले दिलबर में घर करे।'

"मेरे प्यारे क्यों न होगा।"

"स्काटलैंड के किसी अनाथालय में एक लडका विद्याभ्यास करता था। बालकों के सहज स्वभावानुसार यह लडका खिलाडी था बल्कि उन्मत्त था। एक दिन जो सनक चढ़ी तो वह अनाथालय से भाग निकला। वह मार्ग के गावों में भीख मांगता हुआ चलते चलते लण्डन पहुँचा। वहाँ के सबसे अधिक धनाढ्य लार्ड मेयर के बाग में घुस कर घूमने लगा। वाटिका में घूम रहा था कि एक पालतू बिल्ली पर इसकी दृष्टि पडी। बच्चा तो था ही, लगा उसके साथ खेलने कूदने। कभी बातें करता, कभी पीठ पर हाथ फेरता और कभी दुम खींचता था। पडोस में एक गिरजा घर था। वहाँ से घडियाल बजने लगा। लड़के ने बिल्ली से पूछा कि यह पागल घड़ी क्या कहती है?"

माणिक ने पूछा, 'गुरुजी ! लड़के ने पागल घड़ियाल क्यों कहा ?'

"मेरे प्यारे ! सच तो है । अच्छी घड़ी एक से ले कर अधिक से अधिक बारह तक बज कर चुप रहती है । परन्तु गिरजे की घड़ी तो जब बजने पर आती है तब बजा ही करती है–जैसे कोई पागल बकने लगता है तो बकाही करता है । अस्तु, बिल्ली ने प्रत्युत्तर नहीं दिया, परन्तु लड़का स्वयं कहने लगा–घड़ियाल कहती है टन, टन, टन, टन, वेटिंगटन, वेटिंगटन, लार्ड मेयर आफ् लण्डन । वेटिंगटन उस बालक का नाम था । देखो अनाथालय से भागा हुआ बालक और घड़ियाल में क्या सुनता है कि आप लार्ड मेयर आफ् लण्डन । इतने में लार्डमेयर साहब हवा खाते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे । उन्होंने लड़के से पूछा, "तू कौन है ? और क्या बकता है ?" वह लड़का मस्ती और आनन्द से बेधड़क बोल उठा, "टन, टन, टन, टन, वेटिंगटन-लार्ड मेयर आफ लण्डन ।" बालक की वह स्वतन्त्र और मुक्त रीति, लार्ड मेयर के हृदय में चुभ गई । क्यों न चुभे ? स्वतन्त्रता भला किस हृदय को नहीं भाती । लार्ड मेयर ने पूछा, "स्कूल में भरती होना चाहता है ?"

लड़का—"हाँ, यदि मास्टर मार पीट न करें तो ।"

लार्ड मेयर ने प्रसन्नता पूर्वक उस बालक को स्कूल में भरती कराया । चंचल बालक स्कूल से फिर कौलेज में गया और शनै शनै ग्रेजुएट हो गया । लार्ड मेयर जब मरण शैय्या पर पड़े थे उस समय उनको कोई सन्तति न थी । उन्होंने वेटिंगटन के नाम बहुत सा धन लिख दिया । वह अपने चातुर्य से उस धन को बढ़ाते बढ़ाते अन्त में लार्डमेयर आफ लण्डन हो गया । यह मनोभाव और साहस का परिणाम है । जब एक

साधारण बालक ने इस प्रकार अपनी मनोकामना पूर्ण की, तब हमलोग देशोन्नति में हताश हों, यह कैसे हो सकता है! मेरे प्यारे, इच्छा करो, दृढ संकल्प करो, प्रेम से प्रत्येक वस्तु करो-प्रेम मय बनो—

> "किस कदर अच्छा है यह विक्टर ह्यूगो का ख्याल,
> सग हो तो सगे मगनातीस* की सूरत बनो,
> नख्ल खर्च हो तो लचकती सी दिखलाओ बहार,
> अगर इन्सान हो तो इश्क की मूरत बनो।"

पैंतालीसवाँ प्रकरण

फिर जन्मभूमि में

अब माणिक चन्द्र, माणिक चन्द्र नहीं हैं, इम्तिहान चन्द्र नहीं हैं, पर स्वामी रामतीर्थ के प्रताप से स्वामी राम भजन एम० ए० के नाम से प्रसिद्ध एक साधु महात्मा हैं। वे काश्मीर में उत्पन्न हुई मन की तरंगे, और वे जापान के किनारे मनकी उमंगे, सब जड मूल से साफ हो गई। यूनिवर्सिटी के स्थापना की कल्पना पर एक दम पानी फिर गया है। अब तो देशोद्धार के हेतु केवल धर्म ही है और तदर्थ सत्य धर्म का प्रजा में प्रचार करना, यही एक स्वामी राम भजन का प्रिय विषय हो गया है। गुरू के प्रताप से जो कुछ मिला है उससे आर्य प्रजा को लाभ पहुंचाने के लिये ही आप कमर कस कर तैयार हुए हैं। हम लोगो ने जब गुरु शिष्य को जापान में देखा था, उसको आज पूरे दो वर्ष बीत गए हैं। दोनों मूर्तियाँ जापान

से अमेरिका और अमेरिका से यूरोप में भ्रमण करके अब भारत वर्ष में पधार चुकी हैं। कलकत्ता और काशी की यात्रा करके अपने व्याख्यान द्वारा प्रजाजनों के कर्ण पवित्र कर, गुरु श्री राम तीर्थ के साथ महात्मा राम भजन जी अपनी जन्म भूमि में पधारे हैं और तुलाराम पटवारी जी के यहा उतरे हैं। तुलाराम जी भी भगवे पहिन गेरुवा वेष में विराजे हुए हैं। पर यह कैसे हुआ ? तुलाराम साधु भए। विश्वयोषिता पतिव्रता ! हा, भया तो ऐसा ही है। ब्रह्म बीज का असर कहाँ जायगा। तुलाराम जी दारू के नशे में एक दिन सीढी पर से लडखडा गए। ठीक पहिली ही सीढी से आकर उन्होने धरती माता को नमस्कार किया। दहिना पैर टूट गया। चार महीने तक लाहौर के गवनमेंट-अस्पताल में पडे रहे और खाट सेते रहे। वहां इनको खाने को सूखा भात और भंगियो के धक्के, पीने को पानी और आसू। चार महीने की इस तपस्या ने उनका दिमाग ठिकाने कर दिया। तुलाराम ने अपनी कुचालो पर पश्चाताप किया और अब सीधे माग पर आए और भगवे वस्त्र धारण किए। इनका पैर अभी एक दम अच्छा नही हो गया है। माणिक चन्द के आने की, जापान, अमेरिका और यूरोप के यात्रा की, गेरुवा वस्त्र आदि धारण करने की गावमें चारो तरफ खूब चर्चा हो रही है, जनता इनके दर्शन के लिए बराबर टूट रही है। गोविन्द राम हुक्का लेकर सामने बैठा है। वह बराबर अपने पुत्र की ओर देखता है और मायाजाल में बधे रहने के कारण अश्रुपात करता हुआ नजर आता है। दूसरी तरफ उसकी बहिन भी बैठी तमाशा देख रही है। रामभजन ने कहा—पिता जी आप इस प्रकार क्यो दुःखी होते हैं ? बहिन तेरी यह क्या दशा है ?

मैंने चोरी नहीं की है, खून नहीं किया, न क़ैदी ही बना हूं। उलटे इस संसार के मायाजाल को सूत के तार की तरह तोड़कर मैं बन्धन मुक्त हुआ हूं। आप प्रसन्न होइए हँसिए आनन्द कीजिए।

"अरे बेटा, यदि तेरी माँ होती तो जो करती सो थोड़ा था।"

"जो मर गए सो मर गए, अब उनके लिये रोने से क्या होता है। मेरा तो यह दृढ निश्चय है कि अब वह संसारी नहीं होने को। 'घर को जला तमाशा देखा'। जिस प्रकार मेरी जननी अब वापस नहीं आने की, उसी प्रकार उसका बेटा भी अब संसारी होने का नहीं। यह कह कर उसने नीचे का दोहा कहा'—

"सनम काहे को रोइए, हँसिए करहि विचार।
गयो न पाछो आवनो, रह्यो सो जावन हार।"

तुला राम के मठ में गाँव के अनेक लोग आया करते थे। उनमें स्त्रियाँ भी रहती थीं। एक वृद्ध स्त्री देख कर बोल उठी कि "अरे बहिन यह तो गोवन्धा का मणका है।"

चेलाराम ने हँस कर प्रथम तो गुरु की तरफ़ और फिर लज्जा से पृथ्वी की तरफ देखा, राम हँस कर बोले, "बेटा, यह जन्म-भूमि है। तुम क्या—गोस्वामी तुलसीदास रामायण लिखने के अनन्तर जब अपनी जन्मभूमि में गए थे तब वहाँ के लोग उनको भी कहते थे कि, तुलसिया आया, तुलसिया आया। गोस्वामी जीने तब एक दोहा कहा था —

"तुलसी तहाँ न जाइए, जहाँ बाप को गाँव,
दास गए तुलसी भए, रहो तुलसिया नाँव।"

"कहिए, पदमसी सेठ की क्या हाल है?"

"दो महीने हुए विचारे गुजर गए। लाखों का आदमी था। वाहरे वाह ! पदलजी सेठ जैसे लोग क्या फिर पैदा होंगे ? ब्रह्मा जैसा पुरुष !"

"उनकी पुत्री और उसका पति तो सुखी हैं न ?" इस प्रकार माणिक ने पीछे की बातें याद करके एक दीर्घ श्वास खींचते हुए पूछा।

गोविन्द--जरीबाई और उसके पति दोनो लाहौर में राजी खुशी हैं। पदलजी ने अपने आगे ही पन्द्रह रुपये मासिक बाँध दिए थे। उनके मरने पर बाई ने बीस रुपये कर दिए जिसे वह बराबर भेजती है।

यह सुन कर माणिक के नेत्रों में आसू भर आए। दो दिन अमोटा में रह कर, पिता और भगिनी से विदा हो कर माणिक अपने गुरु के साथ लाहौर गए। गुरु की आज्ञा लेकर माणिकचन्द एक बार जर से मिलने गया। नौकर द्वारा अपनी खबर कराके वह घर में गया। जर माणिकचन्द को साधु के वेष में देख कर चकित हो गई। माणिकचन्द ने जरबानू और माणिकजी से सब आप बीती कह सुनाया। यह सुन जर रो पड़ी। माणिकचन्द ने उसको धीरज दिया और लाहौर में आने पर उससे अवश्य मिलने का वचन दे विदा माँगी।

उनके चलते समय श्रद्धालु जर ने हर्ष और लज्जा से अपना एक वर्ष का बालक उनके चरणों में डाल दिया, और रामभजन ने उसको अन्त करण से आशीर्वाद दिया।

मैंने चोरी नहीं की है, खून नहीं किया, न क़ैदी ही बना हूं। उलटे इस संसार के मायाजाल को सूत के तार की तरह तोड़-कर मैं बन्धन मुक्त हुआ हूं। आप प्रसन्न होइए हँसिए आनन्द कीजिए।

"अरे बेटा, यदि तेरी माँ होती तो जो करती सो थोड़ा था।"

"जो मर गए सो मर गए, अब उनके लिये रोने से क्या होता है। मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि अब यह संसारी नहीं होने को। 'घर को जला तमाशा देखा'। जिस प्रकार मेरी जननी अब वापस नहीं आने की, उसी प्रकार उसका बेटा भी अब संसारी होने का नहीं। यह कह कर उसने नीचे का दोहा कहाः—

"सनम काहे को रोइए, हँसिए करहि विचार।
गयो न पाछो आवनो, रह्यो सो जावन हार।"

तुला राम के मठ में गाँव के अनेक लोग आया करते थे। उनमें स्त्रियाँ भी रहती थीं। एक वृद्ध स्त्री देख कर बोल उठी कि "अरे बहिन यह तो गोवन्धा का मणका है।"

चेलाराम ने हँस कर प्रथम तो गुरु की तरफ और फिर लज्जा से पृथ्वी की तरफ देखा, राम हँस कर बोले, "बेटा, यह जन्म-भूमि है। तुम क्या—गोस्वामी तुलसीदास रामायण लिखने के अनन्तर जब अपनी जन्मभूमि में गए थे तब वहाँ के लोग उनसे भी कहते थे कि, तुलसिया आया, तुलसिया आया। गोस्वामी जीने तब एक दोहा कहा था —

"तुलसी वहाँ न जाइए, जहाँ बाप को गाँव,
दास गए तुलसी गए, रह्यो तुलसिया नाँव।"

"कहिए, पदमजी सेठ की क्या हाल है?"

"दो महीने हुए विचारे गुजर गए। लाखों का आदमी था। वाहरे वाह ! पदलजी सेठ जैसे लोग क्या फिर पैदा होंगे ? ब्रह्मा जैसा पुरुष !"

"उनकी पुत्री और उसका पति तो सुखी हैं न ? "इस प्रकार माणिक ने पीछे की बातें याद करके एक दीर्घ श्वास खींचते हुए पूछा।

गोविन्द--जरीबाई और उसके पति दोनों लाहौर में राजी खुशी हैं। पदलजी ने अपने आगे ही पन्द्रह रुपये मासिक बाँध दिए थे। उनके मरने पर बाई ने बीस रुपये कर दिए जिसे वह बराबर भेजती है।

यह सुन कर माणिक के नेत्रों में आंसू भर आए। दो दिन अमोटा में रह कर, पिता और भगिनी से विदा हो कर माणिक अपने गुरु के साथ लाहौर गए। गुरु की आज्ञा लेकर माणिकचन्द एक बार जर से मिलने गया। नौकर द्वारा अपनी खबर कराके वह घर में गया। जर माणिकचन्द को साधु के वेष में देख कर चकित हो गई। माणिकचन्द ने जरबानू और माणिकजी से सब आप बीती कह सुनाया। वह सुन जर रो पड़ी। माणिकचन्द ने उसको धीरज दिया और लाहौर में आने पर उससे अवश्य मिलने का वचन दे विदा माँगी।

उनके चलते समय श्रद्धालु जर ने हर्ष और लज्जा से अपना एक वर्ष का बालक उनके चरणों में डाल दिया, और रामभजन ने उसको अन्त करण से आशीर्वाद दिया।

दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा लहरी प्रेस काशी में मुद्रित ।

सदन-ग्रन्थरत्नमाला का प्रथम रत्न

विहारी-बोधिनी

अर्थात्

विहारी-सतसई सटीक

यह वही पुस्तक है कि जिसके कारण कविकुल-कुमुद-कलाधर विहारीलाल की विमल ख्याति-राका साहित्य-संसार के कोने २ में अजरामरवत् फैली हुई है और जिसकी कि केवल समालोचना ने ही द्वन्मण्डली में हलचल मचा दिया है। सच पूछिये तो शृंगार रस में इस के जोड की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ है। इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षों में ही इस ग्रन्थ को ३५-३६ टीकायें बन चुकी हैं। इतनी टीकायें तो तैयार हुई हैं किन्तु वे सभी प्राचीन ढंग की हैं। इसी लिये समझ में जरा कम आती है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीन जी ने अर्वाचीन ढग को नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नाम से ही कर लें। इस में विहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन निरुपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। स्थान स्थान पर कविके चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह जगह पर सूचनायें दी गयी हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीका में आ गई है।

इतना सब कुछ होने पर भी इस पौने चार सौ पृष्ठों को सचित्र पुस्तक का मुल्य २।) मात्र है। सजिल्द २॥)

देखिए, पुस्तकके विषयमें 'सरस्वती' की क्या सम्मति है कोई टीका अब तक कालिज के छात्रोंके लिए अर्वाचीन

ढंग से नहीं मिलती। किन्तु, इस टीका में साधारण विद्यार्थियों के लिए लिखते हुए भी कविके चमत्कार का स्थान २ पर निदर्शन कराया गया है। महत्व के शब्दो के अर्थ दिये हैं। अलंकार बतलाये हैं। कहीं २ प्रीतम जी के उर्दू के पद्यानुवाद के नमूने भी हैं। भाषा स्पष्ट है। विद्यार्थियों की जितनी आवश्यकतायें हैं सभी पूरी की गयी हैं।

सदन-ग्रन्थरत्नमाला का द्वितीय रत्न

श्रीकृष्ण—जन्मोत्सव—ले०-श्रीयुत देवी प्रसाद 'प्रीतम'।

यह वही पुस्तक है। जिसकी बाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोह रहा था और जिसके शीघ्र प्रकाशनके लिये तकाज़े पर तकाज़े आते रहे। पुस्तक की प्रशंसा का भार हम काव्य मर्मज्ञों के ही न्याय और परख पर छोड कर, इसके परिचय में केवल इतनाही कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। घटना क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय प्रतिपादन में लेखक ने कमाल किया है। तिस पर भी विशेषता यह है कि कविताकी भाषा इतनी सरल है कि एक बार आद्योपान्त पढने से सभी घटनाये हृदय-पटल पर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञों के लिए स्थान २ पर अलंकारों की छटा की भी कमी नहीं है। मुख पृष्ठ पर एक चित्र भी है। मूल्य केवल ।=)। ऐंटिक कागज़ के संस्करण का ।≶) ।

ग्रन्थ-माला का तृतीय रत्न

रामचन्द्रिका सटिप्पण

वास्तव में आजतक यदि किसीको साहित्याचार्य की ... हुई है तो वह केशव को। सूर, तुलसी आदि उद्भट

कवियों से भी केशवदासजी कहीं २ आगे बढ़ गये हैं। आपका काव्य अतुलनीय है। आप अद्वितीय महाकवि हैं। आपकी रामचन्द्रिका सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है। आपका विशेष परिचय हम न देकर साहित्य प्रेमियों से केवल प्रार्थना ही नहीं, बल्कि अनुरोध करेंगे कि वे एकबार केशव के काव्य-रस का पान अवश्य करे। आपको इस पुस्तक में कविता का सौन्दर्य, प्रकृति-निरीक्षण, अलकारों की मधुर झंकार, ज्ञान की चर्चा, राजनीति, भगवद्भक्ति आदि सभी देखने को मिलेंगे। पाठकों की सरलता के लिये यह पुस्तक टिप्पणी सहित छापी गई है जिससे कि भावों को समझने में आसानी पड़े।

रामचन्द्रिका सटीक

यह वही पुस्तक है। इसमें विशेषता इतनी ही है कि कवि-कोविद, काव्य-मर्मज्ञ लाला भगवान् दीन जी ने इसकी सरला टीका भी कर दी है। हमारी रामचन्द्रिका का पाठ अत्यन्त शुद्ध है। अत. आप पाठकों से प्रार्थना है अन्य स्थानों की अशुद्ध पाठवाली रामचन्द्रिका को न लेकर इसे ही लें।

भारतेन्दु-स्मारक-ग्रन्थ-मालिका संख्या १

कुसुम-संग्रह—अनुवादिका--हिन्दी--संसार की चिर-परिचित वही श्री मती बगमहिला। कुसुम—संग्रह कितनी उपयोगी पुस्तक है तथा इसका आदर हिन्दीप्रेमियों ने कितना किया है यह तो पाठको को निम्नलिखित कुछ सम्मतियो तथा इसके पहिले संस्करणके बहुतही थोडे दिनोमें हाथो हाथ निकल जानेसे भली प्रकार विदित हो जायगा। यह पुस्तक बंग-भाषा

के बड़े बड़े नामी लेखकों के उत्तमोत्तम सामाजिक निबन्धों और छोटे छोटे उपन्यासों के संग्रह का हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक बडी ही शिक्षाप्रद है खास कर भारतीय महिलाओं के लिए बड़े ही काम की चीज है। इसे संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेन्ट ने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकायलो (Prize books and Libraries) के लिये स्वीकृत किया है। पुस्तक की सुन्दरतामें, भी किसी प्रकार की कोर-कसर नही की गई है। इतना होने पर भी विविध प्रकार के रग विरगे चित्रों से विभूपित, एंटिक पेपर पर छपी लगभग २२५ पृष्ट वाली इस पुस्तक का मूल्य सर्वसाधारण के हितार्थ केवल १॥) रखा गया है।

कुछ सम्मतियाँ—

—गल्प सब सुन्दर हैं। लेखन-शैली सरस और सरल है। पुस्तक सर्वथा सुद्रश्य और उपयोगी है। स्त्रियो को उपहार में देने योग्य है। —इन्दु

—हिन्दी-साहित्य-भण्डार में अनोखी वस्तु है। लेख सब के पढने योग्य, बहुतही रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। स्त्री-शिक्षा संबन्धी लेख तो बहुत ही उत्तम हैं। —लक्ष्मी

—लेखन--शैली उत्तम है। पात्रो का चरित्र चित्र देख कर बडी खुशी होती है। —आसस

—कुसुम सग्रह के कुसुमे बहुतही मुध कर हैं। इन फूलो का आघ्राण हिन्दी के रसिको को अवश्य लेना चाहिए।

—हिन्दी बंगबासी

मिलने का पता—

व्यवस्थापक, पुस्तक-भवन,

काशी।